हिन्दी-प्रेमियोंसे अनुरोध

इस मण्डलके स्थायी ग्राहक होनेके नियम पुस्तकके अन्तमें दिये हुए हैं। आप उन्हें एक बार अवश्य पढ़ लें और अपनी रुचिके अनुसार स्थायी ग्राहक होकर व अपने मित्रों-को बनाकर इस मण्डलकी पुस्तकोंके प्रचारमें सहायता पहुंचावें।

वर्ष १] सस्ती विविध पुस्तकमाला [पुस्तक ५
(सस्ती प्रकीर्णक पुस्तकमाला)

स्वाधीनताके सिद्धान्त



मूल लेखक
आयर्लैंडके प्रसिद्ध आत्मत्यागी वीर
टेरेन्स मैक्स्विनी

अनुवादक
पं० हेमचंद्र जोशी बी० ए०

प्रकाशक
सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल
अजमेर

प्रथम बार] १९२६ [मूल्य ॥)

प्रकाशक—

जीतमल लूणिया, मंत्री

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक मण्डल,

अजमेर

लागत का ब्योरा

कागज	१६८)
छपाई	२२७)
बाइंडिंग	२५)
लिखाई, व्यवस्था, विज्ञापन आदि खर्च	२५३)
कुल जोड़	७०३)

प्रतियां २०००

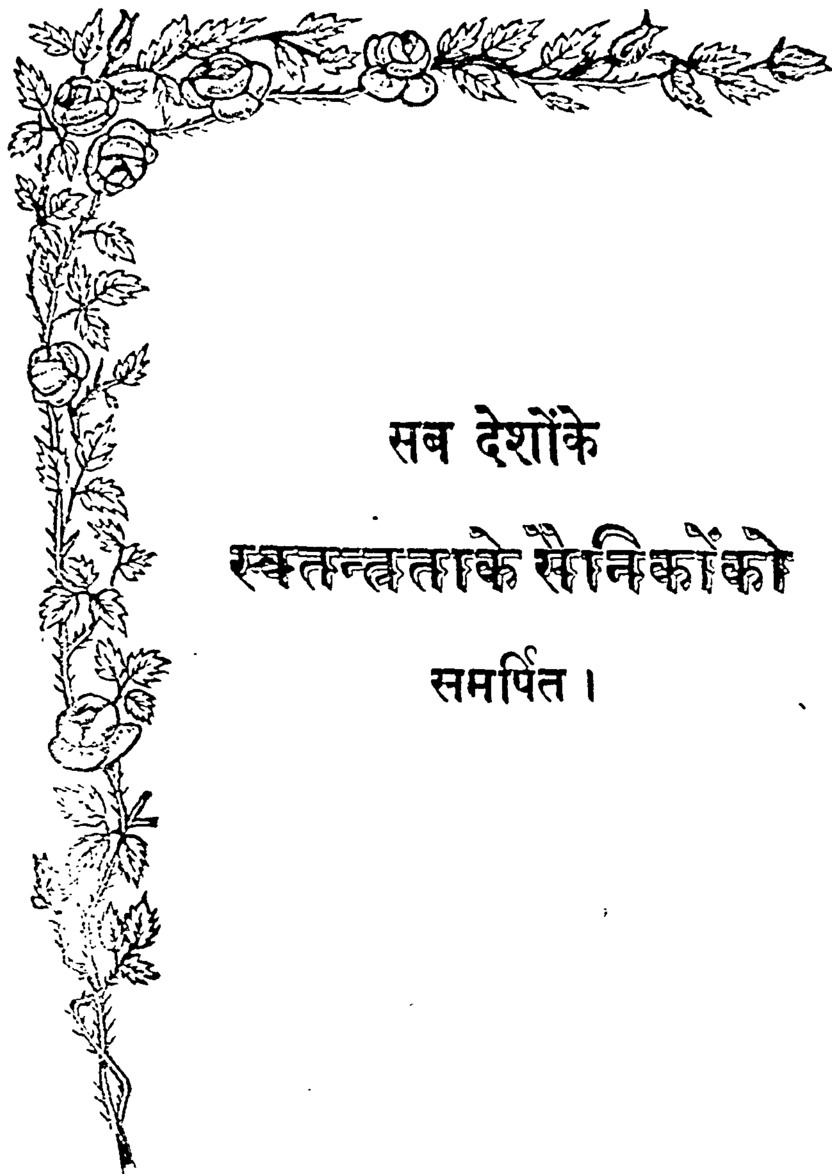
एक प्रति का मूल्य ।-)॥

मुद्रक—

रामकुमार भुवालका

"हनुमान प्रेस"

३, माधो सेठ लेन, कलकत्ता।



सब देशोंके

स्वतन्त्रताके सैनिकोंको

समर्पित।

निवेदन

दो साल हुए मेरे पास आयर्लैंडसे Principles of Freedom नामक पुस्तक आयी। इसे पढ़ते ही तबीयतने कहा इसका अनुवाद कर डालो जिससे हिन्दी भाषाभाषी देशबन्धु भी इससे शिक्षा और आनन्द प्राप्त करें; किन्तु बुद्धिने कहा तुम अयोग्य हो, तुम्हें भाषाका ज्ञान नहीं, साहित्यका संग नहीं और देशभक्तिसे बहुत दूर रहते हो इसलिये यह काम दूसरे योग्य लेखकपर छोड़ दो। मैंने थोड़ा अनुवाद कर लिया था, बस आगे बढ़ना उचित न समझा, हाथ खींच लिया। किन्तु इधर भारतमें अंगरेजी पुस्तक प्रायः डेढ़ सालसे बिक रही है तौभी किसी विद्वानका ध्यान इस ओर न गया। इसलिये मैंने दुस्साहस किया कि टूटे फूटे शब्दोंमें पुस्तकका भाव उन भाइयोंके सामने रख दूं जो स्वाधीनताके उपासक हैं। मेरी धृष्टताका यही कारण है। मैं यह स्पष्ट कह देना चाहता हूं कि मुझे हिन्दी भाषा और उसके व्याकरणका ज्ञान नहीं है। इसलिये इसमें त्रुटियोंका रहना स्वाभाविक है।

इस पुस्तकमें कई अंश छोड़ दिये गये हैं। जो अंश केवल आयर्लैण्डसे ही सम्बन्ध रखते थे उनकी हिन्दी पुस्तकमें कुछ भी आवश्यकता नहीं समझी गयी। मैक्स्विनीका जीवनचरित्र भी इसमें जोड़ दिया गया है। अभीतक जो चरित्र पत्रोंमें छपे हैं उनमें ठीक ठीक बातें नहीं आयीं। इसलिये पाठक इस जीवन-चरित्रसे भी लाभ उठायेंगे ऐसी आशा है। अन्तमें मैं यही निवेदन करूंगा कि पुस्तकमें जो दोष हैं उनका जिम्मेवार पढ़नेवाले मुझे समझें, जो गुण हैं वे मैक्स्विनीकी लेखनीके हैं। वंदेमातरम्।

अनुवादक

विषय-सूची

स्वाधीनता के सिद्धान्त



टेरेन्स मैक्स्विनी

टेरेन्स मैक्स्विनीकी संक्षिप्त जीवनी



१—बाल्य काल

कार्कके लार्ड मेयर टेरेन्स मैक्स्विनी संसारके उन थोड़े महात्माओंमेंसे हैं जो मरी हुई जातिको अपना प्राण देकर नया जीवन दे जाते हैं। जिस देशमें मैक्स्विनी पैदा हुए वह भारतके समान आत्मसम्मानरहित तथा चरित्रभ्रष्ट देश नहीं है। आयर्लैण्डमें प्रायः ३०० सालसे स्वाधीनताका युद्ध चल रहा है। इस अवधिमें वहां कई वीर ऐसे पैदा हुए हैं जिन्हें पाकर कोई भी जाति गर्व कर सकती है। टोन, उल्फ, मिचल, माइकेल डेविट आदि स्वाधीनताके उपासक जिस भूमिमें जन्मे हैं वह धन्य है। जिस जातिके लिये इमन डे वेलेरा, काउन्टेस मार्केविग्ज, ओफेनल सरीखे नेता लड़े और लड़ रहे हैं वह गुलाम नहीं रह सकती। किन्तु जिस राष्ट्रने एक टेरेन्स मैक्स्विनीको जन्म दिया है वह संसार भरको स्वतन्त्रताका पथ दिखानेका दम भर सकता है।

टेरेन्स मैक्स्विनी १८७९ ई०की २८ वीं मार्चको कार्कनगरमें पैदा हुए। छोटेपनमें ही उनके पिता मर गये। इससे सारे परि-

वारके पालन पोषणका भार उनकी माताके सर पड़ा। इस वीर महिलाने अपना धर्म निबाहा। मैक्स्विनीको बचपनसे ही राष्ट्रीय शिक्षा मिली। आयर्लैण्डमें उन दिनों रेडमण्डके दलका प्रभुत्व होनेके कारण यद्यपि देशमें मनुष्यता कम रह गयी थी तौभी इधर उधर कई लोग स्वतंत्रताके भावोंको हृदयके अन्दर ढककर हिफाजतके साथ बचाये हुए थे। कार्क नगरमें ऐसे लोग बहुत बसते थे। उन दिनों वहां यह एक रिवाज सा पड़ गया था कि छोटे बच्चे सप्ताह भरमें कोई न कोई कविता याद करते थे और रविवारको अपने माता पिताको सुनाया करते थे। कविता राष्ट्रीय होती थी। इसमें विद्रोहके भाव जितने अधिक होते थे उतनी ही अधिक वह पसन्द की जाती थी। मैक्स्विनीके पिता कट्टर देश भक्त थे। मैक्स्विनीने उनसे राष्ट्रीयताकी शिक्षा ली। मैक्स्विनीने अपनी मातासे कई गुण सीखे। उनकी आध्यात्मिकता, भगवानपर अटल विश्वास और धर्ममें दृढ़ भक्ति—ये गुण उन्हें अपनी मातासे मिले थे।

उन्हें स्कूली शिक्षा भी अच्छी मिली थी। उस समय आयर्लैण्डमें हजारों राष्ट्रीय स्कूल थे। उनका एक बोर्ड भी था किन्तु इनकी हालत वर्तमान समयके भारतके राष्ट्रीय स्कूलोंसे कुछ ही अच्छी थी। राष्ट्रीय विद्यालयोंकी यह दुर्दशा देखकर जातिके कई शिक्षाप्रेमी हितैषियोंने अपने स्कूल अलग खोल रखे थे। कार्कमें कुछ रोमन कैथलिक पादरियोंने ऐसे कई स्कूल स्थापित कर रखे थे। यह उन राष्ट्रीय स्कूलोंसे कई दर्जा अच्छे थे

जो चन्दा वसूल करना और लड़कोंको बिगाड़ना अपना धर्म समझते हैं। मैक्स्विनीने इन देशके दुखसे दुखी पादरियोंके स्कूलमें शिक्षा पायी। ये देशप्रेमी धर्मात्मा अपनी स्वतन्त्र पुस्तकें पढ़ाते थे किन्तु इण्टरमिडियट दर्जेमें बोर्डद्वारा निर्धारित इतिहासकी कुछ रद्दी किताबें पढ़ानी पड़ती थीं। ये लाचार होकर उन्हें पढ़ाते थे किन्तु अगर मगरके साथ ये बताते थे कि इन इतिहासोंमें जाति के विरुद्ध कौन कौनसी झूठी बात लिखी गयी हैं, इन झूठी बातोंके लिखनेसे लेखकको क्या लाभ हुआ है, छात्रोंकी क्या हानि होगी, आदि। ऐसे स्कूलमें मैक्स्विनीकी राष्ट्रीयताका बढ़ना स्वाभाविक था। मैक्स्विनी उन दिनों ध्यानमें मग्न रहता था और यह ध्यान सदा देशका होता था। वह स्कीमें बनाया करता था और ये स्कीमें देशोद्धारकी होती थीं। उसके विषयमें यह कहा जा सकता है कि जन्मसे ही उसे मातृभूमिकी लगन थी। एक बार उसके घरमें राकफेलरको अतुल सम्पत्तिकी चर्चा छिड़ी। सबसे पूछा गया यदि तुम्हारे पास इतना धन होता तो तुम क्या करते? जब मैक्स्विनीकी बारी आई उसने गम्भीरतासे उत्तर दिया "मैं आयलैंडको स्वाधीन करता।" दर्जेमें जब आयरिश इतिहासपर वादविवाद होता था तो मैक्स्विनीमें देशप्रेमका यह भाव बहुधा स्पष्ट रूपसे दिखायी देता था।

मैक्स्विनीने १५ सालकी उम्रमें स्कूल छोड़ दिया और कार्ककी डायर एण्ड कम्पनीके यहां नौकरी कर ली। वह सदा प्रसन्नचित्त और कार्यमें व्यस्त रहता था। मैक्स्विनीको व्यापा-

रिक जीवन पसन्द नहीं था किन्तु उसकी सदा यह आदत रही कि जो काम हाथमें लेता उसे पूरा कर छोड़ता। इसलिये वह थोड़े ही दिनोंमें एकाउण्टेण्ट हो गया और सन् १६११ ई० तक यही काम करता रहा। १६११ में वह व्यापारका अध्यापक हुआ। उसे पढ़नेकी धुन थी, इस वातकी प्रबल इच्छा थी कि मैं बी० ए० पास कर लूं। इसलिये वह पढ़ने लिखनेमें सदा व्यस्त रहता था। दिन भर आफिसमें काम करता, रातको आठ बजे सो जाता और दो बजे रातको उठकर अध्ययन करता। इस प्रकार बड़ी चेष्टा करके सन् १६०७ ई० में उसने बी० ए० डिग्री प्राप्त कर ली।

२—राष्ट्रीयताका उदय

मैकिस्वनी स्कूल छोड़नेके समयसे ही विचार कर रहा था कि कौन दल देशका उद्धार कर सकता है। उस समय फीनियन दल ध्वंसावशेष था। यह दल आयर्लैण्डको स्वाधीन न कर सका था किन्तु इसके सदस्योंको विश्वास था कि इस पीढ़ीमें नहीं, दूसरी पीढ़ीमें नहीं, किन्तु कभी न कभी तो आयर्लैण्ड प्रजा तन्त्रवादी स्वतन्त्र राष्ट्र बनेगा ही। मैकिस्वनी यद्यपि विश्वास करता था कि राष्ट्रको स्वाधीन करनेका काम शीघ्र आरम्भ करना चाहिये तौभी वह कुछ कुछ इसी दलमें मिला। १८६६में इन्होंने 'यंग आयर्लैंड सोसाइटी' खोली। यह नवयुवक-दल-रचनात्मक कार्य, देशी भाषाका प्रचार, आयरिश उद्योग धन्धोंका पोषण और

ब्रिटिश फौजमें आयरिश सिपाहियोंको भरती न होने देनेका उद्योग करना चाहता था। इस बीच सिनफिन आन्दोलनका जन्म हो रहा था। १८९९ में आर्थर ग्रिफिथने 'यूनाइटेड आयरिश-मन' नामक पत्र निकाला। इस पत्रके द्वारा वह सब समितियां संघबद्ध कर ली गयीं जो इङ्गलैण्डसे अलग होना और खुले आम आयरिश स्वतन्त्रताका प्रचार करना चाहती थीं इस प्रकार सिनफिनका बीज बोया गया और नीति निर्धारित की गयी।

मैक्स्विनीको यह विश्वास हो गया था कि जबतक आयरिश भाषा देश भरमें नहीं फैलेगी तबतक देशका कुछ काम नहीं हो सकता। 'गेलिक लीग' नामक संस्था उन दिनों आयरिश भाषाका प्रचार कर रही थी। मैक्स्विनी इसमें भरती हो गया। उसने बड़े कड़े परिश्रमसे आयरिश भाषा सीखी और देहातमें रहकर उसका प्रयोग समझा। १९१० में 'आयरिश फ्रीडम' नामक पत्र निकाला गया। इसने सिनफिन दलकी नीति भली भांति स्पष्ट कर दी। इसमें साफ २ लिखा गया कि हमलोग उस विचार परम्पराको लेकर खड़े हुए हैं जिसे हमारे पहले नेता हमें दे गये हैं। हम इङ्गलैण्ड और आयर्लैंडका पूर्ण विच्छेद चाहते हैं, हम आयरिश प्रजातन्त्रके पक्षपाती हैं। इस पत्रके निकलते ही सब नवयुवक इसकी तरफ हो गये और कहना चाहिये कि सारा आयर्लैंड उसी तरफ गया। मैक्स्विनी भी इसमें था। मैक्स्विनीकी पुस्तक 'स्वाधीनताके सिद्धान्त' इसीमें क्रमशः छपी थी। इस समय लोग आश्चर्य करते हैं कि मैक्स्विनीको किस प्रकार

आयलैंडकी भावी दशाका ज्ञान पहले ही हो चुका था। किन्तु यह पुस्तक एककालीन या एकदेशीय नहीं है। इसके सिद्धान्त सदा सर्वत्र लागू होंगे।

३—आयरिश स्वयंसेवक

आयलैंडके लिये वह समय बड़े सौभाग्यका था जब ब्रिटिश सरकारने अल्स्टरवालोंको स्वयंसेवक-दलमें भरती होनेका अधिकार दिया। यह रियायत इसलिये की गयी थी कि अल्स्टर अंगरेजी साम्राज्यकी छत्रछायामें रहना चाहता था। किन्तु इङ्गलैण्डके बड़े बड़े राजनीतिज्ञ ऐसी चूक कर गये कि इसके लिये वे अबतक पछता रहे हैं। आयलैंडके नवयुवकोंने इस आज्ञाका स्वागत किया। वे ताड़ गये कि आयलैंडका अब मौका आगया है। जब अल्स्टरमें स्वयंसेवक भरती हो सकते थे तो और जगह उन्हें कौन रोक सकता था। बस, धूम मच गयी। जो नवयुवक रात दिन सोचा करते थे कि आयलैंडकी पल्टनें किस प्रकार खड़ी की जा सकती हैं वे हर्षसे नाचने लगे। सारे आयलैंडमें स्वयंसेवकोंकी भरती होने लगी। थोड़े ही दिनोंमें ३० हजार स्वयंसेवक भरती हो गये। इसमें सन्देह नहीं कि उनके पास हथियार बहुत थोड़े थे किन्तु उनमें उत्साह था, वे शिक्षा प्राप्त कर रहे थे और उन्हें विश्वास था कि समयपर हथियार भी मिल जायंगे। यह उत्साह देखिये, कई बूढ़े भी इसमें भरती हो गये।

मैक्स्विनीके लिये भरतीका यह आन्दोलन ईश्वरकी महान्

कृपा थी। भगवानने उसे स्वभावसे ही सैनिक पैदा किया था। वह जी जानसे इस आन्दोलनमें कूद पड़ा। सप्ताहमें एक बार ड्रिल होती थी किन्तु वह सारे सप्ताह रणनीतिका अध्ययन करता था। उसे पूरा भरोसा था कि आयलैंण्डका उद्धार ये स्वयंसेवक ही करेंगे जो समय आनेपर नियमित रूपसे सेनामें भरती किये जाते हैं। मैकिस्वनीको अपनी विजयपर पूरा विश्वास था। उसे कभी यह सन्देह नहीं होता था कि आयलैंण्ड स्वतन्त्रताके युद्धमें हारेगा। उसने अपना उत्साह, उमङ्ग और आशा स्वयंसेवकोंमें भर दी। आयलैंडमें धड़ाधड़ स्वयंसेवक भरती होने लगे किन्तु नरमदलवालोंने अपना सारा जोर इस आन्दोलनके विरुद्ध लगाया। किन्तु जिस जातिमें स्वतन्त्रताके भाव पैदा हो जाते हैं वहां कुछ इने गिने स्वार्थी लोगोंको छोड़कर सभी मातृ-भूमिके सैनिक हैं। उन्हें भरती होनेसे कौन रोक सकता है। नरमदलवाले कुछ न कर सके। अन्तमें उन्हें स्वयं भी भरतीमें भाग लेना पड़ा। कुछ दिनों बाद इङ्गलैण्डकी जर्मनोसे लड़ाई छिड़ गयी। मैकिस्वनी आदि प्रजातन्त्रवादियोंने समझा कि अब मौका आ गया। इस वक्त यदि इङ्गलैण्ड दबाया जाय तो उसे भागनेमें देर न लगेगी। किन्तु रेडमण्डने इन स्वयंसेवकोंका प्रयोग इङ्गलैण्डकी सहायता करनेके लिये करना उचित समझा। बस सब स्वयंसेवक इङ्गलैण्डकी तरफ होने लगे। मैकिस्वनी घबराया और उसने इङ्गलैण्डके विरुद्ध आन्दोलन शुरू किया। स्वयंसेवकोंमें दो दल हो गये। १॥ लाख

स्वयंसेवकोंमेंसे कुल ८००० प्रजातन्त्रवादियोंकी तरफ रहे। कार्ककी स्थिति और भी खराब थी। किन्तु मैक्स्विनीने बड़ी शान्तिसे काम लिया। वह जितने स्वयंसेवक मिले उन्हें लेकर गांव गांव फिरा और नये स्वयंसेवक भरती करनेकी चेष्टा की। यह उत्साह देखकर अन्य स्थानोंके और स्वयंसेवकोंने भी रङ्ग-रूट भरती किये।

१९१४ की १९ वीं सितम्बरसे कार्कसे 'फायनाफेले' नामक साप्ताहिक पत्र निकला। इसका सारा भार मैक्स्विनीपर था। इसके लेखोंसे आयरिश जातिमें नया उत्साह पैदा हुआ। जो पीछे हट गये थे वे आगे बढ़े। इसके पहले अङ्कमें मैक्स्विनीने लिखा कि "वर्तमान संकटके कारण यह पत्र निकाला जा रहा है। यह समाचारोंका नहीं, सिद्धान्तोंका प्रचार करेगा। हम आयर्लैण्डके लिये कमसे कम यह चाहते हैं कि वर्तमान अवसरसे आयर्लैण्डके लिये वह राजशक्ति प्राप्त कर लें जिससे वह बाहर भीतरका अपना इन्तज़ाम निज ही करे।" एक दूसरे अङ्कमें उसने लिखा, "हम आयर्लैंडमें आग लगा देना चाहते हैं। हमारा विचार है कि हमारा व्यक्तिगत बलिदान इस कार्यके लिये बहुत कम है। ज़रा बलिदानका अर्थ तो समझिये। आयर्लैण्डमें शत्रुका रक्त बहाया जा सकता है किन्तु पहले उसका खून नहीं बहाया जाना चाहिये क्योंकि इससे प्रति-हिंसावृत्ति जाग्रत हो सकती है। किन्तु आयरिश भूमिमें पहले आयरिश रक्त बहाना चाहिये। फिर आप देखेंगे, स्वाधीनताका

उद्धार करनेके लिये ऐसा जहाद आरम्भ होगा जिसे शैतानकी सारी शक्तियां नहीं हरा सकतीं। हमें मिचलके वे शब्द याद रखने चाहिये जो उसने फांसीपर चढ़ते समय वीर गर्जनके साथ लार्ड क्लारेण्डनसे कहे थे, 'माइ लार्ड! मैं जानता था मुझे फांसीपर लटकना पड़ेगा; किन्तु मैं यह भी भली भांति जानता था कि विजय मेरे साथ रहेगी और मेरे साथ है।' हम इस विजयका महत्व नहीं समझे हैं किन्तु अब शीघ्र समझ जायंगे। हमें समझना चाहिये विजय दो प्रकारकी होती है और मिचल-की जैसी विजय सांसारिक विजयकी सीढ़ी है।' हमारे स्वयं-सेवक अभी तत्पर नहीं हैं, उन्हें पूरी शिक्षा नहीं मिली न उनकी परीक्षा ही हुई है। आवश्यकता है कि मिचलके उक्त सिद्धांतका प्रचार हो जिससे वे कार्यसाधन या मरणके लिये सदा तैयार रहें। एक शुद्ध बलिदान यह काम कर सकता है। यह उनकी आत्मामें नयी रुह फूंकेगा और दैवी ज्योति जलावेगा और आय-लैंडका भाग्य उनके हाथोंमें सुरक्षित रहेगा।" इस पत्रका अन्तिम अङ्क उसी सालको पांचवीं दिसम्बरको निकला। उसके बाद सम्बन्धविच्छेदी पत्र आयलैंडमें बन्द कर दिये गये। इस पत्रके लिये मैक्स्विनीको अपना प्यारा पुस्तकालय बेंच देना पड़ा। शायद ही कभी वह इन पुस्तकोंको बेचता किन्तु देशके नामपर उसने यह बलिदान किया। पत्रके कुल ११ अङ्क निकले पर वह अपना काम कर चुका था।

१९१५ में आयरिश जातिकी आंखें खुलीं। उसने देखा कि

साम्राज्यके लिये स्वयंसेवक बनना नादानी है। इस बीच मैक्स्वनीने पूरी चेष्टा की कि उसके दलमें स्वयंसेवक भरती हों। अबतक वह फुरसत निकालकर स्वयंसेवक भरती करता था किन्तु उसने अब नौकरी छोड़ दी और सारा समय इसी काममें लगाया। वह अपनी बाइसिकलपर कार्कके जिले भरमें दौरा करता था और जहां जाता था वहीं आग भड़का देता था। १९१५ के आरम्भमें ही उसने कार्क जिलेको उत्तम रूपसे सङ्गठित कर दिया। उसका उन दिनोंका परिश्रम देखकर मुंहसे यही शब्द निकलते हैं—'यदि स्वाधीनताका उपासक हो तो ऐसा हो।'

८—पहली गिरफ्तारी।

गवर्नमेण्ट फौरन ताड़ गयी कि मैक्स्वनीने आयर्लैंडमें राजविद्रोहकी आग फैलायी है। बस, १३ जनवरी १९१६ को मैक्स्वनी अपने घरपर गिरफ्तार कर लिये गये। मकानकी तलाशी ली गयी कि कहीं हथियार छिपे हुए न हों। माल बरामद नहीं हुआ किन्तु पुलिस कागज-पत्र उठा ले गयी। मैक्स्वनीके ऊपर यह अभियोग लगाया गया कि तुमने दूसरी जनवरीको बालिनोमें राजद्रोही भाषण दिया। मैक्स्वनी महीनों हवालातमें सड़ते रहे। पार्लामेण्टमें सवाल पूछा गया। उत्तर मिला कि मैक्स्वनीका अपराध बहुत बड़ा है किन्तु धीरे धीरे रहस्य खुला कि मैक्स्वनीके पास उनके छोटे भाई जानकी चिट्ठियां थीं जो उस

समय बर्लिनमें था। सन्देह यह हुआ कि आयरिश स्वयंसेवक जर्मनीसे मिले हुए हैं और उनके कोषमें जर्मनीका रुपया है। खुफिया पुलिसके बड़े बड़े दिग्गजोंने माथा लड़ाया कि इन पत्रोंमें शब्दोंका इन अर्थोंमें प्रयोग हुआ है। जान मैक्स्विनी गिरफ्तार कर लिया गया। उसके कागज-पत्रोंकी तलाशी हुई। किन्तु कहीं भी इस जर्मन षड्यंत्रका पता न चला। यह बर्लिन जर्मनीकी राजधानी नहीं किन्तु एक अन्य स्थानका नाम था। मामला शुरू हुआ। बड़े दाव पेंच खेले गये। किन्तु मजिष्ट्रेट राष्ट्रीय दलके थे। उन्होंने हंसी मजाककी तौरपर मैक्स्विनीको एक शिलिंग जुर्माना किया। इस निर्णयसे आयरिश स्वयंसेवक भरती करनेमें बड़ी सहायता मिली। उधर जनतामें इङ्गलैण्डकी ओरसे लड़नेका उत्साह धीमा पड़ गया।

आयरिश रिपब्लिकन ब्रदरहुड यथाशीघ्र बलवा करनेकी तैयारी करने लगा गवर्नमेण्ट यह देखकर घबरायी कि आयलैंण्डमें ब्रिटिश सेनाके लिये रङ्गरूट तो भरती नहीं हो रहे हैं और आयरिश स्वयंसेवकोंका दल बढ़ रहा है। २३ अप्रेल सन् १९१६ ई० का दिन सारे देशमें एक साथ गदर करनेका नियत किया गया। मैक्स्विनी बगावतका पूरा पक्षपाती था। जब दिन निकट आने लगा उसकी नींद और भूख हराम हो गयी। वह दिनभर दौड़ धूप मचाता था और रातको सोचता था कि किस प्रकार सफलता प्राप्त होगी। उसके भाग्यसे वह दिन आ गया था जिसके स्वप्न वह छोटेपनसे देखा करता था। सब तैयारियां हो चुकी थीं,

स्वयंसेवक आशा लगाये हुए थे अब कलको देश उठ खड़ा होगा। किन्तु २२ अप्रेलके पत्रोंमें स्टाफके मुखिया प्रोफेसर मैक्नीलकी सूचना छपी कि "किसी बड़े संकटके कारण वह आज्ञा रद्द की जाती है जो आयरिश स्वयंसेवकोंको कलके लिये दी गयी थी।" इस आज्ञासे २३ तारीखका बलवा रुक गया। आयरिश रिपब्लिकन ब्रदरहुडने आज्ञा निकाली कि २४ तारीखको बलवा किया जाय। इस गड़बड़ीसे कहीं बलवा हुआ, कहीं नहीं हुआ। कार्कमें कुछभी नहीं हुआ। कार्कके लार्डमेयर वहांके स्वयंसेवकोंसे सन्धि करने आये और उनसे हथियार सौंप देनेको कहा। शर्त यह थी कि स्वयंसेवकोंको दण्ड न मिलेगा किन्तु वचन तोड़ा गया और तीसरी मईको मैक्स्विनी गिरफ्तार कर कार्कके जेलमें बन्द कर दिये गये। हफ्ते भर बाद वे डब्लिन भेजे गये और वहांसे वेकफिल्ड जेलमें पहुंचाये गये और अन्तमें उत्तरी वेल्सकी फ्रूनगाक छावनीमें नजरबन्द किये गये। सारे देशमें सनसनी फैल गयी और यही बात बलवाई चाहते थे। वे खूब जानते थे कि बलवा वर्त्तमान बलहीन स्थितिमें सफल नहीं हो सकता। किन्तु जब कई बड़े बड़े देशभक्त स्वतंत्रताके इस युद्धमें अपने प्राणोंकी आहुति देंगे तो उन मुर्दोंमें भी जान आ जायगी जो जातिद्रोही और कायर हैं। फल यही हुआ देशकी चेतनतामें बिजुली दौड़ गयी। आयरिश लोकमत बलवेके पक्षमें हो गया। अगस्त महीनेमें गवर्नमेण्टने समझा कि इन नेताओंको लोगोंकी पहुंचसे बाहर रखना चाहिये। इसलिये ये लोग रीडिंग

जेलमें रखे गये। दिसम्बरकी २४ तारीखको ये सब छोड़ दिये गये। इङ्गलैण्डके प्रधानमंत्रीने कहा कि हम इस कार्यद्वारा आयर्लैण्डमें ऐसी स्थिति पैदा करना चाहते हैं कि वहांका लोकमत सन्धिके अनुकूल हो जाय। छुटे हुए नेताओंने फिर वही काम हाथमें लिया जिसे वे छोड़कर गये थे। फल यह हुआ कि २२वीं फरवरी सन् १९१७ ई०को मैक्स्विनी फिर गिरफ्तार कर लिये गये और इङ्गलैण्डके ब्रामयार्ड स्थानको भेजे गये। वहां वे नजरबन्दीमें रखे गये। जूनके अन्तमें यह आज्ञा रद्द की गयी और मैक्स्विनी कार्कको लौट आये। उनकी रफ्तार वही रही जो पहले थी। अक्तूबरमें वे फिर गिरफ्तार किये गये। ६ माहकी जेलकी सजा मिली। उन्होंने जेलके अन्दर भोजन छोड़ दिया और नवम्बरमें वे बरी कर दिये गये। १९१८ के मार्च महीनेमें वे फिर गिरफ्तार कर लिये गये। उनसे कहा गया अपनी ६ महीनेकी सजा पूरी करो। चौथी सितम्बरको उनके ६ महीने पूरे हुए और वे जेलके फाटकपर पहुंचते ही गिरफ्तार कर लिये गये और इंगलैण्डकी लिङ्कन जेलमें भेज दिये गये। इस जेलमें डे वेलेरा आदि नेता भी रखे गये थे। अभियोग यह था कि ये लोग जर्मनीसे मिलकर षड्यन्त्र रच रहे हैं। इन सब बातोंसे आयर्लैण्डमें प्रजातन्त्रकी लहर बढ़ती गयी।

५---आयरिश प्रजातन्त्र

जिन दिनों सिनफिनमें कम आदमी थे उन दिनों उसकी

नीति पार्लामेण्टको अस्वीकार करके आयरिश प्रतिनिधियोंको हटानेकी थी। किन्तु अब जबकि इसका जोर बढ़ गया तो इसने अपने मेम्बर खड़ेकर आयरिश शासन-सभा बनानेकी सोची। इसका अर्थ यह था कि जब देशका बहुमत प्रजातंत्रवादियोंको अपने प्रतिनिधि चुनकर इङ्गलैण्डका राज्य नहीं चाहता है तो उनसे जबरदस्ती मनवाना असम्भव है। इस प्रकार 'डेल इरान' अर्थात् आयरिश शासन-सभाकी उत्पत्ति हुई। दिसम्बर १९१८ के चुनावसे मालूम हुआ कि १०५ मेम्बरोंमेंसे ७३ मेम्बर प्रजातन्त्रवादी चुने गये हैं और अधिकांश वे हैं जो नजरबन्द हैं। इनमें मैक्स्विनी भी चुना गया था। १९१९ के मई महीनेमें सब नजरबन्द छोड़ दिये गये। आयरिश शासन-सभाने अपनी अदालतें, अपनी पंचायतें तथा बोर्ड स्थापन किये। आयरिश स्वयंसेवक प्रजातन्त्रकी सेनामें परिणत हो गये। अब इंगलैण्ड-के साथ नियमित रूपसे युद्ध आरम्भ हो गया।

कार्कके चुनावमें टामस कर्टिन लार्ड मेयर चुना गया। किन्तु कुछ छद्मवेशी गुंडोंने उसे गोलीसे मार दिया। आयर्लैंडवाले कहते हैं ये गुंडे पुलिसवाले थे। जूरीने लायड जार्जको अपराधी बताया। इस स्थानकी पूर्तिके लिये मैक्स्विनी चुने गये। मैक्स्विनी पदका भूखा नहीं था; किन्तु वह समय संकटका आगया था और लोग घबरा रहे थे। पहले लार्ड मेयर टामस कर्टिनकी हत्यासे यह आशंका हो रही थी कि लार्ड मेयरका पद या तो खाली रह जायगा या इसपर अंगरेज सरकारका

कोई पक्षपाती रखा जायगा। ऐसी स्थितिमें मैक्स्विनीने जनताको ढाढ़स बंधानेके लिये यह पद स्वीकार किया। इस अवसरपर मैक्स्विनीने जो भाषण दिया उसमें उसने कहा था—"मैं एक सैनिकके रूपमें यह पद स्वीकार कर रहा हूं। पहला लार्ड मेयर मारा गया है उसकी खाली जगह भरनेके लिये मैं आया हूं। यह समय साधारण नहीं है। पहले लार्ड मेयरकी हत्यासे यह मालूम पड़ता है कि हमें भयभीत करनेका प्रयत्न किया जा रहा है। इस धमकीका उत्तर देना हमारा पहला कर्तव्य है। इसका उचित उत्तर यही है कि हम निर्भय, शान्तचित्त और अपने उद्देश्यमें डटे रहें। यही बात दिखलानेके लिये मैं यह पद स्वीकार कर रहा हूं। ×+×× हमारा यह संग्राम प्रतिहिंसावृत्तिको चरितार्थ करनेके लिये नहीं है। यह तो सहिष्णुताका युद्ध है। इसमें उनकी विजय नहीं होगी जो शत्रुको अधिक यन्त्रणा पहुंचायंगे किन्तु उनकी जो अधिक यन्त्रणा सह सकेंगे। साथ ही साथ हम अपना वह अधिकार भी नहीं छोड़ेंगे जिससे दुष्टों और हत्यारोंको अपने अपराधका दण्ड दिया जाता है। ××× कभी २ अपने वर्तमान दुःखसे छटपटाकर हम बिना विचारे मूर्खतासे चिल्ला उठते हैं कि हम बहुत बड़ा बलिदान कर रहे हैं। किन्तु इसका कारण यह है कि जातिके शूरवीर और सबसे श्रेष्ठ रत्नोंको ही जीवनदान करना पड़ता है। इससे छोटा बलिदान इसका उद्धार नहीं कर सकता। इस कारण ही हमारा संग्राम धर्मयुद्ध है। इसे देशके लिये मरे हुए इन वीरोंके रक्तने

पवित्र कर दिया है और यह शहीद हमारी विजयको पक्की कर गये हैं। जो काम उन्होंने अधूरा छोड़ा है वह हम उठा रहे हैं; निभाना भगवानके हाथ है। हम तो अपनी बारीमें अपना बलिदान चढ़ानेको आये हैं। हम निरपराधका रक्त बहाने नहीं आये; हम तो अपना खून बहायंगे और यह सब अपने देशके उद्धारके लिये। शत्रुसे हम साफ साफ कहेंगे हमको दया नहीं चाहिये और न हम आपसे कोई समझौता करेंगे। किन्तु दयामय भगवानसे हम हाथ जोड़ प्रार्थना करेंगे 'हे भगवन्! हमें शक्ति दीजिये जिससे धैर्यके साथ काम कर सकें, चाहे कितने ही कष्ट क्यों न पायं देशको विजयी बना दें,।" पाठक इससे मालूम करेंगे कि किस भयानक समयमें मैक्स्विनीने लार्ड मेयरका संकटपूर्ण पद स्वीकार किया था।

मैक्स्विनीने जी जानसे प्रयत्न किया कि कार्क नगरमें सुप्रबन्ध रहे। सुबह दस बजे वह आफिस जाता था और रात दस बजे वापिस आता था। उसे दिखाना था कि प्रजातन्त्र-वादी आयर्लैण्डमें स्वराज्य ही नहीं किन्तु सुराज्य भी रख सकते हैं। इस पदके साथ साथ मैक्स्विनी उन दिनों कार्क ब्रिगेडका कमांडिंग अफसर भी था। जहां कहीं प्रजातन्त्रवा-दियोंने म्युनिसिपलिटियों तथा अन्य बोर्डोंको अपने हाथमें लिया वहीं इमानदारी, कमखर्ची और अपने अच्छे इन्तजामसे जनताको अपने वशमें कर लिया। यह देखकर ब्रिटिश गवर्नमेण्टघबरायी। उसने उनकी अदालतें बन्द कर दीं, म्युनि-

सिपलिटीके बड़े बड़े पदाधिकारियोंको गिरफ्तार कर लिया और प्रजातन्त्रवादियोंको दबानेकी प्रबल चेष्टा की। १२ वीं अगस्तको रातके ८ बजे कार्कके सिटी हालको भी सेनाने घेर लिया। मैक्स्विनी और उसके दस साथी गिरफ्तार कर लिये गये। इनपर न कोई अभियोग लगाया गया न तलाशीमें कोई संदेहजनक वस्तु वहां मिली। रातको १२ बजे सिटी हालपर फिर दूसरा धावा हुआ और मैक्स्विनीकी चिट्ठियोंका निजू दराज खोला गया जिसमें कुछ कागजपत्र मिले। इन कागजोंके आधारपर ४ अभियोग लगाये गये। कोर्ट मार्शलमें इनका मामला किया गया। इस मामलेकी रिपोर्ट 'कार्क इग्जमिनर' नामक स्थानिक पत्रके १७ वीं अगस्तके अङ्कमें इस प्रकार छपी थीः—

"लार्ड मेयर राइट ओनरेबल टेरेन्स मैक्स्विनीने गिरफ्तारीके बाद भोजन नहीं किया था। उनमें दुर्बलताके चिह्न प्रकट हो रहे थे। एक आराम कुर्सीपर वह बिठलाये गये। दोनों तरफ बन्दूकधारी दो सिपाही खड़े थे। इनके कई मित्र और साथी वहां उपस्थित थे। जो आदमी अदालतमें आता था उसका नाम धाम पूछकर रजिस्टरमें लिखा जाता था और उसकी तलाशी ली जाती थी। जब लार्ड मेयरसे पूछा गया "क्या तुम्हारा कोई वकील भी है?" तो उन्होंने उत्तर दिया "मैं तुम्हारी कार्रवाईके बारेमें एक बात कहना चाहता हूं। तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध यह है कि मैं कार्कका लार्ड मेयर हूं, इस

नगरका सबसे बड़ा मजिष्ट्रेट हूं और मैं घोषणा करता हूं कि तुम्हारी अदालत गैरकानूनी है। आयरिश प्रजातन्त्रके कानूनोंके अनुसार इसमें भाग लेनेवाले गिरफतार किये जा सकते हैं।"

इसके बाद सरकारी वकीलका बयान हुआ और कई लोगोंकी गवाहियां हुईं। अन्तमें मजिष्ट्रेटने मेक्स्विनीसे पूछा कि "आपको कुछ कहना है?" मेक्स्विनी कुर्सीसे उठने लगा किन्तु मजिष्ट्रेटने कहा—"नहीं, आप कमजोर हैं, बैठे रहिये।" लार्ड मेयरने उत्तर दिया—"आपकी कार्रवाई समाप्त होनेतक मैं खड़ा रह सकता हूं। उसके बाद मैं जीऊं या मरूं एक बात है। मैं कह चुका हूं कि आपकी कार्रवाई गैरकानूनी है। मैं जो कुछ कहना चाहता हूं वह अपने बचावके लिये नहीं। आप लोग समझेंगे और बहुत शीघ्र समझेंगे कि आयरिश प्रजातन्त्र वास्तवमें विद्यमान है। मैं आपको स्मरण दिलाना चाहता हूं कि जो अपराध किसी राष्ट्रके प्रधानके प्रति किया जाता है वह सबसे बड़ा है और उसकी अवैधता और भी बढ़ जाती है जब कि ऐसे पुरुषको गिरफतार करनेके साथ साथ उसका मकान और कमरा जबरदस्ती खोला जाता है और वहांसे उसके कागज-पत्र उठा लिये जाते हैं। महाशयो! मैं थोड़ी देरके लिये स्थिति उलट कर आपको कटघरेमें रखना चाहता हूं। मेरी तलाशीमें एक कागज ऐसा मिला है जिसमें जूरीने मेरे भूतपूर्व पदाधिकारीकी हत्याके विषयमें ब्रिटिश गवर्नमेण्ट और उसकी पुलिसको एकमत होकर खूनका अपराधी बताया था। अब आप

स्पष्ट रूपसे समझ सकते हैं कि आज इस गैरकानूनी अदालतमें भी पहले इस बातका फैसला होता; किन्तु वह कागज छिपा दिया गया है। ऐसा करना उन खूनियोंका अपराध सिद्ध करना है। इससे आप समझ सकते हैं कि मेरी स्थिति संकटपूर्ण है क्योंकि मैं किसी समय मारा जा सकता हूं। आप शायद पहले कागजको छिपाकर किसी दूसरे आदमीपर अभियोग खड़ा करना चाहते हैं; किन्तु मैं कहूंगा कि इन सबका जिम्मेवार मैं हूं। आप लोगोंने एक मजेकी बात और की है। मैंने एक चिट्ठी पोपको लिखी थी। वह ओलिवर प्लंकेटको दीक्षा देनेके समय लिखी गयी थी। वह पोपके पास पहुंच चुकी होगी। जब वह यह सुनेंगे कि यह पत्र भी मेरे पास रहनेसे राजविद्रोही गिना गया है तो क्या ही हंसेंगे।"

इसपर सरकारी वकीलने कहा--"इस पत्रके कारण आपपर कोई अभियोग नहीं लगाया गया है। यह पत्र आपको लौटा दिया जायगा। "यह सुनकर लार्ड मेयर बोले"—अब इतने दिनों बाद इस भूलसुधारसे कोई लाभ नहीं। हां, मेरी एक और चिट्ठी पुलिस ले गयी है। पैरिसकी म्युनिसिपल काउन्सिलके अध्यक्षने यह पत्र मेरे पास भेजा था जिसमें कार्कके बंदरगाहके विषयमें कई बातें पूछी गयी थीं। मैंने इसका उत्तर दिया और जवाबकी एक नकल अपने पास रख ली। अब फ्रेञ्च सरकार यह सुनकर खूब हंसेगी कि पैरिसकी म्युनिसिपलिटीके अध्यक्षके लिये यह अपराध है कि वह मुझसे पत्रव्यवहार करे और मेरी

जेबमें रहनेसे यह पत्र राजविद्रोही हो गया है। और लीजिये; कई विदेशीपत्र-संपादकोंके विजिटिंग कार्डस् तलाशीमें मिले और वे भी राजविद्रोही गिने गये। मुझे इन बातोंकी कुछ परवा नहीं है। किन्तु यह अनुचित है कि दूसरोंको फंसानेके लिये एक स्थानपर मिले हुए कागज दूसरे स्थानपर मिले हुए बतलाये जायं। इस विषयमें सैनिकों और अफसरोंने विश्वासघात किया है। मैं साफ साफ कहूंगा कि मुझे यह देखकर बड़ा दुःख हुआ क्योंकि मैं आयरिश प्रजातन्त्रका सैनिक हूं और प्रत्येक सैनिकका आदर करना चाहता हूं। मैं फिर उन राजविद्रोही शब्दोंकी याद दिलाता हूं जो मैंने अपने निर्वाचनके समय कहे थे। मैंने कहा था "मैं किसीसे दयाकी भिक्षा नहीं मांगता हूं और न समझौता ही करना चाहता हूं। मैं यही सिद्धान्त मानता हूं; मैं कोई दया नहीं चाहता।"

लार्ड मेयरको कैदकी सजा दी गयी। उन्होंने कहा—"मैं यह कह देना चाहता हूं कि आप मनचाही सजा दीजिये किन्तु मैं शीघ्र ही इसका अन्त कर दूंगा। मैंने वृहस्पतिवारसे कुछ नहीं खाया है इसलिये मैं महीने भरमें ही मुक्त हो जाऊंगा।" इसपर मजिस्ट्रेट बोला—"क्या कैदकी सजा मिलनेपर आप भोजन करना छोड़ देंगे?" लार्ड मेयरने उत्तर दिया—"मैं सिर्फ इतना ही कहना चाहता हूं कि मैंने अपनी पराधीनताका समय निश्चित कर लिया है। अब आपकी सरकार चाहे जो करे। जिन्दा रहूं या मर जाऊं किन्तु महीने भर के भीतर स्वाधीन हो जाऊंगा।"

उनको दो सालकी सजा हुई। दूसरे रोज सुबह तीन और चार बजेके बीच जहाजपर सवार कराकर वे वेल्सके पेम्ब्रोक डकपर पहुंचाये गये और लण्डन भेज दिये गये। १८ अगस्तकी सुबहको ४ बजे वे ब्रिक्सटन जेलके गवर्नरको सौंप दिये गये। अब उस यन्त्रणाका आरम्भ हुआ जो संसारमें उथल पुथल मचा गयी।

६—महात्माका अनशन व्रत

ब्रिक्सटन जेलमें जो वीरता मैक्स्विनीने दिखलायी वह उसे ही नहीं सारे आयर्लैंडको अमर कर गयी है। मैक्स्विनीने प्रण किया था कि महीने भरमें स्वाधीन हो जाऊंगा। पतितोंके उद्धारक भगवानने कहा—"तुम सदा स्वाधीन हो, किन्तु उन गिरे हुए लोगोंको अपने अपूर्व त्याग और सहिष्णुताके उदाहरणसे उठा जाओ जो गुलामीको गलेका हार समझ कर उससे चिपटे हुए हैं।" इसलिये महात्मा मैक्स्विनीने तिल तिल करके अपना मांस और अपनी हड्डी उन देवताओंको खिला दी जो बिना इतने बड़े क्रूर बलिदानके पराधीन देशको जगानेको तैयार नहीं रहते।

इस विषयपर लार्ड मेयरके पादरी फादर डोमिनिकने अपनी आंखों देखी जो बातें लिखी हैं हम यहां उनमेंसे कुछ देंगे। पाठक ध्यानसे पढ़ें और मनन करें कि देशका कार्य्य उन लोगोंसे नहीं होता जो जेलमें जाकर चोरीसे भी पूरी कचौड़ी खाते हैं, माल-पुवे उड़ाते हैं और इतना साहस नहीं करते कि कमसे कम

सिग्रेट, तमाखू आदि दुर्गुण तो छोड़ दें जिनका व्यवहार करनेसे साधारणसे साधारण नौकरशाहीके कर्मचारी—जेल दारोगाके सामने उनकी त्यागी महान् 'आत्मा झुक जाती है। सुनिये, फादर डोमिनिक क्या कहते हैं—"मैं बीसवीं तारीखको लेडी मेयरके साथ लण्डनके लिये रवाना हुआ। दूसरी सुबह वहां पहुंचा। लार्ड मेयरको देखते ही मालूम हुआ कि इनकी हालत बहुत खराब है। चेहरा पीला पड़ गया था, मुंह सूख गया था और कमजोरी अपना राज्य जमा चुकी थी। किन्तु बुद्धि बिल्कुल स्पष्ट थी और वह दृढ़प्रतिज्ञ थे कि भले ही उनकी जान चली जाय किन्तु वे जेलके बाहर निकल कर रहेंगे। वह अस्पतालके उस कमरेमें थे जहां आयर्लैण्डका सिंह रोजर केसमेण्ट बन्दी था। कई अंगरेजी पत्रोंने छापा था कि लार्ड मेयरने भोजन शुरू कर दिया है या उठनेके योग्य हो गये हैं, आदि। यह सब बातें सरासर झूठ थीं। लार्ड मेयरने गिरफ्तारीके बाद भोजन किया ही नहीं। लार्ड मेयर मैक्स्विनी ब्रिक्सटन जेलमें सदा शान्त होकर पलंगपर लेटे रहते थे। कारण यह था कि वह अपनी जीवनी शक्तिको सुरक्षित रखना चाहते थे। देशके लिये मरनेको तैयार रहते हुए वह यह देखनेको बड़े इच्छुक थे कि आयरिश झंडेको संसारकी जातियां सलामी दें।"

"कलम दम नहीं रखती कि उनकी दारुण यन्त्रणाओंका वर्णन करे। सोचिये और अनुभव करनेकी चेष्टा कीजिये कि तुम्हारे कन्धेमें, पीठमें, घुटनोंमें तथा बदनके प्रत्येक जोड़में कितना दर्द

होगा यदि एक दिन भी लेटे रहना पड़े। ऐसी स्थितिमें घुटनों-को हिलाने डुलानेसे कितना आराम मालूम पड़ता है किन्तु इस वीर सैनिकको यह आराम भी न मिला। उसके घुटनोंका मांस सूख गया था और उसमें इतनी ताकत भी न थी कि वह अपने वदनके कपड़ोंका भार ही उठा सके। एक दिन नहीं सत्तर दिन तक लगातार इस वीरने यह यातना सही। इस कष्ट और यन्त्र-णाके साथ साथ अनशन व्रतकी तकलीफ थी। मुझसे कहा गया था कि कुछ दिन भूखे रहनेके बाद फिर खानेकी इच्छा ही नहीं रहती। मैंने लार्ड मेयरसे इस विषयपर प्रश्न किया। उन्हें बेहोश होनेके दिनतक भोजन करनेकी इच्छा थी। एक बार तो उन्होंने कहा कि मैं एक प्याला चायके लिये इस भूखकी हालत-में एक हजार पाउण्ड भी दे देता। ज्यों ज्यों भोजन न मिलनेसे खून कम होता गया उनको स्नायविक दुर्बलताने घेर लिया। उनको हृद्रोग हो गया, सिरमें सूई चुभनेके समान दर्द होने लगा, आंखें अन्धी होने लगीं और कान बहरे होने लगे। उस समयकी मानसिक व्यथाका विचार कीजिये जब वह अपनी पत्नी, बहन और भाइयोंको देखते थे। इनके उपस्थित रहनेसे उन्हें आराम भी था, किन्तु इनसे अलग होनेका दुःख और यह विचार कि मेरा दुःख देखकर इन लोगोंके हृदयमें क्या भाव उठते होंगे उन्हें घोर कष्ट दे रहा था। इसपर भी वह न कभी गिड़गिड़ाये और न नाममात्रको डगमगाये। उन्होंने ईश्वरको धन्यवाद दिया कि उसने उन्हें वह मौत दी है जो संसारमें कम लोगोंके भाग्य-

में होती है। डाक्टरों और दाइयोंने अच्छी सेवा की किन्तु अन-शन व्रतके कारण यह लोग भी उनसे नाराज थे। वे इसे बेव-कूफी समझते थे। लार्ड मेयरको समझाने बुझानेकी चेष्टा करके, उनके परिवारकी याद दिलाकर और यह कहकर कि यदि आप जीते रहते तो आयर्लैण्डके लिये कितना काम कर सकते थे उन्होंने इनको बड़ा दुःख दिया। अपनी यन्त्रणा भूलकर लार्ड मेयरको उन साथियोंको याद आती थी जो कार्ककी जेलमें कैद थे। वे नितप्रति उनका समाचार पूछते थे और उनके लिये प्रार्थना करते थे। उन वीरोंके विषयमें वह कहते थे कि जबतक हमारे पास ऐसे नवयुवक और ऐसे पुरुष हैं आयरिश प्रजातन्त्रको कोई भय नहीं। इनकी तुलना अंगरेजोंसे कीजिये, शिक्षित अंगरेजोंसे कीजिये, इन डाक्टरोंसे कीजिये जो हमारे पास हैं तो आपको मालूम हो जायगा कि वे कितने श्रेष्ठ हैं। वे नितप्रति ईश्वरकी वन्दना करते थे और कहते थे कि मुझे इससे शक्ति मिल रही है। धन्य है टेरेन्स मैक्स्विनी! धन्य है आयरिश प्रजातन्त्रकी सेनाका कार्क ब्रिगेडका कमांडिंग अफसर!! धन्य है कार्कका लार्ड मेयर !!!"

अनशन व्रतके चौहत्तरवें दिन लार्ड मेयर मैक्स्विनी परलोक सिधारे। उनके मित्र ओ हेगार्टी कहते हैं कि यदि डाक्टर उन्हें बेहोशीकी हालतमें कुछ दिन पहले भोजन न कराते तो वह कुछ दिन और जीवित रहते। इस वीरने अपना वचन

रख और जेलका दरवाजा तोड़ डाला। लण्डनके टाइम्सने ठीक ही कहा था "इस वीरने मौतको वरण करके अपना साहस और दृढ़ निश्चय संसारको दिखला दिया।" ब्रिटिश गवर्नमेण्टने उनके मरनेके कुछ दिन पहले उनकी दो बहनोंको बलात्कार जेलसे बाहर कर दिया। जब वे मर गये तो उनकी लाश उनकी स्त्रीको देनेमें आनाकानी की। जब लाश मिली भी तो रास्तेमें रोक ली गयी। कार्कमें जब यह लाश पहुंची तो अजीब हालत थी। सिटी हालमें जहां यह रखी गयी थी दर्शकोंका मेला लग गया। ३१वीं अक्तूबर सन् १९२० ई० को अपने ४१ वें वर्षमें मैक्स्विनी समाधिस्थ हुए। इनकी कब्रपर आयर्लैण्डके राष्ट्रपतिने कहा था कि "जोन आफ आर्क स्वर्गमें अपने इस सहयोद्धाका स्वागत कर रही होगी।" इनसे उपयुक्त शब्द और कहां मिलेंगे।

———

स्वाधीनताके सिद्धान्त

प्रथम परिच्छेद

स्वाधीनताका मूल

(१)

हमें स्वाधीनताके लिये संग्राम क्यों करना चाहिये ? क्योंकि स्वाधीनताके इस संग्रामका वास्तविक अर्थ और इसकी ओर प्रवृत्त करनेवाली असली शक्तिको बहुत कम लोग समझते हैं और इस कम समझनेका विचित्र फल देखनेमें आ रहा है। एक ही पक्षके लोग अपने आदर्श और कार्यक्रमके विषयमें महान् व गम्भीर भेदोंके कारण बिछुड़ गये हैं।

(२)

मैं अपनी मातृभूमिमें देख रहा हूं कि कार्यके परिणामसे उसके साधनोंको भला या बुरा बतानेका सिद्धान्त सर्वत्र काममें लाया जा रहा है। निन्दनीय कूटनीतिको काममें लानेके लिये एक पक्ष दूसरेको दोष देता है किन्तु ऐसे उपायोंको काममें लानेसे यदि उसे गर्हित विजय प्राप्त हो तो उसे कुछ भी संकोच नहीं होता। इसलिये आवश्यक है कि साफ बात कही जाय। वह युद्ध जिसमें

शुद्ध साधनोंसे काम नहीं लिया जाता विजयको पराजयसे भी अधिक कलंकित कर देता है। मैं यह बात स्पष्टरूपसे कह रहा हूं, क्योंकि हम ब्रिटिश राज्यसे अलग होनेके पक्षमें हैं और मैं यह दलील भी सुन रहा हूं यदि हो सके तो अंग्रेजोंकी शक्तिको चकनाचूर कर देनेके लिये हमें किसी विदेशी राष्ट्रसे सन्धि कर लेनी चाहिये। भले ही वह राष्ट्र किसी दूसरे देशकी स्वाधीनता-को नष्ट भ्रष्ट करनेमें लगा हुआ हो। यदि देश प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे दूसरी जातिकी स्वाधीनताका हरण करके स्वतंत्र बने, तो उसके सिरपर वही श्राप पड़ेंगे जो वह युगोंसे स्वयं अत्याचारके ऊपर बरसाता आ रहा है।

मैं समझने लगा हूं कि हमारे लिये यह सम्भव है कि नीच उपायोंसे स्वाधीनता पा लें। इसलिये यह और भी आवश्यक है कि हम अपनी नीतिकी घोषणा करें और समझें कि हम कहां खड़े हैं। मैं तो इस सिद्धान्तको पकड़कर खड़ा हूं कि आत्मिक पराजयका मूल्य बड़ीसे बड़ी सांसारिक विजय भी नहीं चुका सकती। जो पक्ष इसके विरुद्ध है वह पक्ष मेरा नहीं हो सकता।

(३)

हमारी स्वाधीनताका दावा किस बुनियादपर है? बालकोंके स्वाभाविक उत्साह और वृद्धोंके अनुभवपर। प्रथम जब कि लड़के स्कूलोंसे ताजे बाहर निकलते हैं, उनकी आयु बीसके नीचे ही होती है, वे प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक वस्तुके विरुद्ध आक्रमण

करनेको तैयार रहते हैं, तोखी बातें कहनेमें आनन्द लेते और स्वाधीनताके विषयमें छाती खोलकर खूब बातें करते हैं किन्तु इतनेहीमें संतुष्ट हो जाते हैं कि हम बड़ी निर्भीकता पूर्वक बातें छांट रहे हैं। इसके बाद बचपन चला जाता है, स्थितिकी भलीभांति परीक्षा करनेके लिये हम मैदानमें आते हैं और संसारमें अपना निश्चित कार्य ग्रहण करते हैं। कई वर्षतक संसारका अनुभव प्राप्त करते हैं, जीवनके कठोर संग्राममें पड़ते हैं और घोर संकटोंके बाद हममें स्थिरता आ जाती है। हमारा हृदय गहरी बातोंमें पैठनेके लिये उत्सुक होता है। तब इतना ही यथेष्ट नहीं समझा जाता कि हम पराक्रमकी बातें करें। हमारी बातोंसे सत्यकी ध्वनि निकलनी चाहिये। ये दो कारण न होते तो शायद ही कोई मनुष्य प्यारी मातृभूमिपर वलि जानेके लिये तत्पर होता।

(४)

हमारी प्रबल इच्छा है कि हमारी आत्मा उन्नत हो। इसी लिये हम स्वाधीनताका दावा करते हैं। सांसारिक उन्नति हमारे लिये प्रधान विषय नहीं है। जीवन-संग्रामके लिये परमात्माने मनुष्यको कुछ आत्मिक और शारीरिक शक्तियां दे रखी हैं। यह बात मनुष्य तथा समाजके लिये बहुत आवश्यक है कि इन शक्तियोंका विकास करने और योग्यतापूर्वक अपना कर्तव्य निबाहनेके लिये इनसे पूरा काम लिया जाय। स्वाधीन राष्ट्रमें प्रत्येक मनुष्य और समाजको पूरी उन्नति करनेके लिये सहज

परिस्थिति मिल जाती है। पराधीन राष्ट्रमें ठीक उसका उलटा होता है। जब एक देश दूसरे देशको अपने अधीन रखता है तो दास देशका साम्पत्तिक और नैतिक नाश होता है और लूट खसोटका शिकार बननेके कारण उसकी सम्पत्ति घटती है। विजयी जाति अपनी प्रभुता जमानेके लिये जिन दूषित आचरणोंका व्यवहार करती है उनसे विजित जातिका नैतिक पतन होता है। इस नैतिक नाशसे राष्ट्रको बचानेके लिये गुलामीसे लड़ना पड़ता है। दास देशमें दोष फलते और फूलते हैं। जो आदमी यह बात भलीभांति हृदयङ्गम कर लेता है उसके लिये इसके विरुद्ध लड़नेके सिवा और चारा ही नहीं रहता। दासताके साथ हम सन्धि नहीं कर सकते। राज्यमें शासनकर्त्ताओंका कर्त्तव्य होता है कि वह प्रजाके उत्तमसे उत्तम गुणोंका उत्कर्ष करें। विदेशी शासन घृणितसे घृणित दोषोंको बढ़ानेमें सहायता करता है। हमारे इतिहासमें इसके कई उदाहरण मिलते हैं। जब राजघरानेके लोग यहां पधारते हैं तब अपने शासनकी जड़ मजबूत करनेवालोंपर रिआयतों और उपाधियोंकी बौछार करते हैं कृपा उनपर की जाती है जो राष्ट्रीय हितका घात करते हैं। जरा सोचिये तो सही! जिन मनुष्योंका सम्मान किया जाना चाहिये था वे ऐसे लोगोंकी तुलनामें कुछ नहीं समझे जाते जो निन्दाके पात्र हैं। दुराचारी राजनीतिज्ञके भीतर भी कुछ सद्गुण छिपे रहते हैं। स्वतंत्र राष्ट्र इन्हें जगाकर इनका उत्कर्ष करता है पर विदेशी सरकार नीच वृत्तियां काममें लानेके लिये उसे उपाधि

देती है। ऐसे प्रलोभनसे अवश्य ही दुर्नीति बढ़ती है। मनुष्य देवता नहीं है और उत्तमसे उत्तम परिस्थितिमें भी उसे उचित कार्य करना कठिन मालूम पड़ता है। जब बुरा काम करनेके लिये चारों तरफसे प्रलोभन मिलता है तो उसमें स्वतः नीच भाव प्रकट होने लगते हैं। देशके सौभाग्यसे हममेंसे अधिकांश इस बुरे प्रभावके वश नहीं होते। किन्तु हमारा विश्वास अपने ऊंचे आदर्शसे हट जाता है। हम आदर्शकी अवहेलना करने लगते हैं। हमारे भीतर सद्वृत्तियां रहती हैं किन्तु हम उन्हें विकसित नहीं होने देते। प्रत्येक मनुष्यका हृदय महान् और सुन्दर आदर्शके लिये उत्सुक रहना चाहिये किन्तु जो भूमि सर्वत्र जकड़ी हुई है और बरबाद हो गयी है वहां इस बातकी आशा करना निराशाके गढ़ेमें गिरना है। स्वतंत्रताके दावेका गूढ़ अर्थ यह है कि बल-प्रयोगसे हमारी आत्माका हनन कोई नहीं कर सकता।

(५)

यदि हमारा उद्देश्य बदला लेना होता तो सबसे अच्छी नीति यह होती कि हम जैसे हैं वैसे ही बने रहें। मौजूदा हालतमें हमारा देश इङ्गलैंडके लिये भयका घर है। यह बात सिद्ध करनेकी आवश्यकता नहीं है क्योंकि इङ्गलैंड अपनी मूर्खताके ढंगसे हमें शान्त करनेकी बारबार चेष्टा करके स्वयं इस बातको स्वीकार कर रहा है। यदि इंगलैंड चैनसे रह सकता तो हमारी वह क्या परवाह करता। यदि हम इङ्गलैंडसे अलग हो जानेके उद्योगमें

सफल हो जायंगे तो हमारे बाद सबसे अधिक लाभ इङ्गलैंडका ही होगा। यह बातअद्भुत सी जान जान पडती है किंतु सत्य यही है। इसकी सत्यतामें इसलिये बाधा नहीं पड़ती कि अंग्रेज लोग इस समय शायद ही इसे समझते अथवा इसका मूल्य जानते हैं। हमारे मुल्ककी सैनिक शक्ति इस समय हास्यप्रद है। स्वाधीन आयर्लैंड इसे ठीक करेगा—शत्रुके आक्रमणोंके विरुद्ध अपना सैन्यबल बढ़ायेगा। इससे इङ्गलैंड आयर्लैंडकी ओरसे होनेवाले शत्रुके आक्रमणसे बच जायगा। मेरी समझमें इतना बड़ा मूर्ख कोई न होगा जो यह विचार करे कि स्वतंत्र आयर्लैंड बिना किसी मतलब दूसरोंसे झगड़ा करेगा। हम निष्पक्ष रहेंगे। हमारी सहज बुद्धि हमें निष्पक्ष बनाये रखेगी और हमारा सत्यप्रेम भी हमें झगड़ेसे अलग रखेगा।

स्वाधीन राष्ट्रके ऊपर यह जिम्मेदारी होती है कि वह दूसरे राष्ट्रकी स्वाधीनताका शत्रु न बना रहे। सर्वजातीय स्वाधीनता सार्वभौमिक रक्षाका पथ साफ करती है। यद्यपि यह सत्य है कि जबतक संसारमें जालिम सरकारें हैं एक राष्ट्र चाहे वह कितना ही भला क्यों न हो संसारकी दशा नहीं सुधार सकता तौ भी उसका कर्तव्य है कि अपना राजकाज इस ढंगसे चलावे कि वह सार्वभौमिक स्वतंत्रता और भ्रातृत्वके अनुकूल हो। आश्चर्यजनक होनेपर भी ठीक बात यह है कि इङ्गलैंडसे सम्बन्ध टूट जानेपर ही हमारी उससे टिकाऊ मित्रता हो सकती है क्योंकि आयर्लैंडका कोई भी निवासी इतना मूर्ख

नहीं है जो चिरकालके लिये इंगलैंडसे लड़ते रहना चाहे। यह बात बुद्धिके बाहर है। हमारी स्वाधीनताके संग्रामके स्वच्छ अभिप्रायका प्रमाण यह है कि हमारी स्वतंत्रता शत्रुको हानि पहुंचानेके बदले उसका उपकार करनेके लिये होगी। यदि हम शत्रुको क्षति पहुंचाना चाहते हैं तो हमें आज कलकी ही हालतमें अर्थात् उसके लिये भयका अड्डा बनकर रहना चाहिये। ऐसे अवसर मिलते रहेंगे किन्तु ये हमें शायद ही सुखी बनावें। यथार्थमें विचार किया जाय तो कुछ देशोंको स्वतंत्र कर देनेसे ही स्वाधीनताका कार्य पूरा नहीं होता। स्वाधीनताके द्वारा नाना जातियोंमें सामञ्जस्य और संसारमें सच्चा बंधुत्व स्थापित होना चाहिये।

(६)

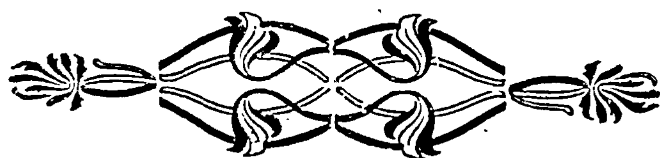
मैंने बहुत सोच विचार कर लिखा है जिससे कोई इस प्रबंधका अर्थ समझनेमें भूल न करे। मेरा प्रयोजन स्पष्ट है।

हमारी अंतरात्मा हमें बतला रही है कि हम व्यक्ति तथा राष्ट्रका उद्धार न कर सकनेसे बिना हवाके घुट घुटकर मर रहे हैं। यदि हम आगे नहीं बढ़े तो अवश्य ही हमें गिरना होगा। स्वतंत्रताका प्रश्न हमारे लिये जीवनमरणका प्रश्न है। इसीमें हमारी आत्माका मोक्ष है। यदि सारी जाति स्वतंत्र होवे लेनेके लिये कटिबद्ध है तो सुख हमारे सामने है। हमारी महान विजय होगी। यदि कुछ ही लोग सत्यप्रतिज्ञ पाये जाते हैं तो उन्हें

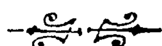
संख्यामें कम होनेपर भी युद्धक्षेत्रमें डटे रहना चाहिये। वह मनुष्यत्वके जन्मसिद्ध अधिकारके लिये लड़ रहे हैं। बहुसंख्यक लोगोंको न तो इस स्वत्वको मेटनेका कोई अधिकार है और न इसे नाश करनेकी ही ताकत है। अत्याचारी लोग सत्यके इन सैनिकोंको तंग कर सकते हैं, देश-निकाला दे सकते हैं, फाँसी पर लटका सकते हैं पर स्वतंत्रताका नाश नहीं कर सकते। आवश्यकता नहीं है कि पलटनें स्वाधीनताकी रक्षा करें और महात्मा इसकी घोषणा करें। हां कवियोंने सदा इसकी महिमा गायी है और असंख्य जनता अन्तमें इसे स्वीकार करेगी। केवल एक व्यक्ति स्वतंत्रताकी रक्षा करके सिद्ध कर सकता है कि मनुष्यसे इसे कोई जुदा नहीं कर सकता। और चूंकि ऐसे अकेले आदमीकी हार कभी नहीं होती इसलिये स्वाधीनता तथा सत्य सदव अमर रहे हैं।

आयर्लैंडकी ऐसी दशा कभी नहीं हुई कि सारे देशमें केवल एक ही आदमी स्वतंत्रताका भक्त रहा हो। उसकी ऐसी दशा कभी हो भी नहीं सकती। हम सदियोंसे इसलिए जीवित नहीं हैं कि हमपर किसी दूसरेका आधिपत्य हो। प्रस्तुत संग्रामका वास्तविक अर्थ, इसकी आध्यात्मिकता तथा यह ज्ञान कि उचित साधनोंसे स्वतंत्रता प्राप्त करना मनुष्य जातिमें भ्रातृभाव फैलानेके लिये उद्योग करना है प्रत्येक देशवासीका यह कर्त्तव्य बना देता है कि वह अधिकांश लोगोंकी उपेक्षा करके सत्यका अवलंबन करे। जिसपर बहुमतके विरोध करनेका

कठिन अवसर आता है उसे बहुत बड़ा भार वहन करना पड़ता है किन्तु वह यह जानते हुए डटा रहता है कि उसकी विजय अधिकांश लोगोंको उस प्रिय आदर्शकी ओर ले जायगी जिसका उन्हें पता भी न था। वह अपने आदर्शके लिये गुप्तरूपसे तिरस्कृत होकर, प्रकटमें भ्रमपूर्ण सिद्धांत फैलानेका दोषी समझा जाकर, आपत्कालमें अटल रहकर और कभी न हारकर, कभी हताश न होकर तथा अपने थोड़ेसे सहयोद्धाओंको आनेवाले शुभ दिनके लिये उत्साहित करते हुए अच्छी अवस्थामें अभीष्टको सिद्ध करते हुए, लड़ता रहेगा। यदि ये थोड़ेसे स्वतन्त्रताके सैनिक खेत रह जायं तो प्राण देते समय अपने आदर्शकी उच्चताको संसारके सामने उज्ज्वल रूपसे रख जाते हैं। उनके बलिदानसे देश उनके आदर्शके प्रति चौकन्ना हो जाता है और जिसने देशको जगाया तथा आदर्शकी रक्षाकी उसकी सत्यता सिद्ध हो जाती है। सत्यता सिद्ध होती है उसी सारी जातिकी आवाजके विरुद्ध जिसके विरुद्ध वह एक समय अकेला खड़ा हुआ था। जिस समय वह मैदानमें अपने प्राणकी आहुति देता है उसी समय वह सारी जातिका त्राणकर्ता बन जाता है।



द्वितीय परिच्छेद



सम्बन्ध-विच्छेद

(१)

जब हम ब्रिटिश साम्राज्यसे अलग होनेके लिये यह दलील पेश करते हैं कि सम्बन्ध टूटनेपर ही हमारा देश पूरी उन्नति कर सकेगा और इसीके द्वारा इंगलैण्डके साथ हमारी पक्की सन्धि हो सकेगी तो हमारे शत्रुओंमें नाना प्रकारके भाव देखनेमें आते हैं। कुछ लोग इसपर सरसरी तौरपर और जोशमें आकर विचार करते हैं और अपने दलका ध्यान रखते हुए समझते हैं कि यह नरम अथवा निष्पक्ष दलपर आक्षेप किया गया है। दूसरे लोग इसपर मोटा विचार करते हैं, किन्तु अपने दिलमें सोचते हैं कि हम वैज्ञानिक रूपसे इसकी आलोचना कर रहे हैं और मुस्कुराकर इस प्रश्नको बेहूदा समझ अपने दिलसे बाहर कर देते हैं। अपने ही देशके नरम तथा निष्पक्ष दलसे वर्तमान समयमें इस विषयपर लड़ना ठीक नहीं है। किन्तु इन लोगोंके कारण हम लोगोंका दिल नहीं टूटना चाहिये क्योंकि यह लोग भी जनताके साथ खिंचे हुए चले आवेंगे। एक शुभ दिन आयगा जब एक महत्कार्य या एक वीरोचित बलिदानसे देशकी चेतनतामें बिजलीसी दौड़ जायगी और जनता

अपनी कुंभकर्णी निद्रा और दुराग्रहसे एकाएक सम्बन्ध तोड़ देगी और सत्य, वीर तथा साधु रूपसे स्वतन्त्रताकी जय मनाते हुए आगे बढ़ेगी। हमें उस शुभ मुहूर्तके लिये काम करना और तैयार रहना चाहिये।

(२)

ब्रिटिश साम्राज्यसे बाहर हो जानेके प्रश्नपर बारीक आलोचना करनेवाले सज्जनके भावोंके लिये कुछ अंशमें हम भी दोषी हैं। क्योंकि हमने कभी यह समझानेकी चेष्टा नहीं की कि सम्बन्ध-विच्छेदकी नीति उत्तम और बुद्धिमानीकी है। हमने अबतक विच्छेदकी नीतिको अपना अधिकार समझकर छातीसे लगा रखा है। इसके लिये लड़ाई की है, आत्मत्याग किया है और प्रतिज्ञा की है कि प्राण जानेपर भी इसे प्राप्त करेंगे, किन्तु हमने जीवनविज्ञानमें इसका निर्दिष्ट स्थान नहीं समझा है। चाहे दार्शनिक विचारकने इसपर अधिक विचार न किया हो तौभी उसने एक त्रुटि सुझायी है। हमें इस प्रश्नपर तात्विक रूपसे भी अवश्य विचार करना चाहिये—प्रश्नके भीतर घुसकर न कि सरसरी तौरपर। दर्शन और विज्ञान इस सत्यकी घोषणा करते हैं कि सारा संसार अखण्ड और अविरोधी है और ज्ञानकी वृद्धिके साथ साथ ऐसे नियम आविष्कृत हो सकते हैं जिनसे विश्वकी व्यवस्था और एकताका और भी निरूपण हो जायेगा। इसलिये यदि हम विच्छेदवादियोंका पक्ष उचित सिद्ध करना चाहते हैं तो हमें दिखलाना चाहिये कि यह विच्छेद

हमारे राष्ट्रीय जीवनमें सामञ्जस्य, एकता तथा उन्नतिका प्रचार करेगा। यह संसारके अन्य राष्ट्रोंमें हमें उचित स्थान दिलायगा और हमें अपने उस राष्ट्रीय उद्देश्यको पूरा करनेमें सहायता देगा जिसे हम स्वाधीनताके संग्राममें सदा यह सोचते हुए सामने रखते आये हैं कि वह महान् आदर्श हमारे उद्योगकी प्रतीक्षा कर रहा है।

(३)

वह श्रेष्ठ सङ्कल्प जो हमारे जीवनका सर्वस्व है, जो हमारे सामने कठोर कर्तव्य निर्धारित करता है, जिसका अर्थ आत्मबलिदान, परमप्रयास, वर्षोंतक धैर्य्य और संभवतः उद्देश्य-सिद्धिसे पहिलेही मृत्युका आलिङ्गन करना है, इतना शक्तिशाली होना चाहिये कि इसकी सत्यता उन सिद्धान्तोंको स्पष्ट करनेसे प्रमाणित हो जाय जो उसके मूलमें हैं, तथा उसका औचित्य दिखाते हैं अन्यथा हम उसके लिये आत्मसमर्पण नहीं कर सकते। अब हम स्पष्ट करके बतलायंगे जिससे मालूम हो कि यह नीति देशवासियोंमें नयी जान डालनेवाली तथा उन्हें उत्तेजना देनेवाली है। किन्तु इसपर विचार करनेके पहिले हमें कई ऐसे दुराग्रहोंको छोड़नेके लिये तैयार रहना पड़ेगा जिन्होंने चिरकालसे हमारे दिलपर जड़ कर रखी है। यदि हम ऐसा करना नहीं चाहते तो सत्यको जलाञ्जलि देनी होगी।

इस कार्य्यमें आगे बढ़ते हुए हमारा उत्साह भी बढ़ता जायेगा और जब हम यह बात सदा ध्यानमें रखेंगे कि स्वत-

न्नताका ध्येय सब जातियोंके लिये सुख तथा मोक्ष प्राप्त करना है और देशको, न कि स्वार्थमें डूबे हुए इसके किसी छोटे टुक- ड़ेको मनुष्यके लिये अधिक मनोरम निवासस्थान बनाना है तो हम अन्तमें अवश्य विजयी होंगे।

इस विचारसे यह विषय सब विचारशील पुरुषोंके लिये महत्त्वपूर्ण तथा चित्ताकर्षक बन जाता है। हमारा जो आलोचक मुस्कुराकर इसे टाल देता वह अब उत्सुकतासे इसपर विचार करेगा तो भी उसका विश्वास इसपर जम नहीं सकता। वह उजाड़ की हुई जन्मभूमिकी ओर अंगुली उठाकर शत्रुके बलके साथ इसकी दुर्बलताकी तुलना करके यह प्रतिपादित कर सकता है कि तुम्हारे विचार अच्छे हैं, किन्तु वे स्वप्नमात्र हैं। इसके मानी हैं कि उसके दिलमें हमारी बात कुछ न कुछ जमी है। यह भी एक लाभ है।

(४)

हमारा वैज्ञानिक समालोचक देशकी उजड़ी हालत दिखाकर एक साधारण भूल करता है। वह विना हेतु मान लेता है कि देशभक्त मातृभूमिके भलेके लिये जो काम करता है उसका फल उसे अपने ही जीवनकालमें मिल जाना चाहिये। यह निस्सन्देह झूठ बात है क्योंकि मनुष्यजीवन वर्षोंसे गिना जाता है और जातिका जीवन सदियोंसे। और चूंकि राष्ट्रका कार्य भविष्यमें उसे पूर्णावस्थाको पहुंचानेके लिये हाथमें लिया जाता है देश-

भक्तको ऐसे ध्येयके लिये परिश्रम करनेको तैय्यार रहना चाहिये जिसकी प्राप्ति दूसरी पीढ़ीमें हो।

देखिये, व्यक्ति अपने जीवनका कार्यक्रम किस प्रकार निर्धारित करता है। बचपन तथा किशोर अवस्थामें वह तैयारी करता है जिससे उसका यौवन और प्रौढ़ावस्था जीवनका सर्वश्रेष्ठ युग हो सके। शरीर हृष्ट पुष्ट हो, मन सबल हो जिससे बुद्धि निर्मल बने; उद्देश्य महान् रहे और उच्चाकांक्षा हृदयमें वास करे तथा इन गुणोंकी सिद्धि एक निश्चित महान् कार्यकी सफलताद्वारा प्राप्त की जा सके। उसी मनुष्यकी प्रौढ़ावस्था उत्तम होती है जिसने जीवनका पहिला भाग भली प्रकार विताया हो और शक्ति संचय की हो। प्रारम्भिक अवस्थामें खेत तैयार किया जाता है और बीज बोया जाता है जो विभवके समय पूर्णावस्थामें पहुंचता है। यही बात जातिके लिये भी लागू है। हमें पूर्ण उन्नतिके लिये खेत तैयार करना और बीज बोना चाहिये। हमें यह बात ध्यानमें रखकर देशके कार्यमें उद्यत होना चाहिये कि जातिकी अभिलाषा एक पीढ़ीमें नहीं बल्कि कई पीढ़ियोंमें पूरी होगी। इसका आनन्द आनेवाली पीढ़ियां भोगेंगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम ध्येयको अपनी दृष्टिसे परे समझ कर निरुत्साह तथा निरानन्दसे काम करें। हम अपनेही जीवनमें इस आशास्थलपर पहुंच सकते हैं यद्यपि हम इसके सब महान् चमत्कारोंका इस क्षुद्र जीवनमें पता नहीं लगा सकते। यह आनन्दके दिन कई युगोंमें आयेंगे। कई लोग हमारी उस महान् विजयका उत्सव मनानेके

लिये जो हमारी पूर्ण स्वतंत्रताको स्थापित करेगी जीवित नहीं रहेंगे तौभी वे बिना पुरस्कार पाये न रहेंगे क्योंकि उन्हें भावी विजयकी मूर्तिके दर्शन प्राप्त होंगे। जब जान बूझकर ऐसे भविष्यके लिये परिश्रम किया जाता है तब आत्मा ऊंची उठती है। जब हम समझते हैं कि हमारे उद्देश्यको जनताने भलीभांति समझकर ग्रहण कर लिया है तो अत्याचार इस उद्देश्यका नाश नहीं कर सकता। हमारे देशका भाग्य बन गया और उसकी स्वाधीनता अटल रहेगी यह जानकर क्या आत्मा कम आनन्दित होती है? ऐसे एक नेताके विरुद्ध मनमाने आक्षेप करते जाइये किन्तु उसका हृदय आनन्दमें मग्न रहता है और यह उसे अदम्य उत्साह देता है और अन्तमें सिद्ध हो जाता है कि वही बुद्धिमान रहा। उसके विचार भूतकालके विषयमें स्पष्ट होते हैं। अपने समयके छिपे हुए सत्यका वह पता चला लेता है और जीवनके श्रेष्ठ अनुभवसे इस सत्यकी तुलना करके काममें जुटता है। इससे उसकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है, क्योंकि अन्तमें उसका कार्य्य प्रकट होता है, परिपक्क होता है और सौगुना फलता है। यह थोड़े समयमें फल न दे किन्तु जब वह अपने प्राणोंकी आहुति देता है तुरन्त उसकी महिमा फैल जाती है। उसका जीवन आदर्श रहता है क्योंकि उसके प्राण धर्मयुद्धमें गये हैं। वह थोड़े ही समयका बलिदान करके अनंत कालकी सेवा कर चुका है: वह महात्माओंकी सङ्गति करने स्वर्ग चला गया है और उनके साथ उसका नाम सदा स्मरणीय बना रहेगा।

भक्तको ऐसे ध्येयके लिये परिश्रम करनेको तैय्यार रहना चाहिये जिसकी प्राप्ति दूसरी पीढ़ीमें हो।

देखिये, व्यक्ति अपने जीवनका कार्यक्रम किस प्रकार निर्धारित करता है। बचपन तथा किशोर अवस्थामें वह तैयारी करता है जिससे उसका यौवन और प्रौढ़ावस्था जीवनका सर्वश्रेष्ठ युग हो सके। शरीर हृष्ट पुष्ट हो, मन सबल हो जिससे बुद्धि निर्मल बने; उद्देश्य महान् रहे और उच्चाकांक्षा हृदयमें वास करे तथा इन गुणोंकी सिद्धि एक निश्चित महान् कार्यकी सफलताद्वारा प्राप्त की जा सके। उसी मनुष्यकी प्रौढ़ावस्था उत्तम होती है जिसने जीवनका पहिला भाग भली प्रकार विताया हो और शक्ति संचय की हो। प्रारम्भिक अवस्थामें खेत तैयार किया जाता है और बीज बोया जाता है जो विभवके समय पूर्णावस्थामें पहुंचता है। यही बात जातिके लिये भी लागू है। हमें पूर्ण उन्नतिके लिये खेत तैयार करना और बीज बोना चाहिये। हमें यह बात ध्यानमें रखकर देशके कार्यमें उद्यत होना चाहिये कि जातिकी अभिलाषा एक पीढ़ीमें नहीं बल्कि कई पीढ़ियोंमें पूरी होगी। इसका आनन्द आनेवाली पीढ़ियां भोगेंगी। इसका यह अर्थ नहीं है कि हम ध्येयको अपनी दृष्टिसे परे समझ कर निरुत्साह तथा निरानन्दसे काम करें। हम अपनेही जीवनमें इस आशास्थलपर पहुंच सकते हैं यद्यपि हम इसके सब महान् चमत्कारोंका इस क्षुद्र जीवनमें पता नहीं लगा सकते। यह आनन्दके दिन कई युगोंमें आयेंगे। कई लोग हमारी उस महान् विजयका उत्सव मनानेके

लिये जो हमारी पूर्ण स्वतंत्रताको स्थापित करेगी जीवित नहीं रहेंगे तौभी वे बिना पुरस्कार पाये न रहेंगे क्योंकि उन्हें भावी विजयकी मूर्तिके दर्शन प्राप्त होंगे। जब जान बूझकर ऐसे भविष्यके लिये परिश्रम किया जाता है तब आत्मा ऊंची उठती है। जब हम समझते हैं कि हमारे उद्देश्यको जनताने भलीभांति समझकर ग्रहण कर लिया है तो अत्याचार इस उद्देश्यका नाश नहीं कर सकता। हमारे देशका भाग्य बन गया और उसकी स्वाधीनता अटल रहेगी यह जानकर क्या आत्मा कम आनन्दित होती है? ऐसे एक नेताके विरुद्ध मनमाने आक्षेप करते जाइये किन्तु उसका हृदय आनन्दमें मग्न रहता है और यह उसे अदम्य उत्साह देता है और अन्तमें सिद्ध हो जाता है कि वही बुद्धिमान रहा। उसके विचार भूतकालके विषयमें स्पष्ट होते हैं। अपने समयके छिपे हुए सत्यका वह पता चला लेता है और जीवनके श्रेष्ठ अनुभवसे इस सत्यकी तुलना करके काममें जुटता है। इससे उसकी सत्यता प्रमाणित हो जाती है, क्योंकि अन्तमें उसका कार्य्य प्रकट होता है, परिपक्व होता है और सौगुना फलता है। यह थोड़े समयमें फल न दे किन्तु जब वह अपने प्राणोंकी आहुति देता है तुरन्त उसकी महिमा फैल जाती है। उसका जीवन आदर्श रहता है क्योंकि उसके प्राण धर्मयुद्धमें गये हैं। वह थोड़े ही समयका बलिदान करके अनंत कालकी सेवा कर चुका है: वह महात्माओंकी सङ्गति करने स्वर्ग चला गया है और उनके साथ उसका नाम सदा स्मरणीय बना रहेगा।

(५)

यह सब पढ़ चुकनेपर भी लोग आजकलकी भीषण दशाको देखेंगे और इसी बुरी स्थितिसे होश हवास खोकर कहेंगे "ब्रिटिश साम्राज्यकी ताकत देखिये और साथही अपनी बर्बाद हालतकी ओर निगाह कीजिये। तुम्हारी सब आशाएं निरर्थक हैं?" उनसे मैं कहूंगा, "इस शुद्ध सत्यको ध्यानमें रखो, जातियां जीवित रहती हैं और साम्राज्य नष्ट होते चले जाते हैं। प्राचीन कालके साम्राज्य आज कहां हैं? आजकलके साम्राज्योंके भीतरभी उनके नाशका बीज छिपा हुआ है। जिन जातियोंने प्राचीन साम्राज्योंको उठते हुए तथा राज्य करते हुए देखा है आज उनके वंशधर उनके प्रतिनिधि बनकर विद्यमान हैं। पर इन जातियोंका जिन अत्याचारी शासकोंसे पाला पड़ा था वे मरगये हैं और दफ़नाये जाचुके हैं। जातियां जीवित रह गयीं और साम्राज्य उजड़ गये। संसारकी वर्तमान जातियोंके वंशधर उस समय भी जिन्दा रहेंगे जब कि वे साम्राज्य जो इस समय प्रभुताके लिये लड़रहे हैं सब मिट्टीमें मिल जायेंगे। हमारा अस्तित्व बना रहेगा और हमारे कार्यकी सफलताका परिमाण तथा हमारे भावी पदका गौरव बतावेगा कि हममें मातृभूमिके प्रति कितनी भक्ति थी।"

(६)

क्या सब दलोंके विचारशील पुरुषोंकी यह अभिलाषा नहीं है कि हमारी इस लम्बी लड़ाईका अन्त हो जाय और प्रतिष्ठा-

पूर्वक स्थायी सन्धि होजाय ? इस सन्धिकी शान्तिमें देशका प्राण दम लेसकता है, उसमें नयी जान आ सकती है और वह अपनेको व्यक्त कर सकता है। इस शान्तिमें ही संगीत, कला और काव्य स्वतंत्रताके आह्लादको अनवरत आनन्दके साथ प्रवाहित कर सकते हैं। हमारे आजकलके दमनका साक्षीस्वरूप यह अगाध साहित्य ज्योति पाकर जगमगा सकता है। हम सब यही स्वप्न देख रहे हैं, क्योंकि जबतक हमारा ब्रिटिश साम्राज्यसे किसी प्रकारका सम्बन्ध रहेगा तबतक हम कुछ न कुछ पराधीन बने रहेंगे। इसका प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता। ऐसा मूर्ख कौन है जो आशा करे कि जबतक ब्रिटिश साम्राज्यकी अधीनता जतलानेवाला सम्बन्ध है तबतक ब्रिटिश पारलामेन्टके साथ हमारी टक्कर न होगी। यदि कोई ऐसा है तो वह संसारके अनुभव तथा इतिहासके विरुद्ध जाता है। इस सम्बन्धके भीतर दो स्वार्थ छिपे रहेंगे। अङ्गरेज अपना स्वार्थ चाहेंगे और हम अपना, और ये दोनों एक दूसरेके विरुद्ध होंगे।

सोचिये, यूरोपके प्रत्येक राष्ट्रके भीतर संकीर्ण और उदार दलोंमें कैसा बखेड़ा होता है। एक दलकी आंखोंमें दूसरे दलके विचार सदाही छल कपटसे भरे हुए, शंकाजनक तथा उलटे जंचते हैं और ये दल किसी तरह सहमत नहीं होते। कभी २ तो ये एक दूसरेके ऊपर विश्वासघातका दोष मढ़ते हैं। इनमें सुलह कभी नहीं होती। दलबन्दीका यही नियम है। ऐसी स्थितिमें जबकि इस झगड़ेमें दो जातियोंका प्रश्न आपड़ता है,

(५)

यह सब पढ़ चुकनेपर भी लोग आजकलकी भीषण दशाको देखेंगे और इसी बुरी स्थितिसे होश हवास खोकर कहेंगे "ब्रिटिश साम्राज्यकी ताकत देखिये और साथही अपनी बर्बाद हालतकी ओर निगाह कीजिये। तुम्हारी सब आशायें निरर्थक हैं?" उनसे मैं कहूंगा, "इस शुद्ध सत्यको ध्यानमें रखो, जातियां जीवित रहती हैं और साम्राज्य नष्ट होते चले जाते हैं। प्राचीन कालके साम्राज्य आज कहां हैं? आजकलके साम्राज्योंके भीतरभी उनके नाशका बीज छिपा हुआ है। जिन जातियोंने प्राचीन साम्राज्योंको उठते हुए तथा राज्य करते हुए देखा है आज उनके वंशधर उनके प्रतिनिधि बनकर विद्यमान हैं। पर इन जातियोंका जिन अत्याचारी शासकोंसे पाला पड़ा था वे मरगये हैं और दफ़नाये जाचुके हैं। जातियां जीवित रह गयीं और साम्राज्य उजड़ गये। संसारकी वर्तमान जातियोंके वंशधर उस समय भी जिन्दा रहेंगे जब कि वे साम्राज्य जो इस समय प्रभुताके लिये लड़रहे है सब मिट्टीमें मिल जायेंगे। हमारा अस्तित्व बना रहेगा और हमारे कार्यकी सफलताका परिमाण तथा हमारे भावी पदका गौरव बतावेगा कि हममें मातृभूमिके प्रति कितनी भक्ति थी।"

(६)

क्या सब दलोंके विचारशील पुरुषोंकी यह अभिलाषा नहीं है कि हमारी इस लम्बी लड़ाईका अन्त हो जाय और प्रतिष्ठा-

पूर्वक स्थायी सन्धि होजाय ? इस सन्धिकी शान्तिमें देशका प्राण दम लेसकता है, उसमें नयी जान आ सकती है और वह अपनेको व्यक्त कर सकता है। इस शान्तिमें ही संगीत, कला और काव्य स्वतंत्रताके आह्लादको अनवरत आनन्दके साथ प्रवाहित कर सकते हैं। हमारे आजकलके दमनका साक्षीस्वरूप यह अगाध साहित्य ज्योति पाकर जगमगा सकता है। हम सब यही स्वप्न देख रहे हैं, क्योंकि जबतक हमारा ब्रिटिश साम्राज्यसे किसी प्रकारका सम्बन्ध रहेगा तबतक हम कुछ न कुछ पराधीन बने रहेंगे। इसका प्रतिवाद कोई नहीं कर सकता। ऐसा मूर्ख कौन है जो आशा करे कि जबतक ब्रिटिश साम्राज्यकी अधीनता जतलानेवाला सम्बन्ध है तबतक ब्रिटिश पारलामेन्टके साथ हमारी टक्कर न होगी। यदि कोई ऐसा है तो वह संसारके अनुभव तथा इतिहासके विरुद्ध जाता है। इस सम्बन्धके भीतर दो स्वार्थ छिपे रहेंगे। अङ्गरेज अपना स्वार्थ चाहेंगे और हम अपना, और ये दोनों एक दूसरेके विरुद्ध होंगे।

सोचिये, यूरोपके प्रत्येक राष्ट्रके भीतर संकीर्ण और उदार दलोंमें कैसा बखेड़ा होता है। एक दलकी आंखोंमें दूसरे दलके विचार सदाही छल कपटसे भरे हुए, शंकाजनक तथा उलटे जंचते हैं और ये दल किसी तरह सहमत नहीं होते। कभी २ तो ये एक दूसरेके ऊपर विश्वासघातका दोष मढ़ते हैं। इनमें सुलह कभी नहीं होती। दलबन्दीका यही नियम है। ऐसी स्थितिमें जबकि इस झगड़ेमें दो जातियोंका प्रश्न आपड़ता है,

जबकि जनता दलोंमें विभक्त नहीं,बल्कि जातियोंमें बंटी हुई होती है तब सन्धिकी आशा कहां? यह निश्चयही निष्फल आशा है। यह बात ध्यानमें रखनी चाहिये कि हमारी जाति इसलिये भिन्न नहीं है कि हम 'गेलिक' वंशके हैं किन्तु हम इसलिये अलग हैं कि हमारे देश अलग अलग हैं और हम मानवजातिके भिन्न भिन्न परिवारोंसे बने हुए हैं। यदि हम सब अङ्गरेजोंके ही वंशज होते तो भी हममें भेद रहता। इसका ऐतिहासिक उदाहरण अमेरीकाका संयुक्त राज्य है। इससे मेरी बात सहजमें समझमें आसकती है।

जब किसी आदमीके लड़के बड़े हो जाते हैं वे अपना अलग२ कुटुम्ब कर लेते हैं और स्वच्छन्द होकर रहते हैं। उनका अपने पूर्वजोंके प्रति सदा प्रेम रहता है। किन्तु यदि पिता अपने लड़केकी गृहस्थीमें हस्तक्षेप करना चाहे और उसके कार्यको अपनी मर्जीपर चलाना चाहे तो उसी वक्त टण्टा खड़ा हो जाता है। इस विषय-पर अधिक विचार करना आवश्यक प्रतीत नहीं होता। यदि आय-लैंडके सब लोग अंग्रेजोंके वंशज होते और इस रिश्तेसे इङ्गलैंड दावा करता कि उससे आयलैंडका सम्बन्ध बना रहे और उसका उसपर आधिपत्य रहे,तो फौरन झगड़ा शुरू हो जाता और इसका एकही परिणाम होता अर्थात् हमारा संबन्ध विच्छेद हो जाता।

हम चाहे किसी जातिके होते, इंगलैंडके साथ स्वभावतः पड़ोसी बनकर रहते। किन्तु अंग्रेजोंने हमें धोखा देना और तङ्ग करना पसन्द किया। और अब यह दशा हो गयी है कि का

पीढ़ियों तक आपसमें सद्भाव रहनेपर इन घातोंकी स्मृति धुलेगी। मैं फिर फिर यही बात कहता हूं जिससे टिकाऊ सन्धिके विषयमें हमारे विचारोंमें अस्पष्टता न रहे। जबतक पराधीनताका दिखलावटी संबन्ध भी रहेगा, शान्ति नहीं रह सकती। इस सम्बन्धके प्रति रोष प्रकट करने तथा इसे ललकारनेके लिये हमारे मनुष्यत्वका तेज प्रदीप्त हो उठेगा। इंगलैंडसे संबन्ध-विच्छेद तथा समानता ही उससे मित्रताका संबन्ध फिर स्थापित कर सकती है और कोई बात शान्ति स्थापित नहीं कर सकती। क्योंकि मानव चरित्रका इतिहास यही शिक्षा देता है कि व्यक्तिगत उन्नतिसे ही सर्वसाधारणमें सद्भाव फैलता है।

हम भले पड़ोसी हो सकते हैं किन्तु साथही साथ भयंकर शत्रु भी हो सकते हैं। हमारा परम्पराका शत्रु अब और अधिक हमें अपनी बगलमें रखकर चैनसे नहीं रह सकता। वर्तमान समय हमारे लिये आशाप्रद है। हमारा भविष्य प्रगतिकी ओर जा रहा है। हम अभीष्टको प्राप्त करेंगे। हमें चेष्टा करनी चाहिये कि हम योग्य निकलें।

(७)

हमें यह बात स्मरण रखनी चाहिये कि हम अयोग्य न पाये जावें। सच बात यह है कि हमें इसी बातका बड़ा अन्देशा है। यदि अपनी स्वाधीनता प्राप्त करनेमें, देशको समृद्ध करनेमें, भविष्यको उन्नत करनेमें हम अन्य राष्ट्रोंकी भूलोंसे सबक न

सीखें और महाशक्तियोंकी अपेक्षा अपना जीवन अच्छा न बनावें तो हम एक उत्तम अवसरको हाथसे गंवा देंगे तथा इतिहासके पृष्ठोंमें हम असफल गिने जायंगे। आज तक बाह्यविचारकी दृष्टिसे हम असफल गिने गये हैं, यद्यपि सदियों तक स्वतन्त्रताके संग्रामको जारी रखनाही हमारी जाज्वल्यमान विजय है। मैदान मारने पर भी यदि हम जीतका दुरुपयोग करेंगे तो हमारी असल हार हो जायगी।

एक समय हम यूरोपके अग्रणी थे। स्वाधीनताको भली भांति उपलब्ध करके हम फिर एक बार इसे रास्ता दिखलायंगे। हमें उस भ्रमसे सतर्क रहना चाहिये जो सर्वत्र फैला हुआ है। याने आज कल जैसे इंगलैंड, फ्रांस तथा जर्मनीपर किसीका दबाव नहीं है उसी प्रकार हम भी दबावसे छूटना चाहते हैं और कुछ नहीं चाहते। हमें इस भ्रमसे भी बचा रहना चाहिये कि यदि हम किसी प्रकार स्वाधीनता तक पहुंच जायं तब हम मनुष्योचित जीवन व्यतीत करना आरम्भ कर सकते हैं। किन्तु इस बीच हम अपनी जीवनचर्याके विषयमें विशेष सावधान नहीं रह सकते। यह भ्रमकी विकट छाया हमारे पथको अन्धकारमय कर देती है और सुन्दर मनुष्य-जीवन तथा हमारे बीचमें पर्दा डाल देती है। यह भ्रम ही हमें उस भीषण जीवनकी ओर घसीट सकता है जिसने संसारमें आजदिन तबाही मचा रखी है। हमें सावधान रहना चाहिये। मैं यह नहीं कहता कि हमें धनी, निर्धन, मालिक, मजदूर, आदिके झगड़े

आजही तय कर देने चाहिये, किंतु मेरे मतमें प्रत्येक व्यक्तिको समझ लेना चाहिये कि उसका कर्त्तव्य उच्चविचारयुक्त तथा उदारचरित बनना है। हमें यह सोचना चाहिये कि हमारा साथी हमसे ठगे जानेके लिये नहीं, बल्कि भाईकी तरह हमारी सहानुभूति प्राप्त करनेके लिये तथा गिरी हुई दशासे उठाये जानेके लिये पैदा हुआ है।

न तो स्वराज्य, न साधारणतंत्र और न अराजकतंत्र ही हमारा उद्धार कर सकते हैं। हमारी स्वतन्त्रता हमें शुद्ध हृदय और महान् आदर्शके ही द्वारा प्राप्त हो सकेगी। यही तत्त्वज्ञान है जिसका प्रचार करना अत्यन्त आवश्यक है।

हमें इस समय इसकी अवहेलना नहीं करनी चाहिये क्योंकि हमारा आजका काम हमारे भविष्य जीवनका निर्णय करेगा। यदि स्वाधीनताके इस संग्राममें हम सतर्क न रहेंगे तो भविष्यमें निर्मल न रह सकेंगे। मैं ऐसे कई लोगोंको जानता हूं जो उदार चरित्रके प्रति उदासीन नहीं हैं किन्तु इस आशंकासे कि शुद्ध जीवन हमारे कार्यमें अड़चन डालेगा और सफलताको असम्भव बना देगा, निष्ठुर नैतिक जीवनसे डरते हैं। हमें यह विचारकर अपनी गलती सुधार लेनी चाहिये कि समय हमारे अनुकूल हो रहा है। हमारे देशकी ताक़त बढ़ रही है और शत्रुकी मुट्ठी ढीली पड़ रही है।

जनता किश्तोंसे अधिकार लेनेमें सन्तुष्ट नहीं है। उसकी शक्ति अपने स्वत्वोंको प्राप्त करनेके लिये अधिकाधिक बढ़ रही है और

वह इन्हें लेनेके लिये उपयुक्त हथियारोंसे सुसज्जित है। अपने ही समयमें हम बहुत आगे बढ़ गये हैं। एक घटना इसे स्पष्ट कर देती है। बीससे भी कम साल हुए कि देशी भाषा तिरस्कारकी दृष्टिसे देखी जाती थी। आज इसके उद्धार करनेका आन्दोलन इतना प्रबल हो गया है कि राष्ट्रीय विश्वविद्यालयमें इसे आवश्यक पाठ्य विषयोंमें रखना पड़ा है। इस शुभ चिह्नको देखकर क्या किसीको अब भी सन्देह हो सकता है कि समय स्वाधीनताका मार्ग नहीं बना रहा है और हम विजयकी ओर कूच नहीं कर रहे हैं?

इसमें मुझे नाममात्र भी सन्देह नहीं है कि हम स्वाधीनता लेंगे किन्तु इसका मुझे पूरा भरोसा नहीं है कि हम उसका सदुपयोग कर सकेंगे। क्योंकि जगतमें सर्वत्र देखा जाता है कि इसका कितना शोचनीय दुरुपयोग किया जा रहा है। यह हमारा सुनिश्चित विचार होना चाहिये और हमें इसका बीड़ा उठा लेना चाहिये कि हमारा भावी इतिहास किसी भी तत्कालीन राष्ट्रसे कम गौरवपूर्ण न हो। निस्सन्देह हम समृद्धि बढ़ानेकी चेष्टा करेंगे पर हमारी उत्कट इच्छा आदर्श बननेकी रहेगी।

हम अपनी शक्ति बढ़ायंगे—दूसरे देशोंको गुलाम बनानेके लिये नहीं बल्कि उनसे भ्रातृभावको बढ़ाने तथा संसारकी निर्बल जातियोंकी रक्षा करनेके लिये। हम अपनी संस्थाओंका गौरव बढ़ायंगे इस लिये नहीं कि उनसे राष्ट्रकी स्थिरताका निश्चय हो बल्कि नागरिकोंका सुख बढ़ानेके लिये। तभी हम प्राचीनकालके

समान यूरोपके पथप्रदर्शक बन सकेंगे। हम सारी दुनियांको अर्थलोलुपता, निष्ठुर शासन तथा ईर्ष्यापूर्ण और क्रूर राजनीतिके दुःस्वप्नसे जगा देंगे। संसार हमारी फिरसे जगी हुई आत्मा तथा एक नवीन और सुन्दर आदर्शको देखकर आश्चर्यमें मग्न हो जायगा और हम अपने राष्ट्रकी नींव वास्तविक स्वाधीनतापर रखेंगे जो सदा घनी रहेगी।



उनमें सबसे अधिक गड़बड़ी "नैतिक बल" के अर्थके विषयमें फैली हुई है।

(२)

आयर्लैण्डमें प्रायः सौ वर्षसे प्रत्येक ऐसे राजनीतिज्ञकी दुर्बलता छिपानेके लिये जो मातृभूमिकी पूरी स्वाधीनताके लिये लड़नेको अनिच्छुक अथवा भयभीत रहता है 'नैतिक बल' शब्दका निरन्तर दुरुपयोग किया जाता रहा है। वर्त्तमान समयमें ऐसे आदमी देखनेमें आते हैं जिनमें नैतिक साहसका अभाव होनेपर भी वे नैतिक बलके नामपर काम कर रहे हैं। दूसरी ओर ऐसे आदमी हैं जिनकी नस नसमें नैतिक बल भरा हुआ है पर वे पशुबलके उपासक बतलाये जाकर हंसीमें उड़ा दिये जाते हैं। इस गड़बड़ीको साफ करनेके लिये हमें नैतिक बल और नैतिक दुर्बलताका भेद समझ लेना चाहिये।

यह भेद महत्त्वका है। चाहे हम नैतिक साहस कहें, चरित्र-बल कहें या नैतिक शक्ति कहें सबका अर्थ एक ही है। यह मन और हृदयका वह श्रेष्ठ गुण है जो मनुष्यको पशुबलकी प्रत्येक शक्तिके सामने अजेय खड़ा रखता है। मैं इसका नाम नैतिक बल रखता हूं और इसकी परिभाषा यों करना चाहता हूं कि नैतिक-बली वह है जो किसी कामको उचित, आवश्यक तथा श्रद्धाके योग्य समझ फलकी परवा न कर सत्यके समान इसकी रक्षा करनेको डटा रहता है। वह चञ्चल सिड़ी नहीं है

जिसे अपने पागलपनके परिणामकी नाममात्र भी परवा न हो, जो एक बावलेपनकी आशा कर रहा हो और इससे जो तबाही फैलेगी उसके प्रति उदासीन हो। कदापि नहीं; उसका मुख्य सिद्धान्त यह है कि सच्ची बात ही अच्छी बात है और उचित रूपसे पालन की हुई इस भली बातका बुरा परिणाम नहीं हो सकता। ऐसा वीर अपने कार्यकी भली या बुरी गतिको शान्त-चित्तसे देखता है। किसी कड़ी परीक्षाके समय अपने साहसपर पूरा भरोसा न होनेके कारण चाहे वह घबड़ावे किन्तु अपने पक्षकी श्रेष्ठता और अपने कार्यके परिणामकी महत्तापर वह सदा शान्तिसे विश्वास रखता है। ऐसे बली पुरुषकी अपने साहसके प्रति घबड़ाहट शीघ्र दूर हो जाती है क्योंकि महान् कार्य महान् आत्माओंको पैदा करता है। ऐसे कई लोग जो डर डरकर काम हाथमें लेते हैं वीर गतिसे मरते हैं। यह बात महान् आदर्शोंकी रक्षाके लिये लड़नेवाले मनुष्योंकी आश्चर्यजनक तथा अपूर्व प्रसन्नचित्तताका रहस्य बतलाती है। दुर्बलप्रकृतिके लोग इस रहस्यको कम समझते हैं। स्वाधीनताका सैनिक समझता है कि सत्यके संग्राममें वह आगे बढ़ा हुआ है। वह जानता है कि उसकी विजय संसारको सुन्दर बनायगी। यह भी उसे मालूम है कि यदि उसे दूसरोंको कष्ट देना पड़े या स्वयं कष्ट भोगना पड़े तो वह पीड़ितोंके उद्धारके लिये, पराधीनताकी जंजीरसे जकड़े हुओंके बन्धनोंको तोड़नेके लिये, जो देशके लिये जान दे रहे हैं

उनका गौरव बढ़ानेके लिये, तथा देशकी भावी सन्तानको सुखी तथा निश्चिन्त बनानेके लिये होगा। इस संग्रामके प्रत्येक पहलूमें जो शक्ति उसे सम्हाले हुए रखेगी उसके लिये सबसे पहले दृढ़ तथा धीरचित्तकी आवश्यकता है। सार यह है कि उसमें नैतिक बल अवश्य हो। उस पुरुषको जो सेनाके साथ आक्रमण करनेमें ही वीर रह सकता है जब अकेला खड़ा रहना पड़ेगा तब उसकी वीरता काफूर हो जायगी। सब देशबन्धुओंको यह बात भली भांति समझ लेनी चाहिये कि जबतक मातृभूमि अपनी निजकी पलटनें नहीं खड़ी कर सकती ऐसे आदमियोंकी बराबर आवश्यकता पड़ेगी जो अकेले खड़े होकर लड़नेकी परीक्षामें उत्तीर्ण हो सकें। यह सबसे विकट, सबसे श्रेष्ठ और वह परीक्षा है जो निश्चित तथा महान् विजय दिलाती है क्योंकि एक सशस्त्र पुरुष असंख्य जनताका सामना नहीं कर सकता और न एक सेना अगणित दलोंपर विजय प्राप्त कर सकती है। लेकिन संसारके सब साम्राज्योंकी सारी सेनाएं एक सच्चे आदमीकी आत्माको नहीं जीत सकती, यह अकेला आदमी बाजी मार ले जाता है।

(३)

प्रत्येक दास भावका विरोध करनेकी जिसे नैतिक बलके नामसे आश्रय मिलता है हमने इतनी बड़ी आवश्यकता समझी कि हममेंसे वे लोग जो अपनी मनुष्यताका प्रमाण देना चाहते

थे गला फाड़ फाड़कर चिल्लाने लगे कि साथ साथ शारीरिक बलकी भी परख होनी चाहिये। विपरीत समयकी नीचतासे हम जितना अधिक जलने लगे उतना ही अधिक तथा बार बार हम शारीरिक बलकी परखके लिये पुकार मचाने लगे कि "फिर नया जीवन दान करनेवाला समय आ पहुंचा है और दूषित वायु शुद्ध की जानी चाहिये।" हमने अजेय आत्मावाले पुरुषकी सबसे कड़ी परीक्षाकी पक्की जांच वह रखली है जो अत्याचारीकी एक मात्र शक्ति है अर्थात् पशुबलका अवलम्बन। हमने युद्धक्षेत्रोंकी मारकाटके झूठे गीत गाये हैं। हमने शत्रुके रक्तसागरको तैरनेकी प्रशंसा की है मानो रक्तमय युद्धक्षेत्र अतीव सुन्दर है। हमने शान्तिके प्रति बड़ी घृणा दिखलायी है मानो प्रत्येक रण पुलकित करनेवाला है। किन्तु युद्धक्षेत्रमें एक प्रसिद्ध सेनापतिने कहा था कि समर रौरव है। यह भले ही अत्युक्ति हो किन्तु इस चेतावनीमें वह भीषण सत्य है जो सदा ध्यानमें रहना चाहिये। यदि हममेंसे कोई अब भी ऐसी बातको छोड़नेके लिये निवेदन किये जानेपर नाक भौं सिकोड़ता है जिसे वह प्रतिहिंसाके लिये परम आवश्यक समझता है तो उसे अपने हृदयके भीतर टटोलना चाहिये और विचार करना चाहिये कि किसी बदनाम विश्वासघाती अथवा दोषीकी मृत्युसे उसके हृदयपर कैसे भाव उत्पन्न होते हैं। ऐसे अवसरपर हृदयमें शान्ति प्राप्त नहीं होती, किन्तु भयका भाव प्रधान होता है। मृत्यु हम सबको

विचारशील बना देती है। किन्तु मौतसे दूर रहनेपर बहुधा यह बात विश्वासयोग्य नहीं जंचती और मनुष्य स्वतन्त्रतारूपी जहाजको शत्रुके रक्तको चीरते हुये पार करनेकी स्तुति गला फाड़कर करता रहता है। मैं उससे कहता हूं "बस रुक जा"। तू अपनी भूलको साधारण दुर्घटनाको भयंकरता तथा मुर्गे मेढ़ों आदिकी लड़ाईपर विचार करके सुधार सकता है।

(४)

हां, युद्धका सामना करना पड़ता है और खून बहाना पड़ता है। आनंदसे नहीं—किन्तु दारुण आवश्यकताके कारण—क्योंकि जातिमें ऐसी घोर नैतिक वीभत्सता वर्तमान है जो दारुण शारीरिक वीभत्सतासे बहुत गिरी हुई है। निर्भीक आत्माके लिये स्वाधीनता अपरित्याज्य है और इसलिये घोरसे घोर यंत्रणा सहकर भी स्वतंत्रता प्राप्त करनी चाहिये। आत्मा शरीरसे बड़ा है। और युद्धकी न्याय्यताका यही प्रमाण है। यदि लड़ाई करनेमें आगा-पीछा सोचनेसे प्रस्तुत स्वाधीनताका हरण होता है या हम विद्यमान गुलामीमें ही अकर्मण्य होकर पड़े सड़ते हैं तो प्रत्येक मनुष्यका धर्म है कि यदि वह खड़ा है तो लड़ पड़े, यदि गिराकर दबाया हुआ है तो बागी बन खड़ा हो। जबतक स्वाधीनता पक्की न हो जाय उसे शान्तिसे क्षणभर न रहना चाहिये क्योंकि जिस जातिकी आजादी छिन गयी है उसको जो नैतिक महामारी अपना ग्रास बना लेती है वह मनुष्योंके शरीरके एक अंगको दूसरे अंगसे काट देनेसे जो अनर्थ पैदा होता है उससे अधिक अनर्थ-

कारी है। देह नश्वर है; आत्मा अमर है। जीवनमें इससे बड़ा अनिष्ट कोई नहीं हो सकता कि इस अविनाशी अंशका पतन हो जाय। जरा उन सब घृणित बातों तथा नीचताकी ओर ले जानेवाली वृत्तियोंका विचार तो कीजिये जो गुलामीकी हालतमें पड़े हुए लोगोंका खून चूस लेती हैं। अधिकारी लोग अपनी प्रभुता स्थिर रखनेके लिये घूस देते हैं। समय देख अपना स्वार्थ सिद्ध करनेवाले लोग प्रत्येक सिद्धान्तका मोल ठहराते हैं। सार्वजनिक जीवन कलुषित हो जाता है। व्यक्तिगत जीवनमें मुर्दादिली छा जाती है। उच्च आदर्शवालोंके लिये कठिन अवसर आ पड़ता है। उन्हें जघन्य आचरणसे मुठभेड़ करनी पड़ती है। उनका धैर्य टूट जाता है और अन्तमें उन्हें स्वाधीनताका वह झण्डा जो कभी बड़ी वीरताके साथ ऊंचा फहराया गया था, चुपचाप छोड़ देना पड़ता है। फल यह होता है कि निरुत्साहियोंकी संख्या बढ़ जाती है और सर्वसाधारणमें अन्धेर, निरानन्द और निराशा फैल जाती है। मातृभूमि सर्वत्र उजड़ती हुई दिखलायी देती है। जिस देशकी स्वतंत्रता हरण होगयी है वहां दुराचार, नीचता, कायरता, असहिष्णुता, तथा प्रत्येक पामर वृत्ति अन्धेरेमें खड्की तरह सेरासर फलती फूलती है और देशको झुलस देती है। पराधीन देशका दृश्य और पराधीन लोगोंकी आत्मा घृणास्पद बन जाती है। उन्हें देख तबियत फिर जाती है और वे भयानक मालूम पड़ते हैं—भयानक इसलिये कि उनके द्वारा उच्च सिद्धान्त गिराये गये हैं—और गौरवपूर्ण

भविष्य संकटमें पड़ जाता है। यह कम भयंकर होता यदि भूचाल ऐसे देशको चूर चूर करके महासागरमें डुबो देता। गुलामीकी नैतिक महामारीसे अपनी रक्षा करनेके लिये मनुष्य अचानक हथियार पकड़ते हैं इसकी परवा नहीं करते कि संसारमें इसका परिणाम क्या होगा।

जो लोग पार्थिव फलपर अधिक जोर देते हैं वह भी इससे अपनी रक्षा नहीं कर सकते क्योंकि नैतिक अस्वस्थतासे ही शारीरिक ध्वंस शुरू होता है। इसमें कुछ विलम्ब भले ही होजाय किन्तु फल अनिवार्य है। इस प्रकार शारीरिक शक्ति उचित व न्यायसंगत सिद्ध होती है। स्वयं नहीं; किंतु नैतिक बलको प्रकट करनेके कारण। जहां शारीरिक शक्ति उच्च सिद्धांतोंकी नींव-पर खड़ी नहीं रहती वहां दुष्टताकी मूर्ति बन जाती है।

सच्चा विरोध नैतिक और शारीरिक बलके बीच नहीं है किन्तु चरित्रबल और चरित्रकी दुर्बलताके बीच है। यही प्रधान भेद सब तरफसे भूला जा रहा है। जब अवसर आ पड़ता है और समय हमें बाध्य करता है तो हथियार उठाना अत्यन्त आवश्यक होजाता है। किंतु इस घोर संकटमें हमें अपना संयम नहीं खोना चाहिए। यदि हम शत्रुका खून बहानेको उछलते हैं, पशु-बलकी कीर्ति गाते हैं तो हम स्वयं अत्याचारी बनकर इसकी पताका फहराते हैं और अपने सिरपर कलंकका टीका लगाते हैं। दूसरी ओर यदि हम ऐसे अवसरपर इस निठुर कार्यको करनेमें हिचकते हैं तो हम आत्मिक बलका अभाव

दिखलाते हैं तथा लड़ाईके सियारोंको दुर्बलता तथा जंगली-पनकी चरम सीमा तक पहुंचने देते हैं और वह चरित्रहीनता तथा विभीषिका पैदा करने देते हैं जो अन्तमें हमारा नाश कर देगी। आजादीका पक्का सिपाही पूरे जोरसे चोट मारने और अच्छी तरह शत्रुको पटकनेमें आनाकानी नहीं करेगा। वह जानता है कि उसकी दृढ़ प्रतिज्ञापर ही स्वाधीनताका उद्धार तथा उसकी रक्षा निर्भर है। किन्तु वह सदा याद रखेगा कि अपनेको काबूमें रखना ही वह उत्तम गुण है जो मनुष्यको जानवरोंसे अलग करता है। प्रतिहिंसावृत्ति अत्याचारी और गुलामोंका कायरतापूर्ण आश्रय है और उदारचरित्रता मनुष्यताका स्वच्छ अलंकार है। तथा वह सदा यह ध्यानमें रखेगा कि वह शत्रुकी जान लेनेके लिये हथियार नहीं उठा रहा है किंतु उसके दुष्कर्मोंका नाश करनेके लिये, तथा इन दुष्कर्मोंका नाश करनेसे वह केवल अपनेहीको स्वाधीन नहीं करता, किन्तु अपने शत्रुका भी उद्धार करता है। हममेंसे अधिकांश लोगोंके लिये सम्भवतः यह स्वप्न बहुत ही बड़ा हो किन्तु उसको जो हमारे देशकी समस्याके मर्मको पहचानता है और अपने चरित्रको सन्मार्गपर रखना चाहता है यह उचित जंचेगा। वह घोरसे घोर संग्राममें यह कदापि नहीं भूलेगा कि आज तथा कलका शत्रु बादको हमारा सच्चा सहयोद्धा बन सकता है।

(५)

यदि यह परम आवश्यक है कि हमको बिना तैयारी किये

लड़ाईमें कूदनेसे पहिले अपना प्रमुख सिद्धान्त निश्चित रूपसे स्थिर करलेना चाहिये, तो यह और भी परम आवश्यक है कि हमें इस समय अपना चित्त शुद्ध करके सत्यकी ओर लगाना चाहिये, क्योंकि हमें यह हानिकर अभ्यास पड़गया है कि समयको अनुपयुक्त बतलाकर महत्वपूर्ण प्रश्नोंको दूसरे समयके लिये स्थगित कर देते हैं। साफ बात यह है कि हममें चरित्रबलका अभाव है और वह गुण जो समरकालमें हमारी रक्षा करेगा गुलामीके समय हमारा उद्धार करनेके लिये उत्तम नीतिका काम देगा।

इसपर अधिक लिखना फिजूल है कि दासताकी दशामें नीच बृत्तियां बढ़ती हैं। जब हम यह स्वीकार कर लेते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि ऐसी दशामें हम अपनेको बाध्य समझकर प्रत्येक अवगुणको सचेष्ट होकर भगावें। स्वाधीनताकी सामान्य अवस्थामें कई क्षणिक दुर्गुण उत्पन्न हो सकते हैं, लेकिन वे अनर्थकारी नहीं होते। जनताकी स्वाधीनताकी उज्ज्वल ज्योतिमें वे उसी प्रकार भस्म होजाते हैं जिस प्रकार सूर्यके आलोकमें रोगके कीटाणु। जहां स्वाधीनताका गला घोंटा जाता है और लोगोंका चरित्र भ्रष्ट हो जाता है वहां छोटीसे छोटी बुराईको भी बढ़नेके लिये अच्छी भूमि मिल जाती है। वह पनपती और फैलने लगती है। इस प्रकार बुराइयोंकी संख्या बढ़ती है और मुल्क चौपट हो जाता है। यही कारण है कि उदारचरित नेताओंको जो पतित जातिके उद्धारकी चेष्टा करते हैं

प्रत्येक ऐसी छोटी त्रुटि और दुर्बलताका ध्यान रखना चाहिये जो स्वाधीनताके समय हमारी आत्माको अशान्त न कर सके। प्रत्येक कठिनाईका आंखोंके सामने आनेका समय ही उसके निर्णयके लिये उपयुक्त है। इस कार्यमें टालमटोल करना विपत्तिको निमन्त्रण देना है। हमारी अनेक कठिनाइयोंसे हमें दृढ़ निश्चय ही पार उतारेगा। किन्तु किसी विशेष तथा आवश्यक समस्यासे साफ निकल जानेके लिये नीतिका बहाना ढूंढ़ा जाता है।

कुछ लोग कहते हैं कि सब लोग इस प्रश्नपर सहमत नहीं होंगे। दूसरी ओरसे आवाज आती है कि मूर्ख लोग बहक जायंगे। ऐसे टालबाजोंको कोई न कोई बहाना मिल ही जाता है। कठिनाई यह है कि प्रत्येक पक्ष सत्यके एक अंशको पसन्द करता है। कोई पक्ष सोलहों आने सत्य नहीं चाहता। लेकिन हमें विशुद्ध सत्य अक्षर अक्षर ग्रहण करना चाहिये। हम वह अर्थ नहीं मानना चाहते जिसे अज्ञ जनता भला समझे। और न दार्शनिकोंकी काट छांट ही हमें पसन्द है। हम सत्य—विशुद्ध सत्यके सिवा कुछ नहीं चाहते। प्रत्येक ऐसे कार्यके लिये जो जनताके प्रति हमारा धर्म है और जिसपर विचार करनेका सर्व साधारणको अधिकार है, हमें यही नियम पालन करना चाहिये।

चूंकि हमें ज्वलन्त प्रश्नोंका निर्णय करनेमें घोर कठिनताका सामना करना पड़ता है और इस काममें हम संकटमें भी पड़

सकते हैं इसलिये ऐसे प्रश्नोंपर धूल डालनेकी बुरी प्रवृत्ति हम लोगों में जड़ पकड़ रही है। परन्तु परिणाम चाहे कुछ हो, हमें इसका सामना करना ही चाहिये। बहुमत देखकर लोगोंका मेल कराना भले ही अच्छा हो, पर ऐसा मेल बिना परस्पर विश्वासके नहीं होता। स्वतन्त्रताके संग्राममें यह छिपा हुआ अविश्वास भूतके समान चिपटकर हमारा नाश करनेके लिये प्रबल आशंकामें परिणत हो जायगा। हमें यह तुरंत दूर कर देना चाहिये। हमें जनताको सिखाना चाहिये कि मतभेदकी बातोंपर आदर, सहन-शीलता तथा तेजके साथ विचार करना ठीक है। और जीवनक ऐसा सर्वसम्मत मार्ग ढूंढ़ निकालना चाहिये जो सबके हृदयां परस्पर विश्वास उत्पन्न कर दे। यह सत्य बात छिपाना हमा लिये अत्यन्त हानिकारक होगा कि हम वर्तमान समयमें अपं प्रति विश्वास पैदा करनेमें असमर्थ हैं। स्थितिको सुलझानेके लिं सत्यका अवलम्बन ही एक आवश्यक कार्य है। हम तुरंत सफल होनेकी आशा नहीं कर सकते, तो भी यह परम ध्येय सद दृष्टिके सामने रखना चाहिये। इसके विरुद्ध चारों ओरसे आपत्ति की जायगी। अनुभवी सांसारिक मनुष्य जो अपने ही सुखक चिन्ता करता है, आपत्ति करेगा। वह नीच व्यापारी जो अपं ही मुनाफेकी परवा करता है एतराज करेगा। वह नीति पुरुष जो सदा बीचबिचावका रास्ता ढूंढ़ निकालना चाहता उज्र करेगा। एक विशेष प्रकारका धार्मिक निराशावादी जं प्रत्येक प्रस्तावमें संकटकी ही गंध पाता है; तथा कई औ

भी आपत्ति करेंगे। हमें स्वार्थीके सुख और व्यापारीके लाभका विचार करनेकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु नीतिज्ञ तथा धार्मिक निराशावादीके विषयमें कुछ कहना चाहिये।

नीतिज्ञ पुरुष सत्यपर स्वच्छ विचार करनेके बदले कामके भले बुरे परिणामको देखता है। वह कहता है, "भाई! तुम और हम कुछ विषयोंपर निजू तौरपर वादविवाद कर सकते हैं। हम शिक्षित हैं और बात समझते हैं। मूर्ख लोग कुछ नहीं समझते और उन्हें समझदार मानकर तुम बुराई पैदा करते हो। यह बुद्धिमानी नहीं है।" उसके प्रति मेरा यह उत्तर है "तुम सम्पूर्ण सत्यको प्रकट करनेमें डर रहे हो। मैं सत्यको छिपानेमें डरता हूं। तुम्हें नासमझ लोगोंके सामने बात खोलनेमें हानिकी आशङ्का है। मुझे तुमसे हानिकी आशङ्का है कि तुम बातको दबा रहे हो। मैं यह नहीं कहता कि तुम इन मूर्खोंको सच्ची सच्ची बात कहनेसे ज्ञानी बना सकते हो, पर मेरा कहना है कि अपनी ही आत्मिक उन्नतिके लिये तुम्हें अखण्ड सत्य प्रकट करना चाहिये।"

नीतिज्ञ मित्रकी युक्तियोंमें छिद्र यह है कि वह जीवनको संकुचित बनाकर देखता है और अपने साथ सदा रहनेवाले पदार्थके अपरिमित महत्वको नहीं देखता है। मनुष्य यदि सच बोलनेकी अपेक्षा अपनी अल्पबुद्धिका परिचय देनेकी आवश्यकता अधिक समझता है, तो वह पागलपना करता है। मैं ऐसी नीतिका तिरस्कार करता हूं।

अब मैं दो बात अपने धार्मिक निराशावादीसे कहूंगा। मैं धर्मका गहरा अर्थ लगाता हूं। जीवनके प्रश्नोंको योंही छोड़ देना नहीं बल्कि उनको हल करना मैं धर्म समझता हूं। मैं नतीजेके लापरवाहीके सबब नहीं किन्तु अपने दृढ़ विश्वासके सामने सिर नवाकर उससे निडर होनेको कहता हूं। भय और धर्म परस्पर विरोधी हैं।

(६)

सारे परिच्छेदका सार यह है कि आजकल तथा आनेवाले संग्रामके प्रत्येक स्वरूपमें सशक्त शरीरसे सबल आत्माकी अधिक आवश्यकता है। हममें जोश होना चाहिये, किन्तु यह चित्तके द्वारा संयत और नियंत्रित होना चाहिये। वर्त्तमान समयमें हमारा मुख्य काम वीरता तथा तेज बढ़ानेका है। यह गुण प्रत्येक मनुष्यकी आत्माको अजेय दुर्ग बना देंगे। सेनाएं हार सकती हैं, किन्तु वीर और तेजस्वी आत्मा सदा अथक रहती है। जिस चोलेमें यह आत्मा वास करती है वह चूर चूर किया जा सकता है; पर यह आत्मा शरीर छाड़ते समय दूसरोंमें जान डाल देती है जिससे उनके हृदयोंमें कार्य करनेके लिये आग सी भडक उठती है। बस इस संग्रामका परिणाम पूरी विजय है। दृढ़प्रतिज्ञ और सच्चा आदमी अन्तमें अवश्य विजयी होता है। शब्दजाल उसे मैदानसे नहीं भगा सकता, किसी प्रकारकी दुर्बलता उसे पाशविक प्रतिहिंसाकी ओर नहीं झुका सकती; न तो वह अपना जन्मसिद्ध अधिकार छोड़ेगा और न अपनी

प्रकृतिको विगाड़ेगा। प्रत्येक संकटमें वह अविचलित रहता है और प्रत्येक कार्य उसकी शुद्धताका परिचय देता है।

वीर सहयोद्धाओ! आनन्द मनाओ कि हमारी आत्माओं-पर अभी हमारा ही अधिकार है। इस निर्जीव तथा आनन्द-शून्य समयमें भी हमारे पुराने तेजकी एक झलक फिरसे दिखायी देने लगी है। वह सरगर्म पुराना जोश हमें फिरसे जगा रहा है। हम मातृभूमिके अधिकारोंकी रक्षा करने, उसकी स्वतन्त्रताके लिये जूझने और वर्त्तमान पीढ़ीको गौरवका पद दिलानेको आगे बढ़ रहे हैं। हमारी जीत होगी। शत्रु अपने लड़ाईके जहाज तथा असंख्य सैनिकोंका गर्व करता रहे। रोम और कार्थेजकी फौज आज कहां हैं? पर स्वतन्त्रताकी वह लहर जिसको उन्होंने ललकारा था आज भी मौजें ले रही हैं और तरुण जातिमें जीवन डाल रही हैं। आओ, हम सब अपना सिर ऊंचा करें। हम संग्राममें अपने झंडेको बहादुरीके साथ पकड़े रहेंगे। हम अपनी आत्माको पृथक्, सिद्धान्तानुकूल, निष्कपट और निर्भीक बनावें और इसे महान् कार्योंके लिये उपयुक्त बनाकर अदम्य बनावें। अदम्य उत्साहके द्वारा ही हमारी पूरी विजय निश्चित होगी।



चतुर्थ परिच्छेद



शत्रु और मित्र

(१)

शत्रु हमारे वे भाई हैं जिनसे हम न्यारे हो गये हैं। इस मौलिक सत्यके आधारपर ही हम स्वदेशके सब दलोंमें यथार्थ देशभक्ति तथा अपने पुराने शत्रु इङ्गलैंडके साथ स्थायी संधि स्थापित करनेकी आशा कर रहे हैं। दुराग्रहके भावोंके कारण अपने ही लोगोंके भिन्न भिन्न दलोंमें बिल्कुल विरोधी विभाग हो गये हैं और आयर्लैंएड और इङ्गलैंडके बीच घृणाकी ऐसी दीवार खड़ी हो गयी है जिसे पार करना प्रायः असम्भव है। यदि मातृभूमिको पुनर्जीवित करना है, तो देशमें एकता होनी चाहिये। यदि संसारको पुनर्जीवित करना है, तो हमें सारे संसारमें एकता स्थापित करनी चाहिये। यह एकता एक शासकके अधीन रहनेसे नहीं, किन्तु सब जातियोंमें भाईचारा फैलानेसे हो सकती है। इस उच्च लक्ष्यको प्राप्त करना प्रत्येक व्यक्ति व राष्ट्रका कर्त्तव्य है। इस लक्ष्यको हम न भूलें, इस हेतु हमें बार बार अपने विचारोंका संशोधन करनेके लिये इस सिद्धांतको मनन करना चाहिये कि मनुष्य जातिकी उत्पत्ति एक आदि पुरुषसे हुई है। हमें संसारकी उस सुन्दरतापर गौर करना चाहिये जो सबकी

पैतृक सम्पत्ति है। हमें उन आशाओं और आशंकाओंपर भी ध्यान देना चाहिये जो मनुष्यजातिमें समान हैं और सबसे अधिक इस बातका ख्याल करना चाहिये कि जगतकी सब जातियोंका स्वार्थ आपसमें उलझा हुआ है।

उक्त बातोंको दिलसे निकाल कर यदि कोई जाति अपने अधीन भूभागको अनीतिपूर्ण शासन तथा पामरताके कार्योंसे कलङ्कित करती है, तो वह संसारकी शांतिको सङ्कटमें डालती है। उक्त सिद्धांतको न जानते हुए भी जब एक पराक्रमी जाति अपने ऐसे पड़ोसीसे भिड़ जाती है जो इस समय उसका वैरी बना हुआ है और वह अपने सहज चरित्रकी आज्ञाके अनुसार वीरता तथा उदारतासे लड़ती है तो वह जाति अपने शत्रुके ध्यानको पवित्र जीवनकी ओर लगा देती है। यह भी सम्भव है कि वह अपने शत्रुका जीवन सुखमय बना दे; उस सुखस्वप्नकी ओर उसका मुंह फेर दे जिस ओर उसकी पापमें डूबी हुई मलीन आत्मा कदापि न जा सकती थी।

(२)

स्वतंत्रता देवीके मंदिरकी ओर जानेवाले यात्रियोंके मेलकी कठिन परीक्षा होगी। देशवासियोंकी मित्रता भी एक दिनमें नहीं स्थापित हो सकती, विदेशियोंसे तो बहुत दिनोंमें मेल हो सकता है।

हमें पथसे हटानेके लिये तथा जो थोड़ेसे सैनिक दृढ़ विश्वासके साथ झंडेको पकड़े खड़े हैं उन्हें तितर बितर करनेके

लिये कितने ही प्रलोभन दिये जायंगे। इसलिये हमें यह सम्बन्ध भली भांति समझ लेना चाहिये जो हम लोगोंको अनेक विघ्न बाधाओंका घोर सामना करते हुए भी स्वतन्त्रताकी ओर आगे बढ़नेमें एक किये हुए है। सच्चा भाईचारेका सम्बन्ध ही ऐसी एकता स्थापित कर सकता है। किन्तु हम इस सत्यको बहुत ही कम हृदयङ्गम करते हैं। जब प्रगाढ़ और प्रचण्ड देशभक्ति भिन्न भिन्न मतोंके लोगोंमें सहयोद्धाओंका भाव भरके उन्हें स्वच्छन्दतापूर्वक एक उद्देश्यके लिये मिला देती है तथा जब सब सच्चे मतोंमें यह मेल देखनेमें आता है तब दूसरे मुर्दादिल और कम मुस्तैद लोग इस ऐक्यको सन्देहकी दृष्टिसे देखते हैं, और यदि वे हममें शामिल भी होते हैं तो अनिच्छापूर्वक। और लोग तो पास ही नहीं फटकते और समझते हैं कि स्वतन्त्रताके भक्त भ्रममें भूले हुए हैं। वे यह सोचते हैं कि इस समय मिले हुए इन भिन्न भिन्न मतोंके लोगोंमें फूट पैदा कर देनेके लिये मौका पड़नेपर किसी पुरानी बातको उखेड़ देना ही काफी होगा और वे इतने हीसे पुराने द्वेषमें नया जहर मिलाकर एक दूसरेपर टूट पड़ेंगे। इन विचारोंका हमें अपने कार्योंसे खण्डन करना चाहिये।

हमारे अपने देशका ही उदाहरण लीजिये। यहां तीन मतोंके लोग हैं। कुछ कैथोलिक हैं, कुछ प्रोटेस्टेण्ट हैं और कुछ नास्तिक हैं। एक मतके सम्पूर्ण आचार विचार दूसरे मतवालोंको पूर्णतया मान्य न हों, किन्तु इन आचार विचारोंका एक अंश ऐसा है जो

सबकी तंग चहारदीवारीसे बाहर फैला हुआ है और जिसके भीतर हम एक आशा, एक उच्च मनोरथ तथा एक सुन्दर आदर्शसे प्रेरित होकर आपसमें समझौता कर, सहयोद्धा बन परस्पर मिले हुए हैं। हो सकता है कि पृथक् पृथक् मतवालोंके लिये देशकार्यका महत्व कम या वेशी हो; हो सकता है कि आदर्शकी उत्पत्ति और उसका अन्तिम ध्येय दोनोंके लिये एक हो न हो; किन्तु वह सुन्दर और अभ्रान्त पदार्थ जिसके लिये वे लड़ रहे हैं, विशुद्ध, सार्वजनिक और व्यक्तिगत जीवन, परस्पर अधिक शिष्ट व्यवहार, समाज और जातिके लिये उच्च आदर्शोंकी स्थापना उत्कृष्ट सहनशक्ति, साहस तथा स्वतंत्रताके विषयमें सबका एक मत है। उक्त बातोंपर चोट पडनेपर सबमें नैसर्गिक चेतना जागृत होजाती है। इसलिये जो सहानुभूति भिन्न २ मतवालोंको मिला रखती है वह प्रचण्ड, प्रगाढ़ तथा पक्की होती है। इनलोगों-की मेल मुलाकात ध्यानसे देखिये, यह किस प्रेमसे आपसमें मिलते हैं। ज़रा गौरसे देखिये, एक बड़ा काम करने वाला है जिसके मुंहमें झुर्रियां पड़ी हुई हैं। उसका कैसा हार्दिक अभिवादन करते हैं। दूसरेकी आंखें काममें व्यस्त भाईके लिये आतुर हैं; तीसरेकी आंखें विजय-आदर्शसे चमक रही हैं। आप देखेंगे कि इन सबमें परस्पर आन्तरिक श्रद्धा है, ये एक दूसरेको उत्सा-हित करते हैं तथा स्वयं कष्ट उठाते हैं। निरुत्साहका चिन्ह इनमें कभी नहीं पाया जाता, किन्तु सदा महान् विजयकी शुभ

आशा और महासमरका परम आनन्द ही देखा जाता है। भिन्न भिन्न मतवालोंका यह सहयोग दिखाऊ मित्रताका नहीं है, तो भी और लोग यह मेल देखकर आश्चर्य और संशयसे सहम जाते हैं।

भिन्न भिन्न मतोंके यह स्वतन्त्रताके पुजारी अपने अपने मज़हबोंके पूरे पावन्द हैं, फिर भी इनमें आपसमें इतनी अधिक घनिष्ठता है कि मानो वे सब एकही देवताके सामने सर झुकाते हैं। संकीर्ण विचारवालोंकी दृष्टिमें भिन्न भिन्न मज़हबवालोंमें मारकाट होनी चाहिये, पर स्वतन्त्रताके इस संग्राममें वे सब साथ साथ आगे बढ़ रहे हैं। यह सब क्यों है? सम्भवतः इस प्रश्नका सबसे अच्छा उत्तर वही दे सकेगा जिसका धर्म सबसे कट्टर है। वह कहेगा कि जिस क्षेत्रमें हम सब मिलकर काम कर रहे हैं वहां जिस सत्यने हम सबको मिला रखा है उसका अनुसरण करनेका एक ही सन्मार्ग है और सहज बुद्धिसे इस सन्मार्गमें आकर हम मिल गये हैं।

(३)

किन्तु भिन्न भिन्न मतोंके वे लोग जो मजबूती और ईमानदारीसे मेलको पक्का रखते है कम हैं। × × × × × × × उनके धैर्यकी कठिन परीक्षा होगी और मनुष्योंके लिये यह जांचकी कसौटी है। × × × × धर्म अलग अलग होनेके कारण शत्रुता रखनेसे संसारकी वर्त्तमान समयमें विद्यमान दुर्जनता

और दुष्टता घटनेके बदले और भी बढ़ेगी। इतिहासका कोई उदाहरण उठा लीजिये, प्रतिहिंसाकी निस्सारता तथा मूर्खता साफ प्रकट हो जाती है। ××× निरी हिंसा प्रत्येक उदारचरित्र पुरुषके हृदयमें घृणा पैदा कर देती है। सुनिये, मैजिनी क्या कहता है--"हमें हिंसाके द्वारा देशमें नयी व्यवस्था स्थापित नहीं करनी है। इस प्रकार स्थापित की हुई व्यवस्था पुराने ढंगकी व्यवस्थासे भलेही सुन्दर हो, किन्तु उसकी नींव जुल्मपर रहती है।" × × × हमें खूब तंग किया जायगा कि हम अपने सिद्धान्त छोड़ दें और पुराने झगड़े फिर खड़े करें, किन्तु उस समय हमें डटे रहना होगा। उस समय हमें उस दैवी आत्म संयमसे रहना होगा जिसके भीतर हमारी शक्तिका रहस्य छिपा हुआ है।

(४)

भले ही स्वतन्त्रताके ध्वजा फहरानेवालोंकी संख्या कम हो, तो भी हम जोरसे कह सकते हैं कि हमें अन्तमें सफलताकी आशा है। जनता बिना परिणामकी आशासे न लड़ेगी। वह पूछेगी कि देशकी उन्नतिके क्या लक्षण दिखाई दे रहे हैं और विजयकी ज्योतिकी झलक कहां है। हमारे सौभाग्यसे यदि हम सूक्ष्म दृष्टिसे देखेंगे तो हम उन्नतिके कुछ चिह्न अवश्य ढूंढ़ निकालेंगे। निस्सन्देह हम पुरानी अदावतके बुरे लक्षण देखेंगे। हो सकता है कुछ लोग क्रोधमें आकर दंगा भी कर दें, किन्तु अब उपद्रवी लोग कम रह गये हैं और क्रोधमें वह तीव्रता भी नहीं रह

गयी है। जो लोग पहले दंगा करते थे अब भी करते हैं, किन्तु उनमें अब वह उन्मत्तता नह रह गयी है और आजकलके नवयुवक भलेही हमारे आदर्शसे विमुख हों, किन्तु वे विपक्षियोंकी बातोंकी ओर भी उदासीन हैं। वे इन बातोंसे अलग हैं और उनपर किसी पक्षका प्रभाव नहीं पड़ा है। इन बातोंको ध्यानमें रखकर हमें निराश न होना चाहिये। जरा विचार कीजिये कि जो इस समय देशका काम कर रहे है उन्होंने धीरे धीरे टटोलते हुए वर्त्तमान नोति निश्चित की है। हमसे पहले राजनीतिक जीवन अपने समयके लोकमतका अनुसरण करता था, किन्तु आजकलकी ज्योतिमें वह बातें मन्द पड़ गयी हैं; हमने उन नियमोंको कृत्रिम समझा और उन्हें छोड़ दिया। यह हमारे पूर्वजोंपर आक्षेप नहीं है। ××× जो काम वे अधूरा छोड़ गये हैं हमें उसे हाथमें लेकर पूरा करना चाहिये। हर पीढ़ीका यह कर्त्तव्य होता है कि वह अपने पूर्वपुरुषोंके अधूरे छोड़े हुए कामको उठावे और उसे पूरा करके यह पैतृक सम्पत्ति अपने वंशजोंके सुपुर्द कर दे। नवयुवक स्वयं यह कर्त्तव्य पहचान लेते हैं और हरेक पीढ़ी अपने संकीर्ण विचारोंको छोड़कर सत्यका विकास करती हुई अपने बाप दादोंसे एक कदम आगे ही बढ़ती है। इस बातको प्रत्येक व्यक्ति अपने अनुभवसे ही समझ सकता है कि इस समय जो गड़े मुर्दे उखाड़ रहे हैं वे शीघ्र नष्ट हो जायंगे और उनका स्थान लेने कोई नहीं आयगा।

(५)

सौभाग्यसे देशवासियोंमें भाईचारा स्थापित करनेकी दलीलें देनेकी अब आवश्यकता नहीं रही; किन्तु साथ साथ हमारे दुर्भाग्यसे जनता न यह बात स्वीकार करती है और न इसे समझती है कि जिन कारणोंसे हमें अपने देशवासियोंके बीच मित्रताका सम्बन्ध स्थापित करना चाहिये उन्हीं कारणोंसे इङ्गलैंड या किसी दूसरी जातिसे—जिससे हम लड रहे हैं या आगे लड़ेंगे—भी मित्रता करनी चाहिये। पड़ोसियोंमें स्नेह होना स्वाभाविक है। एक ही गली या एक ही मुहल्लेमें रहनेवाले दो पड़ोसियोंमें व्यक्तिगत प्रीतिका कैसा मनोहर दृश्य देखनेमें आता है। वे एक दूसरेके सुखमें सुखी होते हैं, आपत्कालमें एक दूसरेकी सहायता करते हैं और अपने प्रतिदिनके काम बन्धुभावसे मिलकर करते हैं। वे हरवक्त एक दूसरेके हितमें मेलकी सार्थकता देखते हैं। मान लीजिये, किसी बुराईके कारण यह मित्र बिछुड़ गये। ऐसे समय पुरानी मैत्री द्वेषमें परिणत हो जाती है। जो पड़ोस हमदर्दीके वक्त उन्हें प्रफुल्लित कर देता था आज उनकी शत्रुताको उतना ही अधिक बढ़ाता है। जब जब उनकी भेंट होती है उनकी बातें एक दूसरेके दिलमें चुभनेवाली होती हैं; उनके भाव परस्पर तंग करनेके होते हैं। जीवनके आनन्दको भ्रष्ट करनेवाला यह तीता रस उनके सात्विक स्वभावको विद्रोही जंचता है। उनके हृदयमें घृणाको बाहर निकाल डालनेकी तथा पुरानी सौहार्दताको फिरसे स्थापित

करनेकी प्रबल लालसा होती है। हृदयके भीतर मेल करनेकी इच्छा रहनेपर भी यह बिछुड़े हुए मित्र एक दूसरेके खूनके प्यासे बने हुए हैं। कभी कभी खराबी इस सीमातक पहुंच जाती है और द्रोह इतना बढ़ जाता है कि पुराना मित्रभाव फिरसे स्थापित न होता हुआ प्रतीत होता है। किन्तु जबतक कुछ भी आशाकी झलक बाकी रहती है सच्ची आत्मा इस बातपर ध्यान लगाये रखती है; क्योंकि यदि जीवनके पूर्ण सौन्दर्यको फिरसे प्राप्त करना है और उसे सदाके लिये सुरक्षित रखना है, तो पुराना मित्रभाव पुनः स्थापित करनेके लिये सदैव सचेष्ट रहना चाहिये। व्यक्तियोंके समान जातियोंके लिये भी यही बात कही जा सकती है। यह बात जानकर हमें भविष्यमें नयी भूलसे बचा रहना चाहिये। यह भूल अर्थात् साधनको परिणाम समझ लेना पुरानी है किन्तु सदा नये रूपमें दिखायी देती है।

व्यापकसन्धिका लक्ष्य प्रत्येक जातिको विशुद्ध स्वाधीनता देना, आत्मिक सिद्धि, मनुष्यके भीतर छिपे हुए गुणों और जीवनके आनन्द और उसकी पूर्णताको प्राप्त करना है। इसका मतलब यह नहीं है कि चाहे जैसे भी हो कुछ सिद्धान्तोंका हनन करके वह निकृष्ट सन्धि की जाय जो गुलामीके ही समान है। इसका संदेशा उस जातिको होशमें लाना है जिसने अपने उत्पातोंसे दूसरी जातिको दुर्दशाकी ओर धकेल दिया है। यह स्थायी और सम्मानयुक्त सन्धिके लिये खुला मार्ग छोड़ देती है। इसके माने हैं आत्माके देवतुल्य संयमकी रक्षा करना।

नुक्ताचीनी करनेवाले यह भी कहेंगे कि हमलोग महान् युद्धमें फंसे हुए हैं। इसलिये देशवासियोंमें उदात्तवृत्तियां जागृत करनेकी चेष्टा करनेसे उनमें दुर्बलता आ जायगी, क्योंकि जिस जोश देनेवाली हिंसावृत्तिसे रणमें प्रचण्ड प्रोत्साहन मिलता है वह न रहेगी; किन्तु जो वृत्ति न रहेगी वह हमें प्रोत्साहित करनेवाली नहीं है। जब भाई भाइयोंके ही बीच युद्ध छिड़ जाता है; घरेलू संग्राम ठन जाता है; एकही कर्तव्यके कई प्रकारके तात्पर्य आपसके लोगोंको न्यारा न्यारा कर देते हैं; पुत्र पिताके विरुद्ध, भाई भाईके विरुद्ध उठ खड़ा होता है; तब भी उनका झगड़ा एक वंशके होनेके कारण अथवा इस कारण कि द्वेष और घृणाको छोड़कर उनके हृदयके भीतर निकट सम्बन्धका पूरा ज्ञान है ढीला नहीं पड़ता। इसलिये जब तुम मनुष्यको यह शिक्षा देते हो कि उसका शत्रु गहरा विचार करनेपर उसका भाई निकल आता है तो तुम उसे संग्रामसे नहीं हटाते वरन् तुम उसके सामने उसके ध्येयका नया अर्थ रखते हो और उसे एक श्रेष्ठ आदर्श दिखलाकर उत्तेजित करते हो कि वह अपनी धुनमें लगा रहे और लक्ष्यको प्राप्त करे।

(६)

यदि व्यक्तिगत और राष्ट्रीय स्वतंत्रता प्राप्त करनेके बाद संसारमें भ्रातृभाव फैलानेके आदर्शके लिये उद्योग करना बाकी रह जाता है तो हमें इस ध्येयको संसारिक जीवोंकी पहुंचके

बाहर न समझना चाहिये। यह आदर्श ध्रुव-तारेके समान हमारा मार्गनिर्देशक होना चाहिये जो हमें भरसक सत्पथपर चलावे। हम हाथमें लिये हुए कार्यको तभी निभा सकते हैं जब हम इस कार्यको उस उद्देश्यके अनुकूल बनावें जो हमें उत्साहित करता रहे। इस उच्च उद्देश्यसे विचलित करनेको हमें कई प्रकारसे फुसलाया जायगा परन्तु जो आत्मिक बल हमारे पक्षको निर्मल और दृढ़ बनाये रखता है प्रत्येक नष्ट करनेवाली शक्तिका प्रतिरोध करेगा। × × ×

जब एक मजहबवाला दूसरे मजहबवालेको अपना भाई समझने लगे तब यह आदर्श हमें उभाड़ेगा और स्वतंत्रताकी पताका हमें अपनी गोदमें उठा लेगी। बस समझ लीजिये कि संग्राम का पहला खेत हमने मार लिया। जब देशके भीतर पूरी एकता स्थापित करनेमें हम कृतकार्य हो जावेंगे तो स्वतन्त्रता हमारी पहुंचके भीतर आ जायगी। इसपर समालोचक प्रश्न उठा सकता है कि "भाई, तुम इङ्गलेण्डके साथ मित्रता करनेपर क्यों जोर डाल रहे हो? वह तो अपना आधिपत्य जमाये रखनेकी शर्तपर ही सुलह करेगा।" इसका समाधान इस प्रकार किया जा सकता है। यदि ताली बजानेके लिये दो हाथोंकी जरूरत पड़ती है तो क्या इसमें सन्देह है कि मित्रता करनेके लिये भी दो हाथ मिलानेकी आवश्यकता होती है। हां, यह दूसरी बात है कि कोई गुलाम बनकर अपने हाथोंसे फरशी सलाम करनेका काम

ले। किन्तु इस बातमे हम बेफिक्र हैं। हम दूसरोंको वाध्य करके स्वाधीनता ले सकते हैं और हमें अपनी विजयपर पूरा विश्वास है। दोस्तीका रास्ता अब भी खुला है। इस असमंजससे कई लोगोंकी बुद्धि चक्करमें पड़ जायगी कि एक ओर हमें अपने उदार स्वभावको जीवित रखना पड़ेगा और दूसरी ओर हमें संग्राममें कट्टर और दृढ़प्रतिज्ञ रहना पड़ेगा; हमें एक ओर शांतिकी कामना करनी पड़ेगी और दूसरी ओर पूरी लडाई लड़नी होगी; एक ओर हम हृदयमें बन्धुताकी लालसा रखेंगे और दूसरी ओर हानिकर मित्रताको नष्ट भ्रष्ट कर देंगे। इङ्गलैण्डके साथ साहित्यिक, राजनीतिक, व्यापारिक तथा सामाजिक मेल-जोल बिलकुल तोड़ देना होगा, यदि यह मिलाप स्वाधीनता, समानता और सर्वजातीय स्वतन्त्रताकी नींवपर खड़ा न किया जाय। जिस समय हम इस कार्यमें जोरसे लगे रहेंगे सम्भव है कि लोग इसमें स्थायी मित्रताका आभास न पावें, किन्तु हमें इस चेष्टामें सदा लगा रहना चाहिये। सबसे पहले स्वतन्त्रताकी नितान्त आवश्यकता है। हम जब अपने ही पक्षके सैनिकोंमें अपने ध्येयके इस अर्थका निरन्तर प्रचार करते रहेंगे तो शत्रुके हृदयमें भी यह बात जम जायगी। प्रारम्भमें हमारे शत्रु इसे भ्रम वा राजनीतिक जाल समझेंगे, किन्तु एक ऐसा भावपूर्ण समय आयगा जब उनके हृदयोंमें हमारा सिद्धान्त प्रकाश फैलावेगा और एक नये युगका आविर्भाव होगा। ऐसे शुभ अवसरपर दुष्ट-

ताका लोप हो जाता है, घृणा भस्म हो जाती है और मित्रता नया जन्म लेती है। कुछ लोगोंके दिलोंमें यह डर है कि उनकी आत्मरक्षामें बाधा पड़ जायगी। यह डर तब दूर हो सकता है जब यह विश्वास हो जाय कि हमको जबरन् गुलाम बनाये रखनेकी अपेक्षा हमारी आजादीसे शत्रुकी और अधिक रक्षा होगी। इन सन्देहके बादलोंको फाड़कर ज्योतिकी किरणें प्रकाश फैलावेंगी और तेजमय सूर्य संसारको पुलकित करेगा।

मानपूर्वक सन्धि करनेके लिये हमारे शत्रुका आदर्श भी उतना ही ऊंचा होना चाहिये जितना हमारा। इसके बाद यदि वह किसी प्रकारका विरोध भी करेगा तो न्यायका पक्ष लेकर किन्तु शत्रुकी घोर स्वार्थपरता और साम्राज्यलोलुपता जो कि आजकल उसपर भूत सी सवार है यह आशा नहीं दिलाती कि शीघ्र ही वह परमार्थवादी, साधुचरित और उदार बन जायगा चाहे कुछ हो, हमें अपने आदर्शको नहीं त्यागना चाहिये। वर्तमान इङ्गलैण्ड भले ही अपनी पामरता और अत्याचारोंके कारण हमारी युक्तियोंकी उपेक्षा करे और हमारी दलीलोंपर पानी फेर दे किन्तु हमारी आत्मा हमारे कार्योंमें गूढ़ सन्तोष प्राप्त करती है। इतना ही नहीं, हमारे शत्रुओंके बीचमेंसे ही प्रतिभाशाली आत्माएं खिला उठती हैं और साक्षी देती हैं कि मनुष्यमात्र एक हैं। वे सिद्ध करते हैं कि बन्धुताका भाव उनके भीतर भी सजग है। यह आदर्श हमें आगे बढ़ानेमें उजालेका काम देता है। इस पथपर हमें सत्यका अवलम्बन करके चलना चाहिये। शत्रुके चाहे

कैसे ही विचार हों हमें परवा न करनी चाहिये। इस कार्यमें कठिनता अधिकाधिक क्यों न बढ़ती जाय किन्तु यह कार्य सफल हो सकता है। राष्ट्रीयताकी न्याय्यता तथा इसका गौरवपूर्ण अर्थ इस भ्रातृत्वके सिद्धान्तमें छिपा हुआ है। सारे जगतको अपना घर समझनेवाले लोगोंके पक्षकी यह लाजवाब दलील है। जीवनकी जो श्रेष्ठता और सुन्दरता सब जातियोंका लक्ष्य होना चाहिये उसे जगत भरमें एक जातिके अतिरिक्त और सब जातियां अस्वीकार करें, तोभी वह एक जाति अपने देशके भीतर तबतक उस उद्देश्यको छातीसे लगाये रहेगी जबतक उसका जादू तमाम दुनियांपर न चल जायगा। यदि यह चरम लक्ष्य अभी हमसे बहुत दूर हो, फिर भी इसका अनुसरण करनेमें हमको एकके बाद एक पराक्रमके कार्य करने पड़ेंगे और विक्रमपूर्ण कार्योंकी सिद्धिमें ही सदा सौन्दर्य और आनन्द मिलता रहेगा। वीर लड़ाकेको सर्वदा उचित पुरस्कार मिलता है। उसकी बुद्धि शुद्ध रहती है, खूनमें जोश रहता है और कल्पनाशक्ति तत्पर रहती है। वह जीवनका अर्थ समझता है, उसे काम करनेमें आनन्द मिलता है और परिणाममें वह सुख्यातिके शिखरपर अपना अधिकार जमा लेता है। इस उच्च चोटीसे कट्टरसे कट्टर संशयात्माके कानोंमें यह सर्वश्रेष्ठ सन्देशा गूंजता हुआ आयगा कि "जब हम आकाश छूनेका प्रयत्न करेंगे तब हम पर्वत-शिखरपर पहुंच सकते हैं।"

—

पञ्चम परिच्छेद

शक्तिका रहस्य

(१)

स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये हमें समर्थ बनना चाहिये। किन्तु इस सामर्थ्यका भेद क्या है? इसे भली भांति समझना और समझकर व्यक्तिगत जीवनके आधारपर राष्ट्रीय जीवनकी नींव धरना सारे प्रश्नकी कुंजी है। अपने विरोधी अल्पसंख्यक लोगोंको शारीरिक शक्तिसे दबा देना अबाधित शक्तिका ऐसा पक्का लक्षण माना गया है कि इस विषयपर सत्य बातको स्पष्ट करनेमें धैर्य,सूक्ष्मदृष्टि और कुछ मानसिक अनुशीलनकी आवश्यकता है। लेकिन यह काम बड़ा भारी है। हमें अत्यन्त महत्वपूर्ण युद्धक्षेत्रकी सूक्ष्म परीक्षा करनी है, शत्रुकी प्रकृतिका पता चलाना है, अपने साधनोंकी शक्तिका अन्दाजा करना है और तिल तिल करके तबतक शक्ति संग्रह करते रहना है जबतक हम अजेयताका अभेद्य कवच न धारण कर लें।

(२)

सच्चे बलके भेदको जानना अत्यन्त आवश्यक है। दो भिन्न प्रकारकी लड़नेवाली सेनाओंकी तुलना करनेसे यह बात साफ

मालूम हो सकती है। एक, सुसंगठित सेना जिसका परिचालन बड़ी योग्यतासे हो रहा है और जो आशा और उम्मेदसे उछलती हुई आगेको बढ़ रही है और दूसरे, नष्ट भ्रष्ट होनेके बाद किसी सेनाके थोड़ेसे बचे खुचे सैनिक जो कि भग्गी पड़नेपर अपने सहयोद्धाओंके समान भगाये नहीं जा सके किन्तु जिनकी आत्मा एक ऐसी आशाके साथ जूझ रही है जिसे सबने निराश होकर छोड़ दिया है। अब हम इन दोनोंपर विचार करेंगे क्योंकि इन दोनोंके मिलानसे हम रहस्यको समझ सकेंगे। सुसंगठित सेना-का साहस उस उच्च कोटिका नहीं है जिसने थोड़ेसे बचे खुचे सैनिकोंको आखिरी दम तक लड़नेके लिये हिम्मत दे रखी है।

पहले सुसंगठित सेनाको ही लीजिये। उसका बल इसलिये है कि उसने युद्धशिक्षा पायी है,उसमें घने मेलका भाव है, उसके सैनिक अपने अफसरोंकी आज्ञाका पूर्णतया पालन करते हैं जिससे सारी पलटनमें एकता हो जाती है। इन बातोंके अतिरिक्त अधिक संख्यामें होनेके कारण अपने सुरक्षित होनेका विश्वास रहता है, दल बनाकर धावा करनेमें उमङ्ग रहती है और अपने सेनानायकोंकी योग्यतापर विश्वास रहता है। इन सब बातोंसे सेनामें साहस और शक्ति रहती है। संगठनसे सेनामें आत्म-विश्वास बढ़ता है, इसीलिये पलटनोंमें कड़ेसे कड़ा दण्ड देकर भी कायदोंकी पाबन्दी करायी जाती है।

सेनाकी शक्ति उसकी संख्याधिकता, एकता, परस्पर तथा सर्दारोंपर निर्भरतामें ही है। जब इस सेनापर अचानक आफत टूट

पड़ती है—कोई बड़ा अफसर मर जाता है, कोई तदबीर ठीक नहं उतरती है, शत्रु अकस्मात् टूट पड़ता है या कोई और दुर्घटन हो जाती है—तो इसकी शक्ति छिन्न भिन्न हो जाती है, सेनाकं व्यवस्था विगड़ जाती है, सुरक्षित होनेका विश्वास जाता रहत है और फौरन तबियत भागनेको करती है। कुछ देरतक कवा यदकी आदत सेनाको सुव्यवस्थित रखती है, किन्तु भय जो पकड़ना आरम्भ करता है, सब सतर्कता और आत्मसंय ताकपर रख दिया जाता है,पीठ फेरते ही व्यूह भंग हो जाता है सेनामें कुहराम मच जाता है और परिणाममें पूर्ण पराजय प्रा होती है। बाहरी कवायदने सैनिकोंको बाहरी ताकत देक उनकी व्यक्तिगत आत्मनिर्भरता खो दी है। आभ्यन्तरिक संयम का ध्यान नहीं रखा गया। फलतः जब उनकी सम्मिलित शक्ति नष्ट हो गयी तो उनमें व्यक्तिगत विवशता और त्रास फैल गया

अब आप उन बचे खुचे सैनिकोंको लीजिये जिनमें उच्च श्रेणी का साहस है, जिनमें प्रत्येक व्यक्ति दृढ़प्रतिज्ञ है, विरोध करनेप तुला हुआ है और अपने कार्यके प्रत्येक सम्भव परिणामोंक फौरन साफ देख लेता है, तोभी आत्माकी उन्नत अवस्थाके कारण विना किसी हिचकिचाहटके उन्हें शिरोधार्य करता है वह सब मानवी आशाओंको पराजयमेंसे विजय निकाल लानेवाल महान् आशापर न्योछावर कर देता है या यदि वह हारे हुए मैदा नको फिरसे न भी ले सका, तोभी आगे बढ़ते हुए शत्रुको रोक लेता है, बिखरे हुए सैनिकोंको फिरसे बटोरता है और युद्धक

कलङ्क धोता है। यह वीरोचित गुण है। जिसमें यह गुण वास करता है वह संकटके समय आज्ञाओंकी अपेक्षा नहीं करता और न परिणामपर ही विचार करता है। उसके विचार फौरन निर्णय कर देते हैं और वह निश्चित बातें सामने धरी हुई पाता है। तीन तेरह होते हुए सैनिक, गिरे हुए झण्डे और विजयी सेना तथा खेत छोड़ना या मृत्युका आलिङ्गन सब ही देखते हैं, किन्तु बहादुर सिपाहियोंको भागने और मरनेमें भी आशा और विजयकी रेखा दिखायी देती है और इस नष्ट आशाके लिये भागना एक किनारे कर दिया जाता है और हार होनेपर मौतका आलिङ्गन किया जाता है। यह गुण है जो हमारा कलङ्क धो देता है। चूंकि हमारे इतिहासमें यह गुण बहुधा देखनेमें आता है इसलिये हमारी विजय अवश्य होगी।

हम इसलिये विजय प्राप्त नहीं करेंगे कि हमने बराबरीके मैदानमें जवांमर्दी दिखायी है, हम इसलिये विजय प्राप्त नहीं करेंगे कि हमारे देशवासियोंने देशदेशान्तरोंमें जाकर शत्रुओंके दांत खट्टे किये हैं; परन्तु हम विजय प्राप्त करेंगे वीरप्रसविनी जन्मभूमिके उन पवित्र स्थानोंकी याद करके जो हमारे उन संग्रामोंके लिये चिरस्मरणीय रहेंगे, जिन्होंने इस जन्मभूमिका नाम संसारकी अजेय जातियोंकी सूचीमें अङ्कित कर दिया है।

संसारके लिये यह रहस्य अभी छिपा ही रह गया है कि आखिरी दमकी जी तोड़ लड़ाई और जीवनदान जातिमें महान्-

से महान् विजयसे भी अधिक नयी जान क्यों डाल देता है। संसार न जाने, पर यह बात सत्य है क्योंकि ऐसे सत्यके सैनिकोंका ध्यान करनेसे ही हमारी आत्मा जगमगा उठती है हमारा उत्साह फिरसे जाग उठता है और हम आनेवाले संग्रामके लिये कमर कसकर तैयार होते हैं।

(३)

हमें व्यक्तिगत धैर्य, साहस और दृढ़ता प्राप्त करनी चाहिये यह बात ध्यानमें आते ही हमारा काम आरम्भ हो जाता है। कुछ लोगोंमें यह आशंकाजनक विचार फैला हुआ है कि भविष्यमें कभी न कभी हमें स्वतंत्रताके युद्धमें कूदना ही पड़ेगा किन्तु इस बीच हमें उस समयकी बाट जोहते हुए हाथपर हाथ धरकर बैठे रहना है। यह सर्वनाशी भूल है। इस अर्सेमें हमें अपनी शक्ति बढ़ानी चाहिये। हम एक गलती और भी करते हैं। हम राष्ट्रीय कार्यको और कार्यों से अलग समझते हैं, हम यह समझते हैं कि सामाजिक, व्यापारिक, धार्मिक तथा अन्य विषयोंका इससे कोई सम्बन्ध नहीं है। फल यह होता है कि हम अवकाशका कुछ समय राष्ट्रीय कामके लिये रख छोड़ते हैं और सारा दिन इस प्रकार बिताते हैं मानो हमारा कोई राष्ट्र ही नहीं है। किन्तु प्रत्येक कालका सम्बन्ध भूत तथा भविष्यसे होता है, इस लिये चाहे मनुष्य कोई काम क्यों न करता हो वह काम दूसरे कामोंके अनुकूल होना चाहिये, उनसे विच्छिन्न नहीं। उत्तम देशभक्त और सैनिक वही बन सकता है जो उत्तम मित्र तथा

उत्तम नागरिक हो। यह नहीं हो सकता कि कोई आदमी एक दायरेमें ईमानदार रहे और दूसरेमें बेईमान बन जाय। चूंकि एक नागरिकको अपने देशके प्रति कर्तव्य पालन करनेके लिये सच्चरित्र और पूर्ण उत्साही होना चाहिये इसलिये उसे अपने भीतर सोये हुए गुणोंका अपने नित्यके जीवनमें उत्कर्ष करना चाहिये। उसे अपना चरित्र मज़बूत बनाना चाहिये और ऐसा करनेके लिये उसे कई ऐसी बातोंसे सम्बन्ध रखना पड़ेगा जो राष्ट्रीय दृष्टिसे अनावश्यक और महत्वहीन सी प्रतीत होती हैं। अपनी दिनचर्यामें मनुष्यके सामने न्यूनाधिक महत्वके जो काम आ पड़ते हैं उनके प्रति उसका कोई न कोई भाव अवश्य होता है। जान या अनजानमें यह भाव जिस प्रकार सधेंगे उससे पता चलेगा कि आंखोंसे ओझल दूसरे क्षेत्रोंमें वह किस ढंगसे कार्य करेगा। व्यापारी व सामाजिक जीवनमें पड़े हुए किसी मनुष्यका उदाहरण लीजिये। उसे अपने कार्यक्रममें दूसरोंसे मिलकर काम करना पड़ता है और अवकाशके समय आमोद प्रमोद भी दूसरोंके साथ मिलकर करना पड़ता है। सब लोग यह जानते हैं कि किन लोगोंके साथ वह अपना काम करता है और किस ढंगके वार्तालापमें उसका आमोदका समय कटता है। मनुष्यको हर रोज दूसरोंसे मिलकर कार्य करना पड़ता है इसलिये आवश्यक है कि उनमें स्नेहभाव (मनमिलाव) हो; तो भी नगण्य छोटी छोटी बातोंपर कई रोज तक जूतीपैजार, लड़ाई झगड़ा, रागद्वेष देखनेमें आता है। हम देखते हैं कि दो आदमी कुत्ते-बिल्लियोंकी

तरह तुच्छसे तुच्छ बातोंपर लड़ते झगड़ते हैं और फिर कई दिन तक नादान बच्चोंकी तरह बोलना तक बन्द कर देते हैं। सामाजिक जीवनमें भी नर नारियोंमें यह दुर्गुण देखे जाते हैं—नीच डाह, व्यक्तिगत आक्षेप, निन्दा करना और ऐसी कमीनी कहानियां गढ़ना जो स्वयं कुछ मूल्य नहीं रखतीं किन्तु उल्टा यह दिखलाती हैं कि गढ़नेवाला मनुष्य और उसकी कही हुई बातें कैसी हीन और घृणित हैं। निर्मल बुद्धिवाला मनुष्य विशुद्ध मनुष्यताका, सब मनुष्योंमें भलमनसाहतके भावका, झगड़ेको मुस्कुराकर उड़ा देनेवाली उदार दृष्टिका और उस ज्ञानका अभाव देखकर निराश होता है जिसके होनेसे सिद्धान्तके लिये लड़े जानेवाले महायुद्धमें दृढ़ताकी आवश्यकता समझकर थोड़ी देर तक रहनेवाली छोटी मोटी बातें हार्दिक घृणासे देखी जाती हैं। क्योंकि इन नीचतापूर्ण और छोटे छोटे झगड़ोंमें कोई सिद्धान्त नहीं बल्कि दम्भकी गन्ध छिपी हुई है, इसलिये स्वतंत्रताके सैनिकको इन बातोंका विचार रखकर अपनी कार्यशैली निश्चित करनी पड़ती है। बाहरसे यह प्रतीत होता है कि ठीक काम करना हमारे लिये स्वाभाविक और सरल है किन्तु व्यवहारमें ऐसी बात देखनेमें नहीं आती। मनुष्य जब देखता है कि उसके साथ अशिष्टता तथा उद्दण्डताका व्यवहार किया जा रहा है तो फौरन उसकी क्रोधाग्नि प्रज्ज्वलित हो उठती है, बखेड़ा खड़ा हो जाता है और अन्तमें मालूम होता है कि न तो उसका काम ही बना और न बिना झगड़े उसके

किसी सिद्धान्तका हनन हो रहा था। वह व्यर्थ ही आपेसे बाहर हुआ। कई लोग जोशमें आकर कह बैठते हैं कि हम इस विषयपर बहस न करेंगे किन्तु यदि उन्हें अदनासे अदना आदमी भी बीचबाजारमें छेड़ दे तो वे झगड़ा करनेको तैयार हो जाते हैं। × × × ×

हमलोगोंमें छोटी बड़ी बातोंका मूल्य जांचनेकी शक्ति होनी चाहिये जिससे कि हम निर्लज्जताके छोटे छोटे अपराधोंको इतना बड़ा न बनावें कि उन्हें जीवन मरणका प्रश्न समझकर लड़ मरें। छोटे छोटे अपराध या तो दिल्लगीमें उड़ा दिये जाने चाहियें या उनके ऊपर ध्यान ही न दिया जाना चाहिये, किन्तु साथ ही उन संकीर्णहृदय मनुष्योंसे जिनके विचार इन छोटी छोटी बातोंके आगे नहीं पहुंचते हमारी सहानुभूति रहनी चाहिये। हां, ऐसा कर दिखलाना सहज नहीं है। क्रोधी स्वभाववाले पुरुषको बुद्धिसे काम लेनेके पहले ही गुस्सा आजाता है।अपनेको सुधारना उसको कठिन मालूम होगा। बुद्धि होनेपर भी चित्तवृत्तियां पहले ही विद्रोह मचा देती हैं, तोभी धीरे धीरे यह वृत्तियां वशमें की जा सकती हैं और अन्तमें जल्दी गुस्सा हो जानेकी गंदी आदत बदल सकती है और समय पाकर ऐसा हो जाता है कि जो बात पहिले मनुष्यकी क्रोधाग्निको भड़कानेवाली थी आज वह प्रमोदका विषय बन जाती है। इससे कोई यह आशंका न करे कि महान् जीवन-संग्रामकी नस ही मारी जा रही है बल्कि इससे हममें मजबूती आ जाती है और हम पक्के

बनते हैं। हमारे आत्मसंयमका प्रत्येक कार्य ज्ञानके उस गुप्त भंडारको भर रहा है जहांसे हमारी श्रेष्ठ शक्तियोंका प्रादुर्भाव होता है। इस प्रकार छोटी बातें बड़ी बातों तक पहुंचाती हैं और पदके तथा सामाजिक झगड़े बखेड़ेके विषयमें बुद्धि, उत्साह तथा धैर्यको इतना बढ़ाना चाहिये कि वह रणक्षेत्र वा राज-काजमें संकटपूर्ण समयके लिये सब साधनोंसे तैयार रहे।

(४)

हमने मनुष्यके व्यावहारिक तथा सामाजिक जीवनपर विचार कर लिया है। अब हम इसी प्रकार उसके राजनीतिक जीवनपर विचार करेंगे। यहां भी वही हालत है। यहां भी मनुष्य बहुधा तुच्छसे तुच्छ विषयोंपर बुरी तरहसे लड़ते हैं। जिनकी बुद्धि स्वच्छ है वे स्थितिको देखकर प्रतिज्ञा करेंगे कि वे इस बखेड़ेमें नहीं पड़ेंगे, भले ही उनके शम और दमको लोग भला बुरा कहें। राजनीतिक सभामें सबसे पहले प्रायः कौनसी बात आती है? हम आरम्भमें ही यह बात मान लेते हैं कि यह यथार्थमें कार्य करनेवालोंका संघ है। हमारा यह मत सदैव किसी ऐसे उत्तम सिद्धान्तको टाल देनेके दोषको छिपानेके कामसें आता है जिसकी हमें गले लगाकर रक्षा करनी चाहिये। किन्तु हम करते क्या हैं? पहले तो हमलोगोंको पसन्द आनेवाले कई झूठे किन्तु सत्यसे भासमान होनेवाले कारण दिखाकर सिद्धान्तको एक किनारे कर देते हैं। बस फिर

ऐसी बातोंके लिये एक दूसरेको काट खानेको दौड़ते हैं जिनका सिद्धान्तसे कुछ सम्बन्ध नहीं है। इसका विशेष उदाहरण देना व्यर्थ है। इस दशाका पता चलानेके लिये किसी सभाको आप देख लीजिये। सभापति स्वयं डावांडोल रहता है, दूसरोंको कायदा बतलाता है और अपनेमें इतना चरित्रबल नहीं है कि स्वयं उन नियमोंका पालन कर सके, सभ्य अध्यक्षकी परवा नहीं करते और आपसमें गप शप लड़ाने लगते हैं। कुछ लोग 'शांति शांति, चिल्लाते हैं, असामयिक बातें बकते हैं वा बेतुकी हांकने लगते हैं। कोई समय समयपर यह पूछ उठता है कि सभामें किस विषयपर वादविवाद हो रहा है या सभाका क्या उद्देश्य है, जिससे सिद्ध हो जाता है कि अबतक सारा काम निरर्थक हुआ। इस दृश्यसे सभी परिचित हैं। आश्चर्यकी बात यह है कि हम समझते हैं कि किसी विशेष स्थान या समयके लोगोंकी यह विशेष चपलता है, किन्तु बात यह नहीं है। सिद्धान्तोंको ताकपर रखनेका यह स्वाभाविक और न्याय-संगत परिणाम है। फिर भी हम प्रतिदिन ऐसा ही कर रहे हैं। इसका अर्थ यह है कि हममें मिलकर किसी बातपर उसके सहज परिणाम तक लगे रहनेका साहस नहीं है और सच्चे परिणाम तक पहुंचनेपर उसके लिये लड़नेकी हिम्मत नहीं रहती।

यदि हम अपनी इस त्रुटिको दूर करना चाहते हैं तो यह विस्तृत और महान् कार्यक्षेत्रके लिये आत्मसंयम सीखनेसे ही

हो सकता है। जो महान् कार्य हमने ले रखा है हमें उसकी व्यापकता और महिमा ठीक ठीक समझनी चाहिये और अपनेको उसकी सेवाके योग्य बनानेके लिये हमें अपना चरित्र ऐसा बनाना चाहिये कि कोई उसमें धब्बा न लगा सके, छोटी छोटी बातों और कपटी व्यवहारका अन्त कर देना चाहिये और हमें वीरहृदय, दृढ़प्रतिज्ञ और उदाराशय होना चाहिये। हममेंसे प्रत्येकको यह बात भली भांति समझ लेनी और इस प्रकार कार्य करना चाहिये कि परीक्षाके समय प्रत्येक दृढ़ सिद्ध हो। सार बात यह है कि यदि घरेलू जीवनमें उन गुणोंका विकास करनेकी आवश्यकता है जो सार्वजनिक जीवनमें काम आते हैं, तो सार्वजनिक जीवनमें और भी अधिक आवश्यक है कि सैनिक तथा राजनीतिज्ञोंके उपयुक्त उत्साह, धैर्य और बुद्धिमत्ता बढ़ायी जाय।

(५)

तात्विक तर्क वितर्ककी अपेक्षा एक साधारण उदाहरण इस विषयको स्पष्टतया हमारे दिलोंपर जमा देगा। हमारे प्राचीन और नवीन इतिहासमें हमारे नेताओंके अपने ऐसे सिद्धान्त त्यागनेके कई उदाहरण मिलते हैं जिनकी रक्षा करनेके लिये वे राजनीतिक अखाड़ेमें कूदे थे। ऐसे अवसरोंपर हमलोग नित्य एक ही बात करते हैं अर्थात् हम ऐसे अपराधीको निरा विश्वासघाती मानते हैं, उसपर निन्दाकी बौछार करते हैं, जीवनभर उसे घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं और उसके माथे-

पर सदाके लिये कलंकका टीका लगा देते हैं। हम कभी यह नहीं ताड़ते कि यह दोष उसके स्वभावका नहीं है किन्तु यह वह दुर्बलता है जिसे मिटानेके लिये उसे शिक्षा नहीं मिली और न आत्म-संयमका ही अभ्यास कराया गया और जिसके कारण पहले ही संकटमें वह अपनेको असहाय पाता है। हालहीमें इङ्गलैण्डके राज्याभिषेकोत्सवके समय अपने कुछ मेयरों तथा लार्ड मेयरोंकी करतूतसे आयलैंड क्रोधसे पागल हो उठा था। हमारी राजधानीमें इस क्रोधने भीषण रूप धारण कर लिया था। कई बातें मोटी नजरसे भी देखी जा सकती हैं, किन्तु कितने आदमी यह जाननेकी चेष्टा करते हैं कि भीतरी रहस्य क्या है। अब मैं एक घटनाको लेकर बतलाऊंगा कि माजरा क्या है ? घटना जितनी अधिक चुभती हुई होगी उतनी ही सरस मालूम पड़ेगी। मान लीजिये कि एक पुराना फीनियन (विप्लववादी) मेयर चुना गया है। अब आप देखते चलिये उसके लिये किस कौशलसे जाल फैलाया जाता है और अन्तमें कितनी मजबूतीसे वह फंसाया जाता है। मेयर मजिष्ट्रेट होता है, उसे नियमानुसार राजभक्तिकी शपथ लेनी पड़ती है, किन्तु इस पुराने फीनियनने स्वतंत्र आयलैंडकी भक्तिकी शपथ खायी है। सिद्धान्तके खण्डनका यहांसे श्रीगणेश हुआ। अब और बातें सुनिये। कोई नेता जब किसी उच्च पदपर पहुंचता है तो स्वार्थी लोगोंका एक समूह, उसके तंग हालतमें पड़े हुए मित्र, पराधिकार चर्चामें आनन्द लेनेवाले राजनीतिज्ञ और उसके

हिमायती उसे चारों ओरसे घेर लेते है। मेयरका अदालतमें प्रभाव होता है जिसका वे लोग समय समयपर लाभ उठाना चाहते हैं और इसलिये वे उसे मेयरके पदपर रखना चाहते हैं। वे ऐसे सिद्धान्तको भला नहीं समझते जो उनके हितमें बाधक होता है। वे सब मिलकर उसके पिट्ठू बनते हैं और इस बातको लेकर कि उन्होंने उसे सार्वजनिक जीवनमें पद दिलाया है ऐसा आचरण करते हैं कि मानों उन्होंने उसकी आत्माको मोल ले लिया है। मेयरको बहुधा वही करना होता है जिसे वे लोग उपयोगी समझते हैं, न कि जिसे मेयर उचित समझता है। बस, जिस रोज मेयर बने उसी रोजसे सिद्धान्तकी लड़ाई आरम्भ हो जाती है। जो हो, इस वृद्ध फीनियनमें पूर्वकालका यथेष्ट तेज शेष है कि वह इस पहली लड़ाईमें बचकर निकल आया। तुरत दूसरी परख सामने आ खड़ी होती है। इस बीच डबलिन कैसलके अधिकारियोंकी तीव्र दृष्टि उसपर गड़ी रहती है। मेयरको चीफ मजिष्ट्रेटकी हैसियतसे कई विशेष अधिकार मिले रहते हैं। कैसलसे इनके छीने जानेकी घुड़की मिलती है। अधिकारी लोग निजी तौरपर घुमा फिराकर शिकायत करते हैं कि "मेयर गैरकानूनी काम कर रहा है; उसे अमुक अमुक काम न करने चाहियें; मजिष्ट्रेटका कर्तव्य अमुक है; उसने राजभक्तिकी शपथ नहीं ली है" इत्यादि। फिर वही पुरानी लड़ाई शुरू हो जाती है क्योंकि डब्लिन कैसलके अधिकारी चाहते हैं कि अदालतमें मेयर उनका होकर रहे और अपने पुराने दलसे

इस प्रकार कट्टर लड़ाकेकी शक्ति जड़से उखाड़ दी जाती है। जाल बड़ी सुन्दरतासे बिछाया गया और राजकर्मचारियोंने इसके फन्दोंमें अपना आदमी जकड़ लिया। जिसने डबलिनमें मेयरकी इन करतूतोंको ध्यानसे देखा है उसे यह बात खटकी होगी इसलिये नहीं कि किसी मनुष्यके आत्मसमर्पणकी हंसी उड़ाई जाय, वल्कि इसलिये कि उसने इसका वास्तविक अर्थ, भीतरी रहस्य और इससे उत्पन्न होनेवाली हानिको देखलिया है। जो कोई कर्तव्यसे च्युत होता है उससे कैफियत तलब की जानी चाहिये। जब कोई मनुष्य किसी विश्वास, प्रभाव तथा सम्मानके पदको ग्रहण करता है, चाहे कुछ हो यदि वह अपने उस सिद्धान्तसे विमुख होता है जिसकी उसे धर्मके समान रक्षा करनी चाहिये थी तो इसके लिये वह उत्तरदायी है। युद्ध कसौटी है इसलिये हमें शत्रु और मित्र दोनोंके साथ समान दृढ़तासे व्यवहार करना चाहिये। लेकिन एक पदार्थ मनुष्यकी दुर्बलतासे भी अधिक दुष्ट है:इस फन्देका स्मरण रहना चाहिये।

(६)

इस मोटे उदाहरणने हमारे विवादास्पद सिद्धान्तको भली भांति समझा दिया। जिस मेयरका हमने सरासर अधःपतन देखा है वह अटल रहता यदि उसके लिये इस प्रकार जाल न फैलाया जाता। उसे कभी यह ध्यान भी न आया होगा कि उसे इस षडयंत्रका सामना करना पड़ेगा। कभी खतम न होनेवाली ये सीधी और टेढ़ी घुड़कियां, ये फुसलानेकी बातें, यह

परमात्माके प्यारे अंगरेज और जंगली आयरिश; फौनियन और उच्च राजकर्मचारी; मजदूर और मालिक किसीमें मतभेद नहीं है। हम सब निश्चय ही रोगाणुओंके शत्रु हैं। बड़ा भारी जलसा होता है, गवर्नर सपत्नीक पधारते हैं और मेयरको सभापतिका आसन दिया जाता है। आखिरकार रोगाणुओंके मायाजालमें वह फंसा लिया जाता है। जिस सभाकी लाट साहब और लेडी साहबा पधारकर शोभा बढ़ाती है वह वास्तवमें बड़ा भारी मौका है। लाट साहब मेयरके साथ बड़ी मीठी मीठी बातें करते हैं और लेडी साहबाके साथ मेयर की धर्मपत्नीकी खूब घुटती है। इनमें ऐसा गाढ़ परिचय मालूम होता है मानों इन्होंने एक ही कसबेके एकही स्कूलमें साथ साथ पढ़ा हो। हर बातमें प्रशंसाकी झड़ी लग जाती है और जय जयकारके साथ सभा समाप्त होती है। गवर्नर और लेडी साहबा सभासे जाती हैं। इस राजनीतिक युद्धकी बलिहारी है। कैसी शान्तिके साथ घाघ राजनीतिज्ञोंकी तोपोंके मुंहपर कील ठोक दी जाती है और वे राजनीतिसे पृथक् कर दिये जाते हैं! शिष्टाचार यह सब करवाता है। गवर्नर सपत्नीक चले गये किन्तु वह बात भूले नहीं। घर जाकर इस आवभगतके लिये धन्यवादका पत्र भेजा जाता है। मेयरके सुख दुखके समय उसकी याद की जाती है और समयपर हार्दिक बधाई या गाढ़ समवेदनाके पत्र बड़ी बड़ी सरकारी मुहरोंके भीतर बन्द करके भेजे जाते हैं। ऐसा कौन असभ्य होगा जो समवेदनापर रोष प्रकट करे?

इस महान् उद्देश्यके लिये हमें शक्तिका रहस्य भली भांति समझ लेना चाहिये कि फौजके साथ वीरतासे संग्राममें जानेके लिये कमर कसे हुए रहना इसका भेद नहीं है इसके लिये ही जिस नियंत्रणकी आवश्यकता है वह उत्तम और बहुमूल्य है। इसका भी अभ्यास और पालन किया जाना चाहिये। लेकिन इससे जनसमूहका साधारण साहस सीखा जाता है। इसपर उसी युद्धक्षेत्रमें निर्भर रहा जा सकता है जो बराबरीका हो तथा जिसमें हार जीतकी दोनों ओर समान सम्भावना हो। परन्तु जब स्वाधीनताको फिरसे स्थापित करनेके लिये उद्योग किया जाता है, जब युद्धके ढंगसे ही दोनों पक्षोंमें जीत हारकी सम्भावना बराबर नहीं है और स्वतंत्रताके सैनिकोंको प्रत्येक प्रकारकी असुविधा है, तब हमें इस कमीको पूरा करनेके लिये अधिक विशुद्ध साहस और अधिक टिकाऊ शक्तिका संग्रह करना चाहिये। असंख्य जनताको अपने साथ लेनेसे काम न बनेगा। उस सेनापतिको, जो साधारण सैनिकोंकी इन सुन्दर कतारोंकी जांच कर रहा है और उस शक्तिका अनुमान करना चाहता है जिसे वह परिचालित करेगा, ध्यानपूर्वक इन सैनिकोंकी परीक्षा करनी चाहिये जिससे पता चल जाय कि इस बहादुर पलटनसे एक कम्पनी बनानेके लिये कितने ऐसे आदमी मिल सकते हैं जो जीतकी आशा बिसर जानेपर भी युद्धक्षेत्रमें डटे रहेंगे। यदि आवश्यकताके समय प्रयोग करनेके लिये यह शक्ति संचित रखी हुई है, तो वह प्रत्येक संकटका सामना कर सकता है। यदि

भुलावा, यह कृपादृष्टि, यह उपकार, यह चापलूसी, यह दिखाऊ उदारता, यह कुटिल और कपटी आक्रमण, न मालूम कहांसे निकलते हैं। जो इन वातोंके विरुद्ध दृढ़ रहना चाहता है और घुड़की या चापलूसीसे ऊपर उठना चाहता है उसे उस आत्म-संयममें अभ्यस्त हो जाना चाहिये जो उसे प्रत्येक संकटसे पार होना सिखलाता है। मौका पड़नेपर हम कपड़ोंकी तरह उचित चरित्र ग्रहण नहीं कर सकते। चरित्र घरेलू या सार्वजनिक प्रत्येक ऐसे कामोंसे पुष्ट होता है जिनसे मनुष्यके भाव गठित होते हैं, उसके हृदयमें विश्वास अंकित होते हैं और चित्तका निर्माण होता है। दृढ़चरित्र उसरोज भी स्वयं अपना पारितोषिक प्राप्त कर लेता है जिस दिन हमारी किसी प्रकारकी वाजी नहीं लगी हुई है किन्तु मनुष्य जीवनकी तुच्छ तुच्छ वातोंपर गुस्सेसे पागल होकर लड़ते झगड़ते हैं; क्योंकि जो जीवनकी इन तुच्छ वातोंका ठीक मोल जानता है वह कभी नहीं घवराता। चारों ओर क्रोध रहनेपर उसका यह संयम अनमोल है। जिस चित्तने उसे आपेमें रख रखा था वह तुच्छ वातोंको अपने ध्यानसे वाहर निकालनेके कारण ही जीवनकी उत्तम वातें स्पष्टतया समझ लेता है। उसकी आत्मा उससे कह देती है कि इन वातोंसे व्यक्ति और राष्ट्रके अस्तित्वको दारुण धक्का पहुंचेगा। साधारण आंखें यह संकट नहीं ताड़ सकतीं। ऐसे अवसरपर शत्रु चक्करमें पड़ जाता है और चरित्रवान पुरुष निष्कपट, महाशक्तिशाली और प्रखर बुद्धिवाला सिद्ध हो जाता है।

इस महान् उद्देश्यके लिये हमें शक्तिका रहस्य भली भांति समझ लेना चाहिये कि फौजके साथ वीरतासे संग्राममें जानेके लिये कमर कसे हुए रहना इसका भेद नहीं है इसके लिये ही जिस नियंत्रणकी आवश्यकता है वह उत्तम और बहुमूल्य है। इसका भी अभ्यास और पालन किया जाना चाहिये। लेकिन इससे जनसमूहका साधारण साहस सीखा जाता है। इसपर उसी युद्धक्षेत्रमें निर्भर रहा जा सकता है जो बराबरीका हो तथा जिसमें हार जीतकी दोनों ओर समान सम्भावना हो। परन्तु जब स्वाधीनताको फिरसे स्थापित करनेके लिये उद्योग किया जाता है, जब युद्धके ढंगसे ही दोनों पक्षोंमें जीत हारकी सम्भावना बराबर नहीं है और स्वतंत्रताके सैनिकोंको प्रत्येक प्रकारकी असुविधा है, तब हमें इस कमीको पूरा करनेके लिये अधिक विशुद्ध साहस और अधिक टिकाऊ शक्तिका संग्रह करना चाहिये। असंख्य जनताको अपने साथ लेनेसे काम न बनेगा। उस सेनापतिको, जो साधारण सैनिकोंकी इन सुन्दर कतारोंकी जांच कर रहा है और उस शक्तिका अनुमान करना चाहता है जिसे वह परिचालित करेगा, ध्यानपूर्वक इन सैनिकोंकी परीक्षा करनी चाहिये जिससे पता चल जाय कि इस बहादुर पलटनसे एक कम्पनी बनानेके लिये कितने ऐसे आदमी मिल सकते हैं जो जीतकी आशा बिसर जानेपर भी युद्धक्षेत्रमें डटे रहेंगे। यदि आवश्यकताके समय प्रयोग करनेके लिये यह शक्ति संचित रखी हुई है, तो वह प्रत्येक संकटका सामना कर सकता है। यदि

समयपर होनेवाली निराशाको हटाते हुए सत्यके प्रति विश्वास अटल रख सकते हैं। हम इसकी सत्यतासे लोगोंको अचरजमें डाल देंगे। और लोग इसके भक्त या विरोधी चाहे कुछ बनें किन्तु हमारी पीढ़ीके हृदयमें यह धाक जम जायगी कि हमने गुरु भार उठा रखा है।

(२)

अपने सिद्धान्तोंको काममें लानेके पहले हम अपनी स्थिति फिरसे देखेंगे। प्रत्येक देशमें कुछ समय विशेष जागृतिके होते हैं हमारे आयर्लैंडके इतिहासमें भी कुछ वर्ष ऐसे हैं जो बतलाते हैं कि स्वतन्त्रताके सैनिकोंने महान् सिद्धान्त ग्रहण किया था वे सब प्रकारके बलिदानके लिये तैयार हो गये थे; उन्हें सत्य, पराक्रम, स्वतन्त्रता और अवश्य विजयी होने वाली पताका पर अचल विश्वास था। इन वर्षों में जनताके आगे एक आदर्श था, खून जोर मार रहा था, देशवासियोंके हृदयमें तेज आग लग रही थी जिसमें पाखंड, छल तथा नीचता झुलस गयी थी और उच्च आकांक्षासे और महान् कार्य करनेके लिये वीर हृदय प्रदीप्त हो उठे थे; क्योंकि सर खुजलाते हुए झीखने व घिघियाने वालोंके रहते हुए भी शत्रुको ललकारना व उसकी शक्तिको डिगा देना पराक्रम है, चाहे उसे देशसे निकालनेमें अभी बिलम्ब ही क्यों न हो। इन तेजस्वी वर्षोंके बाद फिर एक बार निराशाका अन्धकार छा गया। इस समय भी वीर हृदय इधर

उधर बिखरे हुए वर्तमान थे। उनमें विश्वास बना हुआ था परन्तु उनमें संगठन नहीं था और वे गड़बड़में पड़े हुए थे। नेता पछाड़ दिये गये थे और उनकी जगहपर जीवनकी सुन्दरता, भूत कालकी महिमा और भावी आशाको धुंधला करने वाले, मौका मिलनेपर अपना मतलब गांठने वाले, खुशामदी, पाखण्डी तथा सार्वजनिक शीलता और सम्मानको वेचकर खानेवाले मातृ-भूमिपर अपना कलंकित अधिकार जमाने लगे। इतिहासके निरीक्षणसे यह चढ़ाव उतार देखनेमें आता है। एक पीढ़ी तेजसे चमकती है और दूसरी पीढ़ी निराशामें डूब जाती है। यह निर्णय करना हमारे हाथमें है क्योंकि हम ही इसका फैसला कर सकते हैं कि हम अपने समयको व्यर्थ खोयंगे अथवा अपनी जातिके उज्ज्वल इतिहासमें एक ज्योतिर्मय अध्याय और जोड़ जायंगे।

(३)

इनसे शिक्षा ग्रहण करनेके लिये हमें इन दो युगोंकी विशेषताओंको समझना चाहिये। पहले उस आदर्शपूर्ण समयको लीजिये जब देशमें स्वतन्त्रताका झंडा फिरसे फहरानेका उद्योग होता है। जब पहले पहल उत्साहसे मत्त सैनिक अपने हृदयकी जलती हुई आगको, फड़कती हुई आशाको और हृदयपर अंकित हो जानेवाले आदर्शको सर्वत्र फैलाता है, तो इसके साथ साथ देशमें ध्येयकी श्रेष्ठता, सार्वजनिक धर्म, अपना चरित्र अधिक अच्छा बनानेके लिये व्यक्तिगत उत्तरदायित्व, कार्यमें अधिक

स्थिरता और हृदयकी स्वच्छताके ज्ञानकी जागृति होती है। इससे क्रमशः हीनता, छल प्रपञ्च और विश्वासघात जाति तथा राष्ट्रके हृदयसे उखड़ जाते हैं। राष्ट्रकी स्वतंत्रताका उद्धार करनेका दृश्य हमारी आंखोंके सामने नाचने लगता है और इस प्रवल आकांक्षा और उत्साहके साथ साथ दृढ़ प्रतिज्ञा और दृढ़ बलका मेल रहता है। उत्तम भाव हमें महान् युद्धके लिये प्रेरित करते हैं। यह युद्ध किया जाता है और हमारा दुर्भाग्य होनेपर भी यह युद्ध महान् ही बताया जायगा। हमारे इस स्वप्नको चाहे जो घटना-समूह मलियामेट करदे और हमारी विजयमें कुछ कालके लिये बाधा डाल दे, तोभी यह उज्ज्वल कार्य हमारे आदर्शकी साक्षी देने, सैनिकोंकी न्याय्यता सिद्ध करने और अन्तिम सफलताकी आशा दिलानेके लिये मसालका काम दे रहे हैं।

(४)

अब हम स्वतन्त्रताके युद्धके बीच बीचमें मुर्दनी फैलाने-वाले जो साल आते हैं उनपर विचार करेंगे। ऐसा समय हम लोगोंमें अधिकांश लोगोंने स्वयं देख रखा है। इस विषयपर हम कुछ लिख भी चुके हैं और उन आचार भ्रष्ट करनेवाली बातोंका विस्तृत विवरण नहीं देना चाहते हैं जो हमें कलुषित और निराश करती हैं। हमें इस स्थानपर उन मनुष्योंके उद्योग या कहिये निरुद्योगका विचार करना है जिनका स्वतन्त्रतापर पक्का विश्वास है और जो समय समयपर इधर या उधर

काम करनेके लिये अपनेको बाध्यसा पाते हैं। उन्होंने युद्धकी हार देखी है और उस हारके परिणामस्वरूप वे सुन्नसे हो जाते हैं। ऐसे मनुष्य तत्कालीन अधिकारियोंको आत्म-समर्पण करना अस्वीकार करते हैं किन्तु उनमें उस समयका दृढ़ विश्वास और उत्साह नहीं है जब कि प्रत्येक बातपर ये अधिकारी ललकारे गये थे और उनका बनना व बिगड़ना इसीपर निर्भर था। यह आदमी बहुत समयतक उदासीन बने रहते हैं किन्तु जब विशेष नीचता या विश्वासघातका काम देखते हैं तो एकाएक उन्हें गुस्सा चढ़ आता है और सहसा वह काम करनेको दौड़ पड़ते हैं। फल कुछ नहीं होता और वे फिर अपनी निस्सहाय अवस्थामें पड़ जाते हैं। उनमें जोर शोरके आन्दोलनके समयके वे उच्च भाव नहीं हैं जो प्रति-क्षण उत्तेजित करते रहते हैं, निश्चित पथ बताते हैं और लड़ाईके लिये निरन्तर जोश उभाड़ते रहते हैं। ऐसे मुर्दादिल चुपचाप स्वीकार कर लेते हैं कि यह युग किसी कामका नहीं है, शत्रुकी तूती बोल रही है, वह अपने आसनसे उतारा नहीं जा सकता और यदि वे काम करते भी हैं तो अपना मत प्रकट करनेके लिये। वे दुश्मनके दिलमें यह बात जमाना नहीं चाहते कि लड़ाई फिर छिड़ गयी है, हम स्वतंत्रताकी ओर बढ़ रहे हैं और ऐतिहासिकको इस युद्धका वर्णन लिखना तथा इस समयकी महिमा कीर्तन करनी पड़ेगी। उनके कार्यमें यह गौरवपूर्ण महत्व नहीं होता। जब शासकोंके हामियोंकी डींग इन्हें चुभती

है तब वे सहसा क्रोधसे पागल हो उठते हैं। उनकी क्षणिक उन्मत्त चेष्टा अपने हृदयको शान्त करनेके लिये ही होती है, वर्त्तमान अत्याचारका नाश करनेके लिये नहीं। हमको यह बात भली भांति समझ लेनी चाहिये और प्रत्येक काम-चलाऊ उपाय तथा शत्रुको तंग करने व फन्देमें डालनेकी असारता देखकर यह निरर्थक बातें त्याग देनी चाहियें और अपने समयका महत्व बढ़ानेके लिये महान् कार्य करना चाहिये।

(५)

हमें कई त्रुटियां दूर करनी हैं। पहली त्रुटि हमारी यह धारणा है कि हमें स्वतंत्रताके सिद्धान्त विशेष विशेष स्थानोंमें अंगीकार करने चाहियें और कुछ सभाओं और विशेष अवसरोंपर अर्थात् जीवनमें बहुत थोड़े कालके लिये हमें इन सिद्धान्तोंका पाबन्द रहना चाहिये। इन स्थानोंके अतिरिक्त जहां प्रकट या अप्रकट रूपसे दूसरे विचारोंका प्राधान्य होता है हम अपने सिद्धांतोंकी भक्ति छोड़ देते हैं। हमारे सिद्धान्तोंका मुख्य तत्व यह है कि हमें स्वतंत्रताकी पताका अपने साथ सर्वत्र लेजानी चाहिये और इस नियमका उल्लंघन कदापि न किया जाना चाहिये। जीवन स्वयं एक विस्तृत युद्धक्षेत्र है। किसी भी समय मनुष्यके स्वतंत्रताके सिद्धान्त ललकारे जा सकते हैं। उसे इनकी रक्षा तथा उपयोगिता सिद्ध करनेके लिये कटिबद्ध रहना चाहिये। जिन विचारोंको मनुष्य सत्य समझकर ग्रहण करता है वे केवल

वक्तृता और सभाओंमें गला फाड़कर चिल्लानेके लिये ही नहीं हैं। तुम्हारी आत्मा तुम्हें प्रेरित करेगी कि विपरीत स्थानोंमें तुम अपने सिद्धान्तोंके प्रचारक ऋषि बनो। यह सत्य सिद्धान्त तुम्हारी आत्माको निरन्तर अपनी याद दिलाता रहेगा। या तो तुम्हें इसका यश गाना होगा या इसे अस्वीकार करना होगा। और कोई चारा नहीं है ; 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'। मनुष्य-जीवन किसी उद्देश्यकी ओर जाय, दुराहा अवश्य मिलेगा और उसे इन सत्य और असत्यके दो रास्तोंमेंसे एक अवश्य चुनना पड़ेगा।

मनुष्यको सावधान रहना चाहिये कि कहीं सत्यका रास्ता छूट न जाय। तुम बिना किसी पक्षको ग्रहण किये रह नहीं सकते। घटना-समूह तुम्हें अवश्य एक न एक ओर कर देगा। तटस्थ रहना भी तो एक पक्ष ग्रहण करना है। पुरोहित, कवि, अध्यापक, सार्वजनिक नेता, व्यवसायी, कामकाजी, व्यापारी सबको जवाबदेही करनी पड़ेगी। जीवनके प्रत्येक मार्गमें सत्य विचारका असत्य विचारके साथ अवश्य संघर्ष होगा। बस, संघर्ष हुआ कि लड़ाई लड़नी ही पड़ेगी। इस युद्धमें हम तब हारते हैं जब खाली समयमें अपने दिलको समझानेके लिये बड़े बड़े ग्रन्थोंसे अपने पक्षके प्रमाण ढूंढ निकालना ही यथेष्ट समझते हैं। यह शास्त्रार्थोंके युगकीसी बात हो गयी। आदर्शकी पुकार असर नहीं करती क्योंकि तब सिद्धान्त शास्त्रार्थका विषय समझा जाता है। जो अपने

सिद्धान्तपर विश्वास करके उन मनुष्योंका साथ देते हैं जो इसके लिये लड़ते हैं वे सिद्धान्तके भीतर जान डाल देते हैं और उन लोगोंपर अपना सिक्का जमा देते हैं जिनके कट्टर दिलोंमें और किसी प्रकार असर नहीं हो सकता था। सिद्धान्तके लिये युद्ध करनेसे सबका ध्यान उसकी ओर खिंच जाता है, सब दिलचस्पी लेने लगते हैं और जनता शीघ्र गतिसे आगे बढ़ती है। जहां कहीं स्वतंत्रताकी पुकार हमें अपनी ओर बुलाती है शत्रुका फन्दा भी हमारे लिये लगा हुआ रहता है। × × × ×

हम जानते हैं कि जो पादरी राष्ट्रीय भावोंका प्रचार रोकने की चेष्टा करते हैं उन्हें औरोंसे अधिक पुरस्कार मिलता है। यदि अध्यापक राष्ट्रीय विचारोंको कोसते हैं तो उनका वेतन बढ़ाया जाता है और उन्हें उपाधियां मिलती हैं। जो सार्वजनिक नेता राष्ट्रीयताका भण्डा फोडते हैं उन्हें उच्च पद और उपाधियां दी जाती हैं। पेशेदार आदमीको बढ़ती की, व्यापारीको अधिक व्यापारकी और व्यवसायीको व्यवसायकी आशा दिलायी जाती है बशर्ते कि वह स्वतन्त्रका झंडा हाथसे गिरा देगा। सर्वत्र ही सुयोग्य नवयुवकोंके सामने मायावी प्रलोभन आवेंगे। यह प्रलोभन उनके कानमें कहेंगे "तुममें योग्यता है; सिद्धान्तको छोड़ो और प्रकाशमें आओ; सिद्धान्तके कारण तुम अन्धेरेमें पड़े हो। इस समय यह सिद्धान्त किस काम आ रहा है? आओ, कामकाजी बनो।" इस लालचमें पड़कर नवयुवक दुर्बल पड़ जायगा,

उसके वश हो जायगा और दुनियांकी तारीफ लूटनेके लिये प्रकाशमें आजायगा ; किन्तु पुराना सिद्धान्त उसके मर्ममें घाव कर देगा और अन्तमें उस सिद्धान्तका लोप हो जायगा। वह भले ही ऐश्वर्यकी अवस्थामें रहे किन्तु उसकी दुर्दशापूर्ण, आशा-तीत और पक्की हार हो गयी। जब वह अपने सिद्धान्तको पकड़-कर खड़ा है, अधिकारियोंके हाथ सिद्धान्त बेचना अस्वीकार करता है और झंडा उठाये हुए हैं तो और लोग अपने पागलपनेमें उसे बेवकूफ और निकम्मा बतलाते हैं; किन्तु जो यह बकते हैं वे नहीं समझते कि इस नवयुवकने संसारके साम्राज्योंकी सब विजयोंसे बड़ी विजय प्राप्त की है। उसकी आत्मामें सच्ची ज्योति और चिरसुन्दरता विराजमान रहेगी। इस उत्साही नवयुवकके हृदयमें स्वतन्त्रताके संगीतका सुरीला स्वर सदा सुनायी देगा। उसके सामने स्वतन्त्रताकी झांकी बनी रहेगी, इस झांकीने संसारकी सदियोंके संग्रामको स्थिर रखा है, व्यक्तिको उन्नत किया है, राष्ट्रको शक्तिशाली बनाया है और ख़ानाबदोश क़ौम-को मरुभूमिसे अपनी आशाके शुभ तीर्थपर पहुंचाया है।

(६)

यदि वर्तमान समयमें हम अपनेको चरितार्थ करना चाहते हैं, तो अपना सिद्धान्त छोड़नेका नाम न लेना चाहिये। इस विषय-पर कई सच्चरित्र पुरुष भी भूल करते हैं और जो भाव हमारी असफलताकी जड़ हैं उन्हें वे उचित समझते हैं। हमारी भूल जताना

तथा इसे समझना इतना आसान है कि यह देखकर आश्चर्य होता है कि इतने दिनोंतक हम सब लोगने इसे क्यों न समझा। जो मनुष्य एक स्थानपर अपने सिद्धान्तको स्वीकार करता है और जहां उसपर ललकार पडती है उसे त्याग देता है वह सिद्धान्त घाती है। वह हृदयमें उसपर विश्वास करता हो, सम्वादपत्रोंमें उसके पक्षमें गुमनाम लेख भी छपाता हो तथा फिर कहींपर इस सिद्धान्तके सामने सर झुकावे, किन्तु वह हर समय हर युद्धमें सिद्धान्तपर डटा नहीं रहेगा। ऐसा संकट आपड़नेपर जिसमें सब देशभक्त और कामकाजी आदमियोंके काम करनेकी जरूरत पड़े और जिसमें यह साफ फैसला करना पड़ता हो कि वह राष्ट्रके पक्षमें है या विरुद्ध, वह अपनी मान-मर्यादा देखकर मुखिया बनना स्वीकार न करेगा और सभा-समितियोंसे विना कुछ कहे सुने अनुपस्थित रहेगा। वह चन्दा देकर मेम्बर तो बना रहेगा परन्तु सभामें योग देनेमें बहाने करेगा। वह आपसमें सिद्धान्तपर विश्वास जताकर तथा रिक्त स्थानकी पूर्ति करनेवालोंको गुप्त रीतिसे उत्साह देकर संतोष कर लेता है। उसकी यह बातें भी इतनी दूरसे होती हैं कि दुनिया सुन नहीं सकती। उसका सबसे बड़ा दोष यह है कि वह सोचता है कि अधिक साहसी काम करनेसे उसका जीवन संशयमें पड़ जायगा इसलिये उसका मैदानसे दूर रहना न्यायसंगत है। इस विषयपर यही कहा जा सकता है कि उसका दूर रहना न्यायसंगत नहीं है। ऐसे अवसरपर जिसने

स्वयं अपनी जान खतरेमें डाल रखी है उसे दूसरोंको निर्दोष बतलानेका भार अपने ऊपर नहीं लेना चाहिये। यह तो कदापि न होना चाहिये कि डरपोक लोगोंको हृदयमें माने हुए सिद्धान्तकी ओर बढ़ानेके लिये खुले आम नरम सिद्धान्तका प्रचार किया जाय। वे जहां तक सिद्धान्तको मानते हैं उन्हें उसपर अमल करनेके लिये उत्तेजित कीजिये। अपने सिद्धान्त-में कमी न करनी चाहिये क्योंकि ऐसा आदमी बादको समझता है कि वह ऐसी बातें बक गया जिनको वह बिल्कुल नहीं मान सकता; और यदि तुम किसी मनुष्यसे वह करनेको कहोगे जिसे तुम स्वीकार नहीं कर सकते और ऐसी बातें दूसरोंसे कहते ही जाओगे तो यह तुम्हारे हृदयका बल क्षीण कर देगा और जिस बातको तुम पहले घोर घृणाकी दृष्टिसे देखते थे उसके प्रति धीरे धीरे उदासीन बन जाओगे। तुमको मालूम नहीं होगा किन्तु तुम बदल जाओगे। पुराने मित्र तुमपर रोष प्रकट करेंगे। यह देखकर तुम भी उनपर झुंझ-लाओगे, यह नहीं जानोगे कि तुम कैसे बदल गये हो। विश्वासी पुरुष जिन सिद्धान्तोंपर विश्वास करता है उन्हें कुछ समयके लिये छोड़ नहीं देता या अपने सिद्धान्तके विरुद्ध बात नहीं करता। यदि वह ऐसा करे तो कुछ दिनों बाद वह अपने सिद्धान्तको प्रकट करनेमें घबड़ायगा। दो प्रतिकूल बातोंका सामञ्जस्य करना प्रायः असम्भव है। हमें आधे दिलसे काम करनेकी नीति छोड़ देनी चाहिये।

हमारी नीति पूर्ण, स्वच्छ, अविरोधी तथा अशान्त और जिज्ञासु हृदयोंको सन्तुष्ट करनेवाली होनी चाहिये। जब हम इन अशान्त जिज्ञासुओंको अपनी ओर कर लेंगे तो अकर्मण्य लोग स्वयं उनके पीछे चले आवेंगे। यह बात भली भांति समझ लेनी चाहिये कि कोई भी मनुष्य अपनेको या अपने साथीको गुरु कर्तव्यसे बरी नहीं कर सकता। इसपर भी हमने कर्तव्य-भ्रष्टताको बुरा नहीं समझा है। इससे हम गड़बड़में पड़े हैं और हमने हानि उठायी है। इस मतिसे कि हम भविष्यमें वीर अग्रणी बनेंगे हम वर्तमान समयमें मनुष्य बननेसे भी वञ्चित रह जाते हैं। हम उस धुंधले भविष्यका दृश्य देखते हैं जब हम महान् कार्य्य करनेको प्रेरित किये जायंगे। हम यह नहीं देखते कि प्रेरणा इस समय भी वर्तमान है, युद्ध छिड़ गया है, हमें गुप्त स्थानसे पताका उठा लेनी चाहिये और वीरताके साथ इसे फहराना चाहिये। संग्रामकी इतनी समीपतासे हृदय दहल सकता है; किन्तु युद्ध छेड़नेके इस भयका अर्थ पराजयके सब बुरे परिणामोंको बिना विरोध किये सहन करना है। यह पराजय ऐसी है जो विजयमें परिणत हो सकती थी। यदि हम वीरतापूर्ण भविष्यके लिये अपनेको योग्य बनाना चाहते हैं तो हमें वर्तमान समयमें ही उठ खड़ा होना और मनुष्य बनना चाहिये।

(७)

कभी कभी हमारा वास्ता निष्पक्ष लोगोंसे पड़ जाता है।

युद्धमें ऐसी आवश्यकता आ पड़ती है। हमारे दुर्भाग्यसे अपने बीच ऐसे भी लोग हैं जो आयर्लैण्डकी पुरानी स्वाधीनताको फिरसे स्थापित करनेपर विश्वास नहीं करते। किसी समय हम डिग न जायं इसलिये यह अच्छा है कि हम ऐसे आदमियोंके निकट भी रहें, क्योंकि इनका स्पष्ट सत्यप्रेम हमको ठीक रास्ते-पर लानेके काम आ सकता है। हमें इन निष्पक्षवादियोंको अपनेमें मिलानेकी चेष्टा करनी चाहिये। जबतक यह नहीं होता इन लोगोंसे हमें निष्पक्ष स्थानपर आपसमें समान प्रयोजनके लिये मिलना चाहिये। किन्तु स्वाधीनताका झंडा हमारे साथ साथ चलेगा। और यह बात सबसे मुख्य है। जब निरपेक्ष लोगोंसे मिलनेमें हम अपना झंडा साथ लिये चलते हैं तो क्या जिस स्थानमें विरोधी मतके लोग मिलते हैं वहां हमें अपनी ध्वजा गिरा देनी चाहिये? अपने साथ साथ सिद्धान्तरूपी झंडा ले चलनेका अभिप्राय यह नहीं है कि हम दूसरोंमें बलात्कारसे अपना मत ठूंसना चाहते हैं, बल्कि यह है कि हम अपने चित्तमें सदा इन सिद्धान्तोंको स्पष्ट-तया रखना चाहते हैं जिससे प्रतिकूल मत हमपर ज़बरदस्ती न लादा जा सके। इस बातका हमें ध्यान रखना चाहिये कि निष्प-क्षतामें कोई फर्क न आने पाये। हमें इस गढ़े में गिरनेसे भी सावधान रहना चाहिये कि ऐसे अवसरपर वह बात जिसे हम अपने सिद्धान्तके अनुसार नहीं मानते हमारे द्वारा स्वीकृत समझी जाती है क्योंकि उसका खण्डन करनेसे निष्पक्षता नहीं रह

जाती। निष्पक्षताका आशय यह नहीं है कि हम जिस बातका विरोध नहीं करते उसे मान लेते हैं। निष्पक्षता दो विरोधी पक्षोंमें समभावसे रहनेका नाम है। और चूंकि गम्भीर विषयोंपर हम विभक्त हो रहे हैं इसलिये यह हानिकर विचार हमें दिलसे निकाल डालना चाहिये कि इस मेलके स्थानपर एकत्र होनेसे हम निष्पक्षताके विरोधी सिद्धान्तोंको बुरा बतलाते हैं। दोनों पक्षके लोगोंके लिये जो अपने सिद्धान्तोंको जीवनका अंग बनाये हुए हैं यह प्रशंसाकी बात नहीं है कि वह अनायास ही सिद्धान्तोंको बगलमें दबा लें। नहीं, निष्पक्ष लोग अपने सिद्धान्त भूल जानेको नहीं कहते किन्तु एक दूसरेके सिद्धान्तोंका सम्मान करते हैं। निष्पक्षताका यह सिद्धान्त बहुत ऊंचा और गौरवशाली है। निष्पक्षपातियोंकी सभामें मनुष्यसे अपना सिद्धान्त छोड़नेको नहीं कहा जाता, बल्कि पक्षपातहीन मनुष्य और उसके सिद्धान्त पवित्र समझे जाते हैं।

(८)

जब हम समझ लेते हैं कि राष्ट्रीय भाव जीवनके प्रत्येक कार्य्यसे सम्बन्ध रखते हैं, तो हम मालूम करने लगते हैं कि इन भावोंकी रक्षा करनेके लिये बार बार हमपर अचानक भार आ पड़ता है। जो लोग राष्ट्रीय विचारोंका प्रसङ्ग छेड़ते हैं वे जानबूझकर इनका तिरस्कार करने के लिये ऐसा नहीं करते; उनमें संस्कार ही ऐसा पड़ जाता है कि वे अनजानमें यह बात

ठीक समझ लेते हैं कि वर्तमान या भविष्य कालमें हमारे प्रधान सिद्धान्तके लिये कहीं ठौर नहीं है और वे यह आशा करते हैं कि सब लोग उनसे सहमत हों। उनसे पहला और भीषण संघर्ष उनकी इस धारणापर ही हो जायगा कि वर्तमान दशा बदल नहीं सकती। हमें इससे उल्टी धारणा लेकर लड़नेके लिये शान्तिसे कटिबद्ध रहना चाहिये और अपने पुराने सिद्धान्तोंपर अटल रहकर उनकी न्याय्यता प्रमाणित करनी चाहिये। हमें इस बातका भी पक्का अनुभव कर लेना चाहिये कि हमारे विरुद्ध जिन लोगोंके विचार निश्चित, दृढ़ तथा सधे हुए हैं उनकी संख्या हमारी तुलनामें बहुत कम है। यह थोड़ी संख्या शक्तिशाली अङ्गरेज सरकारको छातीसे लगाती है, बिना हेतुके इसकी आज्ञायें शिरोधार्य करती है और जनसाधारणपर अपना प्रभाव डालनेकी कोशिश करती है। (जनसाधारणके विचार अनिश्चित होते हैं, जिस समय जो शासन करता है उसीके साथ बहते रहते हैं।) हमें इस जनताके भीतर ही सत्य-सिद्धान्तोंको फैलाना है जिससे उनमें अधिक स्थिरता, अधिक उत्साह, अधिक जात्यभिमानका सञ्चार हो और वे अपनेको जातीयताके योग्य सिद्ध कर सकें। उनको स्वातन्त्र्यवादमें तभी पूर्ण विश्वास हो सकता है जब वे देखने लगेंगे कि हमारे पक्षकी रक्षा पग पगपर की जा रही है। हमारा एक मात्र कर्तव्य अपने सिद्धान्तकी रक्षा करना ही होना चाहिये। यह कर्तव्य हमें खोजना नहीं पड़ेगा; यह स्वयं उपस्थित होगा और इसके साथ हमारी परीक्षा हो जायगी।

इसका एक उदाहरण लीजिये। जब नाना मतके मनुष्य किसी कामके लिये एकत्र होते हैं और महत्वपूर्ण विषयोंकी चर्चा नहीं होती, अकस्मात् अनजानमें या आजमाइशी तौरपर एक आदमी ऐसा सवाल उठा देता है जिससे सभामें मतभेद हो जाय। मान लीजिये वह आयर्लैंडमें अंगरेजोंकी प्रभुता स्वीकार करता है और आर्थिक लाभकी मूर्खतापूर्ण आशासे हमारा स्वाधीनताका दावा छोड़ देता है। बस, इस विषयपर एकत्रित सभ्य बेहूदा बातें बक जाते हैं और कुहराम सा मच जाता है। ऐसी स्थितिमें बहुत सम्भव है कि अयर्लैण्डकी पूर्ण स्वाधीनतापर विश्वास करनेवाला मनुष्य अपने साथ ऐसे मनुष्योंको देखेगा जिन्हें उसका साथ देना चाहिये था किन्तु मातृभूमिके अधिकारोंके विषयमें उनके विचार अस्पष्ट रह गये हैं। ऐसा मनुष्य देखेगा कि दूसरे पक्षके विषयमें भी उनके विचार उतने ही अस्पष्ट हैं। वे किंकर्तव्यविमूढ़ हैं और जो जिधर घसीटता है उधर ही चले जाते हैं। इसलिये जब लड़ानेवाला मत पेश किया जाता है उस समय यदि वह चतुर और स्वच्छ बुद्धिवाला हो तो उस राजनीतिक दावपेंचकी कलई खोल सकता है और उन्हें हीन, निकम्मा और अपमानकारी सिद्ध कर सकता, इन बातोंसे है वह सभामें और सबोंका मन अपने ढांचेमें ढाल सकता है। सबसे बड़ी बात यह है कि उसे इसके लिये तैयार रहना चाहिये। यह बात हमें भली भांती समझ लेनी चाहिये कि वार्तालापमें बहुधा एक मार्केका शब्द किस प्रकार

ढंग पलट देता है और जिस मनुष्यके विचार जोशीले और साफ होते हैं उसका कैसा रोब जम जाता है। उधर दूसरे लोग उदासीन व अनिश्चित रहते हैं। सिद्धान्तका कट्टर मनुष्य एक भी अच्छा है। कोई नहीं कह सकता जीवनकी घटनायें उसे कहां डाल देंगी। उसके सिद्धान्त उसके मुंहपर ललकारे जा सकते हैं। उसे अपने मतका स्पष्टीकरण करना होगा। ऐसे अवसर लोग किसी प्रकार अपना पिण्ड छुड़ाना चाहते हैं। किन्तु अपनी ओरसे आक्रमण न कर अपने सिद्धान्तोंपर डटे ा चाहिये पर जब दूसरा पक्ष आक्रमण करता है तो उसके े तैयार रहना चाहिये। इससे भी कमजोर लोगोंके हृदयमें द्धान्तके प्रति विश्वास उत्पन्न होता है।

हमें दोपारोपण करनेकी आदतसे संक्रामक रोगकी तरह बचना हिये, किन्तु हम अपने पक्षकी बातें साफ साफ कहेंगे और शत्रु के साथ लड़नेके लिये तैयार रहेंगे। किसी समय ऐसा होता कि ठीक उस जगह जहां इस बातकी सबसे कम आशा होती है र उधरसे भटकता हुआ एक मिथ्या सिद्धान्त चटकीले भड़कीले ्रोंके भीतर छिपकर हमारी बातका खण्डन करनेके लिये आ हुंचता है। तत्काल वायुमंडलको साफ करनेके लिये एक दो उज्वल शब्द कह दिये जायं। इससे हमारे मित्रोंको ढाढस मिल ाता है और वे संभल जाते हैं। जब हम विरोधियोंके बीच अकेले हते हैं और विरुद्ध सिद्धान्तवाले यह समझते हैं कि हम उनके ाथ हैं और हमारे सहयोगकी आशा रखते हैं, तो हम उन्हें एक

शब्द कहकर रास्तेपर ला सकते हैं; यह शब्द उन्हें रोक देगा। वे समझ जायंगे कि हमारे क्या सिद्धान्त हैं जिनके लिये हम लड़नेको कटिबद्ध हैं। फल यह होगा कि सब हमारा सम्मान करने लगेंगे। चाहे लड़ाई लड़नी पड़े हम उक्त ढंगसे काम करनेपर अपनी स्थिति स्पष्ट कर देते हैं। इसे हम सरल शब्दों-में कह सकते हैं कि हम अपना झंडा फहरा रहे हैं।

(६)

जो मनुष्य अपने जीवनको वीरतापूर्ण भावोंसे भर देना चहता है उसका किस प्रकार विरोध किया जाता है यहांपर हम उसका थोड़ा उल्लेख करेंगे। उससे लोग कहेंगे कि तुम किस मायाजालमें पड़े हो; सपनेकी सी बातें कर रहे हो; या तो तुम्हारा दिमाग खराब है, नहीं तो तुम मूर्ख हो। ऐसे मौकेपर हमें यह देखना चाहिये कि हमारे समालोचक स्वयं मायाजालमें पड़कर अन्धे तो नहीं बन गये हैं और हमें अपनी मूर्खताका उनकी बुद्धिमत्ताके साथ मिलान करना चाहिये।

× × × ×

उस सम्पन्न पुरुषको लीजिये जो सुखप्राप्तिकी खोजमें इधर उधर भटकता फिरता है और दूसरे लोगोंसे कहता है—"मूर्ख मत बनो, मेरा उदाहरण ग्रहण करो।" थोड़ी देरके लिये उसे अपना पथ-प्रदर्शक मान लीजिये। कुछ समय तक उसके साथ रहनेसे आपको मालूम हो जायगा कि उसका अवकाश हुलड़बा-

जीमें ही करता है, आनन्दसे नहीं। उसकी उस समयकी दशा देखनेसे जब कि वह बेखबर रहता है पता चल जायगा कि उसका जीवन ग्लानि और सुस्तीमें बीतता है। यह भोग-विलासका पुजारी जीवनके हीन या श्रेष्ठ जिस मार्गपर चले उसे वह भार प्रतीत होगा। श्रेष्ठ जीवन बितानेके लिये वह एक या दो बढ़िया क्लबोंका मेम्बर बनेगा, और भी अधिक विषयासक्त होगा, अधिक अवकाश और अधिक आनन्द ढूंढ़ेगा; किन्तु इस प्रकारके पुरुषका ढंग आप सर्वत्र एकसा ही पावेंगे। जीवन उसके लिये भारी बोझ सा बन जाता है, उसके हृदयमें किसी प्रकारका आनन्द नहीं रहता, कोई उत्तेजना नहीं रहती, शक्ति नहीं रहती और न उमंग ही रहती है। इस दशामें रहनेकी इच्छा कौन करेगा?

एक और मित्र आपकी पीठ ठोककर कहता है "ऐसे भोग विलासी मत बनो किन्तु कामकाजी बनो, भ्रममें मत पड़ो, अनहोनी बातोंमें मत फँसो—भविष्यकी बात कौन जानता है? हमें तो वर्तमान समयसे काम निकालना है। हमारे इस विश्वासी मित्रमें विचार-शक्तिका अभाव है। वह दूसरेको भविष्यसे सम्बन्ध तोड़नेकी शिक्षा देता है और स्वयं ऐसा प्रस्ताव कर रहा है जिसका परिणाम हम भविष्यमें ही जान सकेंगे। हमसे तो वह कहता है कि कौन जानता है कि भविष्यमें स्थिति हमारे अनुकूल होगी और अपने विषयमें भविष्यको अपने अनुकूल माने बैठा है। लेकिन हमारा तो यह दावा है कि भूत कालके समान

भविष्यमें भी हमारे सिद्धान्तोंकी प्रभुता रहेगी। भविष्यकी घटनाओंके लिये कोई कुछ नहीं कह सकता। जो पुरुष हमारे सिद्धान्तोंके लिये हमें स्वप्न देखनेवाला कहता है वह वर्तमान या भूत कालका ऐसा एक भी उदाहरण नहीं दे सकता जिससे सिद्ध हो कि उसके ढंगके लोगोंने कुछ कर दिखाया हो। संसारमें सभी स्वप्न देखते हैं। हां, कुछ लोग दुःस्वप्न देखते हैं और कुछ लोग स्वच्छ नक्षत्र खचित आकाशके नीचे संगीतमय सुन्दर संसारका दृश्य देखते हैं।

(१०)

नवीन उत्साहीको जिसने हालहीमें सिद्धान्तको ग्रहण किया है जानना चाहिये कि उसे ऐसे निराश करनेवाले अवसरोंका सामना करना पड़ेगा जिनका मुकाबला सबसे उत्साही, सबसे साहसी और सबसे दृढ़चित्त मनुष्योंको भी करना पड़ा है। हमारा कार्य मनुष्योंका कार्य है और इसमें ऐसे परिवर्तन हुआ ही करेंगे जैसे मनुष्यके कार्योंमें सदा हुआ करते हैं। इसलिये प्रत्येक ऐसे कार्यमें भाग लेनेवाले सैनिकको चाहिये कि वह सदा दारुण दुःख सहने और ऐसे समयका सामना करनेको तैयार रहे जिसमें उसे अपने चारों ओर अन्धकार ही अन्धकार दीख पड़े। ऐसे समय निराशा भयानक अंधेरे कुहरेकी तरह प्रत्येक सुन्दर वस्तुको और प्रत्येक आशाकी किरणको ढक देती है। इस निराशाके कई कारण हो सकते हैं। दुर्बल

मनुष्यके अधिक परिश्रम करने अथवा कई वर्षोंसे ऐसा प्रयत्न करनेसे जो निरर्थक सा दीखता हो या जिसे लोग भूलसे गये हों यह खिन्नता पैदा हो सकती है। यह म्लानता अपनी ओर ऐसे मनुष्योंको देखकर भी पैदा हो सकती है जिनका इस कार्य्यमें भाग लेना ही एक पहेली है, जिनका न तो चरित्र ही ठीक है, न वे सिद्धान्तका महत्व ही समझते हैं और जिनकी जघन्य, कुत्सित तथा कुटिल नीति तुम्हें निर्जीव बना देती है क्योंकि तुम समझते हो कि जिस मनुष्यके हाथमें हमारी जैसी निष्कलङ्क पताका हो उसे स्वभावतः धीर, वीर और गम्भीर होना चाहिये। यह मुर्दनी तुममें शत्रुके दिखाऊ अतुल बल और उन हजारों मनुष्योंकी लापरवाहीके कारण फैल जाती है जो गद्गद् होकर स्वतन्त्रताके गले तो चिपट जायंगे पर इस समय हताश होकर हाथपर हाथ रखे बैठे हैं। इनके अलावा अपनी बातोंमें मग्न रहनेवाले उस कामकाजी मनुष्यका विरोध भी हमें खिन्न कर देता है जो सदा प्रत्येक उच्च विचार और अटल सिद्धान्तोंकी आलोचना किया करता है।

यह सब कठिनाइयां स्वतन्त्रताके सैनिकको झेलनी होंगी। जो संग्रामसे थक गये हैं उन्हें समझ लेना चाहिये कि जिस समय सङ्कटकी घड़ी आती है उस समय अन्धकारपूर्ण आकाशमें एक चमकता हुआ तारा भी दिखलायी देता है। जहां एक या दो सैनिक हैं वहां वह व्यर्थ मालूम हो पर यदि वे दृढ़ रहें तो उनकी संख्यामें वृद्धि होगी। सत्यका प्रेम संसर्गसे फै-

है। जिस समय उन्नतिके मार्गमें बाधा उपस्थित होती है उस समय इस बातपर विचार मत करो कि हमारी इस वक्त क्या स्थिति है, पर इस बातको सोचो कि हमने एक समय कैसे उन्नता प्राप्त कर ली थी। इस समय हमारे लिये क्या बचा है और हम आगेको कितना प्राप्त कर सकते हैं। यदि कुछ लोग शिथिल पड़ गये हों और समयके अनुकूल अपने सिद्धान्तोंको बदलने लगे हों तो अधिक दृढ़ होकर उनसे सहानुभूति दिखलाओ। मृत्युको आलिङ्गन करनेकी अपेक्षा सिद्धान्तोंको पूर्णतया पालन करते हुए जीवित रहना कठिन है। कई उदारचरित्र पुरुष कठिन अवसर आ पड़नेपर पूर्ण साहसके साथ उद्देश्यकी सिद्धिके लिये अपने प्राणोंकी आहुति दे देते हैं। पर जीवित मनुष्यको सिद्धान्तके लिये समय समयपर विना चेतावनी मिले ही अग्नि-परीक्षाका भार वहन करना पड़ता है, और चूंकि सिद्धान्तके पालन करनेमें जीवनकी सारी शक्ति होम देनी पड़ती हैं सिद्धान्तकी मांगें इतनी जबर्दस्त होती हैं कि कई मनुष्य हिम्मत हार देते हैं।

हमें जनसाधारणके दिलमें यह जमा देना है कि जीवित रहना उतना ही साहसका काम है जितना कि जानपर खेलना। किन्तु वर्तमान समयमें हमें भ्रममें डालनेके लिये यह चिकनी चुपड़ी बात कही जाती है कि "तुमसे मातृभूमिके लिये प्राणोत्सर्ग करने-को कौन कहता है तुमसे तो प्रार्थना की जाती है कि उसके लिये जीवित रहो।" इसके साथ इस बातपर जोर नहीं दिया जाता

कि जीवनका उद्देश्य तेजस्वी तथा सत्य आदर्शके लिये प्राण धारण करना है। निरी क्षमा-प्रार्थनामें ही अस्तित्व गंवा देना जीवन नहीं है। यदि जीवनके विषयमें जनतामें ऐसे तुच्छ विचार फैल जायं तो हमें मातृभूमिमें मनुष्योंके स्थानपर ऐसे जीव दिखलायी देंगे जिन्हें भयसे कम्प छूट रही हो। ऐसे प्राणियोंमें न तो जीवित रह सकनेकी शक्ति रहेगी और न जान देनेका साहस ही रहेगा। वास्तवमें महान् संकट आ उपस्थित होगा। इन सब बातोंसे देशमें निराशा छा जायगी। इस उदासीनता और विश्वासघातको, साहसहीन मित्र और लड़ाके शत्रुओंको तथा अपने जीर्ण शरीर और चक्करमें पड़ी हुई बुद्धिको देखकर हममेंसे जो पुराने सिद्धान्तोंका प्रचार कर रहा है वह अपनी आवाजको अवश्य ही अरण्यरोदन समझ सकता है। जबतक खूनमें फिर गर्मी नहीं आजाती और विचारोंमें फिरसे तेजस्विता नहीं समा जाती तबतक इस अरण्यरोदनसे ही काम होता है। हजारों वर्ष पहिले जो बातें नक्कारखानेमें तूतीकी आवाज समझी जाती थीं उनमें इस समय बल और उत्तेजना दिखायी देती है किन्तु कामकाजी आदमीकी आवाज न पहले उत्तेजित कर सकती थी, न अब कर सकती है।

(११)

अब अन्तमें हम विचार करेंगे कि हमारा निश्चित मत क्या होना चाहिये। अपने विचारोंको आचारमें परिणत करना ही

हमारा मत है। जब हम ऐसा करते हैं हमारा स्वाधीनताका संग्राम गूढ़ तथा सार्थक रूपमें आरम्भ हो जाता है। हमें भविष्य-में अधिक सुगमता देखकर अपना कर्तव्य स्थगित न करना चाहिये। स्वाधीनता प्राप्त करनेके विषयकी बातचीत छेड़नेको बाध्य होना उतना ही सम्भव है जितना कि साधारणतया सैनिक संगठन कर युद्ध छेड़नेको मजबूर होना। हम जब लड़ाई छेड़ने-को मजबूर होनेका उल्लेख कर रहे हैं, कोई यह न समझे कि हम सन्धिकी बातचीतको भुला देनेकी भयानक भूलके अपराधी हैं।

× × × × ×

हम नहीं कह सकते कि भविष्यमें हमारे ऊपर अचान॰ कौनसी घटना टूट पड़े किन्तु जब हम सर्वदा यह ध्यानमें रखें कि वर्तमान समय ही मार्मिक समय है तो हम हर घड़ी तत्प॰ रहेंगे। हमको वीरताके साथ अपना सिद्धान्त ठीक कर ले॰ चाहिये और अपने जीवनको उसके अनुसार चलाना चाहिये प्रत्येक मनुष्यको अपनी सेनाके साथ बना रहना चाहिये अ॰ अपना झण्डा किसीके सामने न गिराना चाहिये। ऐसा कर॰ ही हम अपने चारों ओर अपनी जड़ फैला सकते हैं और इ॰ हासलेखक हमारे विषयमें लिखेगा कि हमारा काल तेज॰ नहीं बल्कि तेजपूर्ण था। मैं फिर कहूंगा कि युद्धके चढ़ाव उ॰ रके चक्करमें पड़कर हमें समय देख अपना स्वार्थ सिद्ध करने॰ पुरुषकी हीनता और शत्रुके विश्वासघातसे व्याकुल न॰ चाहिये। हमें शान्त तथा संयत रहना चाहिये और ब॰

लोग जो साफ नीयतसे या आनेवाले आकस्मिक भयके कारण हमारे दलमें नहीं हैं उन्हें अपने जीवनके ढंगसे अपने सिद्धान्तकी सुन्दरता, सत्यता तथा नित्य-व्यावहारिकता दिखा देनी चाहिये। इससे वे लोग हमारे पक्षमें आजायंगे जिनके दिलपर हमारी बातका असर हो सकता है और हमारा मतभेद यथासम्भव घट जायगा। इससे वे लोग भली भांति समझ लेंगे कि जो अविचलित हो महान् सिद्धान्तकी रक्षा करता है वह अवसरको ताकते रह-नेवालेसे अधिक अच्छा काम कर सकता है। तब वे समझेंगे कि स्वप्नमें भी इन्होंने जिस बातको सोचनेका साहस नहीं किया था उससे कितना अधिक काम होना सम्भव है। वे ध्येय-को आँखोंके सामने देखेंगे और इस दर्शनसे उनमें स्थायी उत्साह, स्वच्छ वुद्धि और आत्माकी दृढ़ता उत्पन्न होगी। जब इतना हो चुका तो देशका उद्धार दूरका स्वप्न नहीं रह जायगा, किन्तु यथार्थ रूपमें आरम्भ हो जायगा, सब हृदयोंमें फिरसे जीवन शक्तिका सञ्चार हो उठेगा और आयर्लैण्ड स्वतंत्रताके अन्तिम संग्राममें प्रवेश करके सफलतापूर्वक बाहर निकल आयगा तथा संसारके राष्ट्रोंमें अपना उचित स्थान फिरसे ग्रहण करेगा।



सप्तम परिच्छेद

---*---

दृढ़भक्ति

(१)

मनुष्यकी प्रशंसामें सबसे बड़ी बात यह कही जा सकती है कि वह अपने सिद्धान्तका पक्का है। चूंकि हमारे सारे इतिहासमें मातृभूमिकी दृढ़भक्ति ही देशवासियोंका प्रधान गुण रहा है इसलिये इस बातको निर्णय करनेका उपयुक्त समय आ गया है कि कौन मातृद्रोही हैं और कौन दृढ़ देशभक्त। जब मन्दमति सरकारने भली भांति जान लिया कि हम पूरे राजभक्त हैं तो उसने हमारे वीर नेताओंको राजद्रोही बतलाकर न्यायसे वञ्चित करनेकी चेष्टा की। × × ×

जब मनुष्य ऐसी बुराईके विरुद्ध उठ खड़ा होता है जिसने देशमें घर कर लिया हो तो हम इस मनुष्यकी पददलित सत्यके प्रति जो दृढ़भक्ति है उसकी प्रशंसा करते हैं। हम ऐसे बागीकी सराहना नहीं करते जो सिर्फ बगावतके लिये ही राज उलटना चाहता है। हमें यह विषय भली भांति समझ लेना चाहिये, नहीं तो जब हम सदियोंकी चेष्टाके बाद स्वतन्त्रता फिरसे स्थापित करेंगे तो प्रत्येक दुर्जन और विश्वासघातीको हमारी स्वतन्त्रतापर दोष लगानेका अवसर मिलेगा और वह

शत्रुको फिरसे हमारे देशमें घुसानेका षड्यन्त्र रचेगा।
सिद्धान्तके प्रति दृढ़भक्ति साधुस्वभाव पुरुषका सद्गुण है।

आयर्लैण्डमें दृढ़भक्ति (Loyality)शब्दका दुरुपयोग हुआ है और इसको व्यर्थ ही बदनाम किया गया है। यह स्मरण करके कि हमारे सब कालके वीर पुरुषोंमें यह गुण वर्त्तमान रहा है हमें फिर इसे उचित सम्मानका पद देना चाहिये। इस दृष्टिसे विचार करनेपर हमें कई ऐसी मार्मिक स्थितियोंका उल्लेख करना पड़ेगा जिनके कारण हमें हैरान और परेशान होना पड़ा है। हमें सरकारके उपकरणोंका उपयोग करते हुए अपने उन स्वत्वोंका प्रतिपादन करना पड़ेगा जिन्हें वह इन्कार करती है। एक बातपर स्थिर रहनेका जो सबसे बड़ा प्रश्न आजकल उपस्थित है उसपर भी ध्यान देना होगा। एक ओर राजनीतिमें भाग्यपर खेलनेवालोंके प्रति और दूसरी ओर निरुत्साहसे काम करनेवाले सत्य-हृदय मनुष्यके प्रति अपने भावोंका विचार करना होगा। दृढ़भक्तिके अन्दर यह सब बातें समा जाती हैं और इससे यह भी मालूम होता है कि जो आदमी स्वतन्त्रता प्राप्त करनेके लिये बगावत करता है ठीक वैसा ही है जैसा स्वतन्त्रताकी रक्षा करनेके लिये प्राण देनेवाला। ऐसा आदमी बदलते हुए समयके साथ साथ अपने रंग ढंगको नहीं बदलता। वह सदा सिद्धान्तका कट्टर भक्त रहता है क्योंकि घोर अन्धकारके समय जब शासक उसे जङ्गली, दुष्ट और राजद्रोही बताकर कलंकित करते हैं तब भी वह पहिलेके समान

अपने पक्षका दृढ़भक्त बना रहता है और अन्ततक वैसा ही बना रहेगा। हां, देशके लिये मृत्युको आलिंगन करनेवाला वीर वास्तवमें राष्ट्रका दृढ़भक्त है और शत्रुका प्रत्येक सहायक और प्रोत्साहक आयर्लैण्डका और आयरिश•जातिका द्रोही है।

(२)

जब आप स्वार्थसाधक विरोधीसे अनुरोध करते हैं कि मूल तत्वोंके आधारपर इस विषयकी आलोचना करे तो वह फौरन अपनी दलीलोंकी कमजोरी मालूम कर लेता है और प्रसङ्ग बदलकर आपके आचार और विचारोंकी स्थिरतापर चोट करता है। इसलिये हमें पहले ही समझ लेना चाहिये कि किसी विषयकी व्याख्या करनेमें जो युक्तियां दी जाती हैं उनका सापेक्ष गौरव और महत्व कितना है। सिद्धान्तोंका सबसे अधिक महत्व इसलिये नहीं है कि उनके द्वारा किसी विषयमें प्रवीणतासे युक्तियां दी जा सकें किन्तु उनका महत्व इसलिये है कि उनके भीतर एक महान् तत्व छिपा रहता है जो सारे जीवनको उज्ज्वल बनाये रखता है और प्रत्येक छोटे बड़े कार्यको नियममें रखता है। सिद्धान्त व्यक्तिके मनपर प्रकाश डालता है। वह हृदयको उत्साहित करता है, निर्मल बनाता है और बल देता है। वह चित्तको एकाग्र करता है और जीवनकी सब घटनाओंको एक सीधमें लाकर आंखोंके सामने स्पष्ट कर देता है जिससे प्रत्येक मनुष्यको हर बातका

उचित स्थान और परस्पर सम्बन्ध मालूम हो जाता है। सिद्धान्त मनुष्यको उस दर्जेपर पहुंचा देता है जहाँ वह शास्त्रार्थ नहीं करता किन्तु विश्वास करने लगता है। अबतक वह इच्छा और उद्देश्यहीन होकर इधर उधर भटक रहा था, सब शास्त्रोंका रसास्वाद ले चुका हो पर फिर भी घोर निराशामें डूबा हुआ रहता था। वह नहीं समझता था कि उसकी आत्मामें किस वस्तुका अभाव है। वह इस अभावरूपी व्याधिको दूर करनेके लिये संजीवनी बूटीकी इधर उधर खोज कर रहा था कि इतनेमें महान् ज्योतिका उसपर प्रकाश पड़ता है और बाहरसे बल प्राप्त करनेके बदले वह अपनी आत्माको पहचान लेता है। बस, अन्धेको दो आंखें मिल गयीं। हमारी तत्वबोधकी शक्ति अबतक भ्रमके बादलोंसे छिपी हुई थी। सत्य सिद्धान्तने इन बादलोंको छिन्न भिन्न कर दिया और इस दृष्टिको स्वच्छ, सुन्दर और नवजीवन दान करनेवाली बना दिया। जिसने यह दृष्टि पा ली तर्कका उसपर असर नहीं होता। इसका अर्थ यह नहीं है कि वह दलीलोंको मानता ही नहीं, बल्कि इसके विपरीत वह प्रमाणोंका पूरा पूरा उपयोग करता है। हां, उसकी आत्मामें ऐसा बोध हो जाता है जिसे निरा नैयायिक प्राप्त नहीं करा सकता और यह दुर्ज्ञेय पदार्थ ही उसके नवीन जीवनका रहस्य खोलता है। वह आजतक नास्तिक था, निर्बल था और उसका जीवन निष्फल था। अब वह आस्तिक, सिद्धान्तके लिये लड़नेवाला और विजयी बन गया

है। जो उसे केवल भावुक समझता है उसने उसका पूरा महत्व नहीं समझा। भावुक ऐसे विचारका प्रचार करता है जिसके अनुसार वह संसारको पलटना चाहता है, किन्तु सिद्धान्तका अनुयायी जीवनके एक ऐसे नियमको मानता है जिसके अनुसार उसे काम करना पड़ता है। उसकी आत्मा इतनी तेजीसे आगे बढ़ती है कि कोई भावुकता उसे रोक नहीं सकती। इसके अतिरिक्त उसके पास अपने सिद्धान्तके अनुकूल मौलिक और दिलमें जम जानेवाली दलीलें होती हैं और उसके खूनमें नवीन और चमत्कृत करदेनेवाली जीवन-शक्ति होती है। सिद्धान्तशून्य व्यक्ति अपनी निकम्मी युक्तियोंमें फंसा हुआ तबतक वाद-विवादमें पड़ारहता है जबतक कि उसकी बुद्धि चकरा नहीं जाती। उसकी समझमें नहीं आता कि प्रत्युत्पन्नमतिवाला मनुष्य किसी भी साध्यको योग्यताके साथ सिद्ध कर सकता है और फौरन अपनी बात लौटाकर उतनी ही योग्यताके साथ दूसरा पक्ष भी सिद्ध कर देता है। हम रातदिन देखते हैं कि सभाओंमें विषय निर्धारित कर दिया जाता है और दोनों पक्षोंके समर्थकोंको नियुक्त करके वादविवाद हुआ करता है। यह वाक्‌चातुर्य है, बुद्धिका कौशल है, किन्तु तत्वज्ञान आत्माको उत्तेजना देनेवाला है। इसलिये सिद्धान्तकी सत्यता सिद्ध करनेके लिये वाक्‌चातुर्यकी आवश्यकता नहीं है। यह सत्यता सिद्धान्तके उस गुणमें वर्तमान रहती है जिससे उसपर विश्वास करनेवालेके लिये सारे जीवनका रहस्य

खुल जाता है, जिससे उसका हृदय फड़क उठता है और वह प्रफुल्लित, सुन्दर, बुद्धिमान और साहसी बन जाता है।

(३)

अब हम सिद्धान्तकी स्थिरताका जो प्रश्न उठाया जाता है उसपर विचार करेंगे। हमारे विरोधी कहते हैं "अच्छा महाशय! जब आप अंगरेजी राज्यको नहीं मानते तो उनके सिक्कों और स्टाम्पोंको व्यवहारमें क्यों लाते हैं? आप पारलामेंटको नहीं मानते तो फिर पारलामेंटके कानूनद्वारा स्थापित की हुई काउन्टी कौंसिलोंसे क्यों काम लेते हैं? स्थानिक शासनसे क्यों लाभ उठाते है?" इत्यादि। यह तर्क सुपरिचित हैं और इनका उत्तर भी कुछ कठिन नहीं है। यद्यपि इस समय तोपें नहीं गरज रही हैं तो भी आयलैंण्ड यथार्थमें युद्धकी दशामें है। हम स्वाधीनताको फिरसे प्राप्त करनेके लिये लड़ रहे हैं। संग्राममें संकटके समय शत्रुको ढीला पड़ना पड़ा है और स्थानिक शासन और अन्य कार्यों के मोर्चे लाचार होकर हमें सौंप देने पड़े हैं। हम इनको लड़ाईमें जीते हुए स्थानोंकी भांति समझते हैं और इनके द्वारा अपनी शक्ति बढ़ाने, अपने देशको जागृत करने व उठाने और शत्रु-सेनाकी अन्तिम चौकी छीन लेनेकी तैयारी करेंगे। यह सर्वथा उपयुक्त है। रणक्षेत्रमें उस सेनापतिकी सदा प्रशंसा की जाती है जो शत्रुके अड्डेपर कब्जा जमाकर उसका अन्तिम विजयके लिये प्रयोग करता है।

इससे विजयके शुभ चिन्ह मालूम होते हैं। दूरसे युद्धकी गतिका अन्दाजा लगानेवालेको इससे पता चलता है कि युद्ध कैसा हो रहा है और विजय किसकी होगी। यदि युद्धक्षेत्रसे यह खबर आ जाय कि हमारे सिपाही शत्रुसे मिल गये हैं और उन्होंने उसकी प्रभुता स्वीकार कर ली है तथा वे उसके झंडेके नीचे आ गये हैं तो और लोगोंमें आतङ्क छा जायगा। यही प्रश्न विचारणीय है। यदि शत्रु रियायती तौरपर हमें कोई स्थान देता हैं तो उसपर अधिकार जमानेका हमें कोई अधिकार नहीं है। इन रियायतोंसे स्वार्थ-साधन करनेवाला और अपने सिद्धान्तोंको शत्रुके हाथ बेच देनेवाला अपनेही कर्मोंसे कलङ्कित हो जाता हैं।

× × × ×

जो हो, स्थानिक स्वराज्यकी मशीनके कलपुर्जे जनताके हाथमें हैं। यद्यपि तत्काल लाभ उठानेके लिये यह मशीन चलायी जा रही है तो भी इससे हम परम ध्येयकी ओर बढ़ रहे हैं। लोग यह बात भले ही न जानें, तो भी वे देशकी सर्वाङ्गसम्पन्न उन्नति करने और प्राचीन गौरव और प्रभाव फिरसे स्थापित करनेके लिये काम कर रहे हैं। जो इस बातका मर्म समझते हैं वे इस उन्नतिकी चालको तेज करनेके लिये प्रत्येक पदपर अपना अधिकार जमाते हैं और उन रियायतोंको काममें लाकर ध्येयको हमारे सामने और भी स्पष्टरूपसे रख देते हैं। विदेशी सरकार जब अपने विरुद्ध किये जानेवाले आन्दोलनको कमजोर

करनेके लिये रियायतें बख्शती है और देशभक्त उसकी इच्छाके विपरीत उन को अपने अधिकार और भी बढ़ानेके काममें लाते हैं, तो वह सरकार लोकसम्मत शासनको पुराने ढर्रेके कुशासन-की ओर लानेकी चेष्टा करती है। इस समय हमारे देशमें इसी प्रकारका झगड़ा चल रहा है। बीच बीचमें शत्रु हमारे आन्दोलनको रोकनेका प्रयत्न करते हैं। फल यह होता है कि विशेष अधिकारोंको प्राप्त करनेके लिये आन्दोलन तीव्र रूप धारण करता है। हमारे समयमें आयर्लैंडमें कृषकोंकी दशा सुधारनेके लिये घोर आन्दोलन हुआ, होमरूलकी लड़ाई छिड़ी, विश्वविद्यालयोंको जनताके अधिकारमें लानेका उद्योग हुआ, आयरिश भाषाको राष्ट्रभाषा बनानेका प्रयत्न हुआ। परिणाम यह हुआ कि लैण्ड एक्ट, लोकल गवर्नमेंट एक्ट, युनिवर्सिटी एक्ट पास किये गये और विश्वविद्यालयोंमें आयरिश भाषाको गौरवका स्थान मिला। इनमेंसे प्रत्येक अड्डेपर अधिकार जमानेसे हम एक एक कदम आगे बढ़ते गये। हम इसको इसी दृष्टिसे देखते हैं और इसीलिये इनका उपयोग करना उचित समझते हैं। जो पुरुष आयर्लैंडकी स्वाधीनताको फिरसे स्थापित करनेके पूरे पूरे और गूढ़ अर्थको समझता है उससे यदि कहा जाय कि भाई! हमें स्थानिक शासन और व्यवसायका अधिकार छोड़ देना चाहिये क्योंकि यह सरकारी पक्षके हैं और शत्रु सेनासे सम्बद्ध हैं, तो ऐसी बातको वह ध्यान देने योग्य नहीं समझेगा। जो लोग हमपर आक्षेप करते हैं कि हम कहते कुछ हैं और

करते कुछ हैं, हमें उनको यह मुंहतोड़ जवाब देना चाहिये कि हम शत्रुके मोर्चों पर कब्जा कर रहे हैं।

(४)

सिद्धान्तकी स्थिरताकी मिथ्या धारणाका खण्डन कर चुकनेपर भी हमें एक ऐसी दूसरी धारणाका निरूपण करना है जिसे अभीतक सर्वसाधारणने नहीं समझा है। यदि हम स्वतन्त्रताकी सशक्त सेना तैयार करना चाहते हैं तो हमें ऐसे ही सैनिक भर्त्ती करने चाहियें जो उद्देश्यको भली भांति समझे हुए हों, जो लक्ष्यके लिये पूरे दिलसे सर्वस्व न्योछावर करनेको तैयार रहते हों और जो सदा यह प्रण किये रहते हों कि हम अपने झंडेकी प्रतिष्ठा बनाये रखनेके लिये युद्धसे कभी मुंह न मोड़ेंगे। इस बातकी महत्ता तभी मालूम हो सकती है जब हम संसारकी ऐसी घटनाओंपर विचार करते हैं। जबतक मनुष्यका स्वभाव नहीं बदलता प्रत्येक आन्दोलनको ऐसे राजनीतिक बहुरूपिये घेरे रहेंगे जो समयको देखकर अपना काम निकालनेके लिये एक दल छोड़कर दूसरेमें जा मिलते हैं। ऐसे लोगोंका एक ही सिद्धान्त होता है—जिस दलकी प्रभुता हो उसीका पक्ष समर्थन करना—और इस उद्देश्यको सिद्ध करनेके लिये वे किसी भी दलमें मिलने और किसी भी दलको धोखा देनेमें देर नहीं लगाते। ऐसे आदमीको सब लोग भली भांति जान जाते हैं। ऐसे निष्कपट पुरुषको जो आजतक उलटे रास्तेपर चल रहा था और

अब सच्चे दिलसे सत्यकी खोज करनेके बाद हमारे झंडेके नीचे आजाता है, हम फौरन पहचान जाते हैं। किन्तु जिस उद्योगमें राजनीतिक बहुरूपिया अपने दलमें भर्ती कर लिया जाता है और उसको प्रभुता दी जाती है वह उद्योग अवश्य विफल होगा। यह बात कुछ विचित्र सी मालूम होगी कि ऐसे लोग भी बड़े बड़े आन्दोलनोंमें भर्त्ती किये जाते है। इसका यही कारण है कि नेता तत्काल लोगोंको अपने दलमें मिला लेना चाहते हैं और जो अभीतक अपने दलमें नहीं आये हैं उन्हें अपनी बढ़ती हुई संख्यासे विश्वास दिलाकर उनके दिलोंमें धाक जमाना चाहते हैं। हम अपने बढ़ते हुए बलकी भावी हानिका ख्याल नहीं करते क्योंकि जब राजनीतिक चालबाज सिद्धान्तकी दुहाई देता हुआ हमारे दलमें घुसता है तो वह बड़ा सुशील और सच्चा मालूम पड़ता है और हम उसे अनुभवी पुरुष समझकर उसका स्वागत करते हैं। अपने बलको बढ़ानेकी चिन्तामें हम उसे बिना भेद भावके मिला लेते हैं। किन्तु हमें अपने आदमी-पर पूरा विश्वास होना चाहिये। हमें स्मरण रखना चाहिये कि इस चालबाजसे शत्रुताकी अपेक्षा मित्रता अधिक हानिकर है। हमें यह भी ध्यानमें रखना चाहिये कि जनता—जिसका भ्रम दूर करके हम अपने सिद्धान्त की ओर लाना चाहते हैं--चुप चाप हमारी कार्रवाई देख रही है। सम्भव है हमारे सिद्धान्तोंसे जनता हमारी ओर खिंच रही है और हमारी जांच पड़ताल करनेके लिये हमारे पास आ रही है। जनता कुछ न जाने, पर वह

सिद्धान्तभ्रष्ट पुरुषको अवश्य पहचानती है। जब हमारे दल और सभाओंमें वह ऐसे पुरुषको पाती है तो वह हमारी दलीलें सुनने या हमसे प्रश्न करनेके लिये न ठहरेगी। वह हट जायगी और हमसे दूर रहेगी। किसी आदमीकी पहचान उसकी संगतिसे होती है। इस पुरानी कहावतकी व्यापकता जितनी हम समझते हैं उससे बहुत अधिक है। इसके अतिरिक्त उस राजनीतिक चालबाजको भर्त्ती करनेसे हमारे विचार व्यवहारके बीच कुछ अन्तर आ जाता है।

हम स्वतन्त्रताके लिये लड़ रहे हैं, न कि सांसारिक लाभ या सुखकी आशासे। हम इसलिये लड़ रहे हैं कि मनुष्यकी उदार वृत्तियां वाध्य करती हैं कि मनुष्य अपना स्वतन्त्रताका स्वत्व प्राप्त करे जिससे उसका जीवन सुन्दर और पराक्रमी बने। वास्तवमें इससे बढ़कर आश्चर्यकी बात कोई नहीं हो सकती कि ऐसे धमयुद्धमें पामर, कपटी और कोरे स्वार्थी मित्र हमारे दलमें हों। हमें सोलहों आने अपने सिद्धान्तका भक्त होना चाहिये और इस बातकी आशंका नहीं करनी चाहिये कि आरम्भमें हमारी संख्या बहुत कम है। उस जनसमूहकी अपेक्षा जिसकी दृढ़तापर हम निर्भर नहीं रह सकते सच्चे आदमियोंका छोटासा दल अधिक काम करनेवाला होता है। इस दलकी संख्या और शक्ति बढ़ती जायगी। अन्तमें इसके चारों ओर वह सेना एकत्रित हो जायगी जिसे कोई न हरा सकेगा।

(५)

विचार और व्यवहारकी एकताके यथार्थ ज्ञानके कारण हम राजनीतिक चालबाजसे जिस प्रकार बचे रहते हैं उसी प्रकार इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि निरुत्साही किन्तु शुद्ध-हृदय मनुष्यसे कैसा व्यवहार होना चाहिये। निरुत्साही पुरुष कहता है कि इङ्गलैण्डसे अलग हो जाना इस समय सम्भव नहीं है और होमरुल या आयलैंण्डके लिये स्वतन्त्र पारलामेंट स्थापित करनेका प्रस्ताव करता है। साधारण दृष्टिसे यह बात उचित जंचती है और हमारी इच्छा इस आधारपर अपने देशके दूसरे दलवालोंसे सन्धि करनेकी होती है और सन्धि कर भी ली जाती है। फल यह होता है कि ऐसे लोग एक स्थानपर आकर जमा हो जाते हैं जिनमेंसे कुछ तो पूर्ण स्वतन्त्रतापर विश्वास करते हैं, कुछ आंशिक स्वतन्त्रताको पूर्ण स्वतन्त्रताकी पहली किश्त मान लेते हैं और कुछ केवल आंशिक स्वतन्त्रता को ही अपना ध्येय मान कर उससे सन्तुष्ट हो जाते हैं। थोड़े दिनोंमें ही यह सन्धि टूट जाती है और सब लोग मतभेदके कारण काममें अपना हाथ खींच लेते हैं। दीर्घ दृष्टिवाला पुरुष जानता है कि प्रत्येक प्रस्तुत कार्य अन्तिम ध्येय और सिद्धान्तके अनुकूल होना चाहिये, इसीसे हमारे उद्देश्यकी सिद्धि हो सकती है। उसे यह भी मालूम रहता है कि इस समय हम जो काम कर रहे हैं उसके भीतर हमारा सिद्धान्त छिपा रहता है। ऐसे समय उसे अपने पक्षका कट्टर अनुयायी बना रहना चाहिये और

वह सिद्धान्त भी मानना चाहिये जिसे और लोग भले ही न मानें किन्तु वह अपने जीवनका व्रत समझता है। किन्तु उसके नये मित्र ऐसे सिद्धान्तसे बंधना अस्वीकार करते हैं जो उसके लिये कानूनके बराबर है पर औरोंके लिये जिसका कुछ मूल्य नहीं है। सारे झगड़ेकी जड़ यही है। जो मित्र किसी समान उद्देश्यको लेकर मिलकर काम करनेका विचार करते हैं वे देखते हैं कि उनके बीच ऐसे विषय छिड़ जाते हैं जो विवादास्पद हैं। वाद-विवाद आरम्भ हो जाता है और बहस गरम हो उठती है, आपसमें गाली गलौज होने लगती है, मनोमालिन्य पैदा हो जाता है और सभा भङ्ग हो जाती है।

अपना मन मारकर जो मित्रता की जाती है उससे मनोरथ तो सिद्ध नहीं होता बल्कि इसके द्वारा जो शुद्धहृदय मनुष्य एकत्र किये गये थे उनके बीच अविश्वास उत्पन्न हो जाता है। इस प्रस्तावको कार्यमें परिणत करनेसे कुछ लाभ नहीं हुआ। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जिन लोगोंको अपनी पूर्ण मांगोंकी स्वच्छ धारणा है उन्हें सावधानी तथा दृढ़तासे अपना प्रोग्राम तैयार कर लेना चाहिये और अपने ही बलपर आगे बढ़ना चाहिये। इसपर कई लोग दुहाई देने लगते हैं—देखिये! फिर आपसमें फूट पड़ गयी, फिर वही बात आगयी, यह लोग आपसमें मिल ही नहीं सकते, इत्यादि। हम इन लोगोंकी बात सुनकर मुंह नहीं मोड़ेंगे। किन्तु ध्यान रहे कि काम पड़नेपर हमारा पूरा पूरा साथ न दे सकनेवाले शुद्धहृदय मनुष्योंसे

बिना सिद्धान्तोंकी हत्या किये भी मेल हो सकता है। ऐसा स्वतन्त्र मेल हमारा वह मनोरथ सिद्ध कर सकता है जिसे पूरा करनेके लिये हमने सब दलोंको मिलाया था और अन्तमें जिससे हमारा सारा काम चौपट हो गया था।

इस विषय पर सबसे मुख्य बात यह है कि उस सच्चे आदमीकी नीयत बुरी न बतानी चाहिये जो हमसे भिन्न मार्गपर जाना ठीक समझता है। जिस आदमीसे हमारा मतभेद होता है उसकी नीयतपर आक्षेप करना किसी प्रकार भला नहीं कहा जा सकता। बहुधा यह देखनेमें आता है कि वह उतना ही सच्चा है जितने हम। उसने हमसे अधिक समयतक और हमसे अच्छी सेवा की है और दूसरोंसे मेल मिलाप रखनेकी फिक्रमें उसने मित्रता-का ढङ्ग स्वीकार किया है। हम उसके ढंगको पसन्द नहीं कर सकते किन्तु उसपर बुरी नीयतका दोष लगाना सरासर अन्याय है और इसका परिणाम सदा ही भयंकर होता है।

कर्मशून्यताको दूर करनेके लिये कई बार हम आपसमें ही लड़ बैठते हैं। हमें ऐसा न करना चाहिये और सबके समान-शत्रुसे ही मतलब रखना चाहिये। हमें ध्यान रखना चाहिये कि यह बड़े पराक्रमका काम है, इसमें स्थिति स्वयं धीरे धीरे अधिकाधिक निश्चित होती जाती है और ऐसा मालूम होता है कि हमें अपनी सारी शक्ति इसके पीछे लगा देनी होगी। मान लीजिये कि एक इञ्जिनियर एक बड़ी इमारत तैयार कर रहा हैं। वह किसी जगह कुछ असावधान रहा या किसी कठिनतासे नजर बचा गया,

उसकी इस भूलसे सारी इमारत भद्दी हो जायगी और हो सकता है कि सारी इमारत गिर जाय। इसलिये हमें निधड़क हो सिद्धान्तपर डटे रहना चाहिये। जब उक्त सब बातें मिलकर एक अविरोधी पूर्ण सिद्धान्तमें परिणत हो जाती हैं तो देश भरमें ज्योति फैल जाती है और पुराना तेज़ फिर स्पष्ट हो जाता है, नीच मनुष्योंकी नीचता धुल जाती है, डरपोक लोगोंमें उच्च कोटि-की वीरता आ जाती है और निडर लोगोंका पक्ष सिद्ध हो जाता है। मातृभूमि जाग उठती है, उसमें सिद्धान्तके लिये लड़नेका जोश आ जाता है और वह विजयकी ओर प्रयाण करती है।

(६)

सिद्धान्तभक्तिका निस्सन्देह यही सुन्दर अर्थ है। हमें यह अपनी पताकाओंमें लिख लेना चाहिये और सारे संसारमें इसकी घोषणा कर देनी चाहिये। यह अर्थ दुविधाहीन, गौरवपूर्ण, भयशून्य और अपरिवर्त्तनीय है। इस परिच्छेदमें उत्साह, यथार्थता और सावधानीके साथ जो कुछ लिखा गया है उसके संशोधन और परिवर्धनकी कभी आवश्यकता न पड़ेगी, भले ही कुछ कालके लिये भाग्यके पलटनेसे हम अपराधी समझे जायं। यदि स्वतन्त्रताके संग्राममें शुद्ध हो जानेके बाद हम अन्तिम युद्धसे संसारको चौंधिया देनेवाली विजयको प्राप्त करके बाहर निकलेंगे तो हमारी यह दृढ़भक्ति फिर भी बनी रहेगी। यह मध्याह्नके सूर्यके समान चमकती है। इसमें वही रम्यता और स्थिरता

रहती है जिससे हमारे संग्रामके पद पदपर प्रकाश पड़ता गया था। पूर्ण विजय प्राप्त होनेके बाद भी सम्भव है कि यह दृढ़भक्ति राष्ट्रके विधिनियम बनानेके समय और राजाओं, राष्ट्रपतियों तथा राजनीतिज्ञोंके चक्करमें पड़े हुए इस संसारमें राष्ट्रोंका नया संगठन करनेमें हमें पथ दिखायगी। इसपर एक चलचित्त मनुष्य जिसके हृदयमें कुछ तो नयी ज्योति पड़ी हुई है और कुछ पुराना डर बना हुआ है कहता है "आप बड़ी भारी आशा किये हुए हैं। हम मनुष्य हैं देवता नहीं।" यह बिल्कुल ठीक है कि हम देवता नहीं हैं। चूंकि हममें मनुष्यस्वभाव-सुलभ त्रुटियां हैं, हमारा मन भ्रान्त है, हमारा चित्तका वेग सहसा उबल पड़ता है; इसलिये हममेंसे सबसे अधिक आत्मविश्वासी पुरुष भी अपनेको किसी समय दुर्बलतासे सना हुआ पाता है। जब वह आचार तथा विचारमें डावांडोल दिखायी पड़ता है तो उसे कौन ठीक रख सकता है। वह असहाय, अपमानित तथा भ्रष्ट हो जाता है। ऐसे पुरुषको समझ लेना चाहिये कि हम इस घमंडसे एक उत्तम सिद्धान्त अपने सामने नहीं रख रहे हैं कि हम सुगमतासे उसका पालन कर सकेंगे, किन्तु भली भांति यह समझकर कि हमारे लिये इस सिद्धान्तसे दूर रहना सम्भव नहीं। अटल सत्य यही है। जब संसारमें दृढ़विश्वासी पुरुष पैदा होता है तो जन्मसे ही उसे हृदयबलका इतना सहारा है कि यह बल उसे कभी धोखा नहीं देता। उसका सिद्धान्त उसे पथ दिखलाता है और नये युद्धमें कूदनेके लिये तथा नयी दुनियाओंको जीतनेके

लिये उसकी शक्ति इतनी अधिक बढ़ा देता है कि जगद्विजयी सिकन्दरकी बुद्धिमें भी इस शक्तिका ध्यान न आया होगा। किसी मनुष्यको उसके हृदयका विश्वास और उसका सिद्धान्त योग्य बनाते हैं। यदि नीचसे नीच पुरुष भी सच्चा है और अच्छी सेवा कर रहा है तो वह बड़ेसे बड़े पुरुषके समान है। हमें निकम्मी बातें और क्षुद्र-हृदय मनुष्योंकी कुटिल नीति छोड़ देनी चाहिये और अपनेको मुक्त करनेकी आशासे दिव्य पताका तथा मनुष्य व देवताओंकी दृढ़ सत्यभक्तिका अवलम्बन करना चाहिये।



अष्टम परिच्छेद



नारी-धर्म

(१)

भविष्यमें जो महान् युद्ध होगा उसका पहला मोरचा आज मार लेना है। यह वात स्त्रियोंको भी समझ लेनी चाहिये। संसारमें इतनी नीचता है कि कभी कभी मनुष्यको ऐसा सिद्धान्त पकड़ना पड़ता है जो ऊंचा नहीं है और कभी अपनी मनुष्यताका परिचय देनेके लिये लड़ना पड़ता है। ऐसे अवसरोंपर स्त्रीको उसका साथ देना चाहिये, नहीं तो वह उसे गिरा देगी। स्त्रीके यह वात समझनेपर उसका कर्त्तव्य महत्वपूर्ण वन जाता है और उसके सामने आ खड़ा होता है। मनुष्य वहुधा सन्मार्गके संकीर्ण किनारेपर आकर विचलित हो जाता है, उस समय स्त्री ही उसे निश्चयपर लाती है। यदि वह पतिसे शुद्धचरित्र है तो वह उसे अपने गुणोंसे अलंकृत करेगी और यदि वह उससे नीच होगी तो पतिको और नीचे गिरा देगी। जव दोनोंकी आत्माएं एक सी होती हैं और दोनों उच्च प्रकृतिके होते हैं तो संसारमें उनका ऐसा तेज छा जाता है कि हमें परमात्माके अस्तित्वपर पूरा विश्वास हो जाता है। इससे हमें यह भी—यदि

आजतक न हुआ हो तो—विश्वास हो जाता है कि उनका आश्चर्यमय जीवन अनादि कालसे अनन्त कालतक मंगलमय और सुन्दर है; इससे हमें पता लगता है कि पति और पत्नीके आश्चर्यपूर्ण सम्बन्धकी उत्पत्ति और भविष्य क्या है। एकका रहना दूसरेके लिये अत्यन्त आवश्यक है। यदि एक दूसरेसे अलग रहता है, यदि वे मेलके साथ नहीं रहते तो एक भी जीवनकी रमणीकता और उसकी ज्योतिकी पूर्णताका अनुभव नहीं कर सकता। प्रत्येक पुरुष और स्त्रीको यह बात भली भांति देख लेनी चाहिये, उन्हें यह भी जान लेना चाहिये कि न मालूम किस समय, सत्यताके बलपर नहीं किन्तु अपने कर्मचारियोंके बलपर शासन करनेवाला कोई छोटा मोटा अधिकारी उनमेंसे किसीको भी ललकार दे। हमारे ऊपर ऐसे ही शासकोंका राज्य है। हमारे कई भाई भोग विलासमें दिन व्यतीत करते हैं और शासकोंकी हां में हां मिलाते हैं। ऐसे आदमी मनुष्य बन कर तंग हालतमें नहीं रह सकते, वे तो बेकार रहकर मजा उड़ाना चाहते हैं। ऐसे मनुष्योंके लिये बरनार्डशाने क्या ही ठीक कहा है कि "उनकी आत्मा गुलाम है।" यदि हमें वीरतापूर्ण भविष्यके लिये तैयारी करनी है तो इस बुराईसे लड़ना पड़ेगा। यदि हम राष्ट्रकी दासताको भगाना चाहते हैं तो पहिले प्रत्येक व्यक्तिकी खुशामदखोरीकी आदत छुड़ानी होगी। भावी युद्धके लिये यही हमारा शिक्षाक्षेत्र है। हमारी ललनाओंको भी यह बात हृदयमें रख लेनी चाहिये। उन महिलाओंको तो अवश्य यह बात

हृदयंगम कर लेनी चाहिये जो आनन्दपूर्ण घृणित जीवनकी अपेक्षा आत्म-सम्मानके साथ भूखों मरना पसंद करती हैं। इसलिये हम सब कार्यकर्ताओंको राष्ट्रीय भावोंसे पूर्ण समझकर निवेदन करेंगे कि यदि तुम्हारे हाथमें स्त्रीशिक्षाका कार्य है तो उन्हें बताओ कि दासभावसे भरी हुई आत्मावाले मनुष्यका तिरस्कार करें और उस ऐश्वर्यसे हार्दिक घृणा करें जो ऐसी आत्माका मूल्य है।

(२)

मैं अपनी वीर स्त्रियोंके विषयमें कुछ लिखना चाहता हूं। जब हम किसी महान् कार्यके लिये अपनेको या दूसरोंको उत्साहित करना चाहते हैं तो उन वीर स्त्रियों और पुरुषोंका उदाहरण देते हैं जिन्होंने इसी तरहकी कठिनाइयां झेली हैं, जो शूरताके साथ युद्धमें कूदे हैं और छाती दिखाते हुए लड़ाईके मैदानसे बाहर हो गये हैं। इन सूरमाओंने ही हमारे लिये जीवन धन्य करनेवाली बपौती छोड़ी है। यह हमारे लिये कम लज्जाका विषय नहीं है कि हम अपने वीर पुरुषोंका इतिहास कम जानते हैं इससे भी अधिक लज्जाका विषय यह है कि हम अपनी वीर स्त्रियोंके विषयमें कुछ भी नहीं जानते। और जब कभी हम किसीकी महिमा कीर्त्तन करते हैं तो हमारा चुनाव ठीक नहीं होता। ××× हमारे जीवनपर कविताने प्रभाव डाल रखा है। देशभक्तिके हितमें यह प्रभाव ठीक नहीं है। हम किसी प्रेयसीकी सर्वनाशकी

कथा सुनकर दयासे पिघल जाते हैं। हममें अपने लिये और सबके लिये सहानुभूति उमड़ पड़ती है। भावकी लहरोंमें बहकर हम अपनी नसें ढीली कर देते हैं। यह करुणा हमें दुर्बल कर देनेवाली है। इससे मालूम होता है कि खूनके अन्दर खौलती हुई गरमाहट नहीं है, जीवनपर हमारा पूर्ण अधिकार नहीं है और हममें दृढ़ निश्चय नहीं है कि झण्डेको पकड़कर एक स्थानपर डटे रहें और युद्धको समाप्त करें। अब समय आ गया है कि जिस पीढ़ीने सारा क्यूरानकी कीर्तिके गीत सर्वत्र सुने हैं वह अब उससे भी अधिक वीर तथा सुन्दर आदर्शवाली टोनकी धर्मपत्नीका गुणगान करे।

(३)

जब हम स्त्रियोंके विशेषता-प्रदर्शक गुणोंपर विचार करते हैं तो सौजन्य, कोमलता, सहानुभूति तथा करुणाके भाव ध्यानमें आते हैं। और जब किसी स्त्रीमें यह गुण अपना गाढ़ा रङ्ग जमाते हैं और उनके साथ सहनशीलता, साहस एवं वीरताके मनुष्योचित गुण रहते हैं, तो ऐसी स्त्री वीर समझी जाती है। आयरिश नेता टोनकी पत्नी ऐसी ही थी। हम उसकी प्रशंसा निर्भय होकर कर सकते हैं। उसकी हर तरहसे परख हो चुकी और वह हर तरहसे बिल्कुल सत्य उतरी। अपने पतिकी भक्ति कर और उसे देशके कार्यमें उत्साह प्रदानकर उसने जो काम किया उसकी महान् प्रशंसा की जानी चाहिये। यद्यपि

उसका पति मारा गया और वह पतिके प्रेम और उसके उत्साह-पूर्ण जीवनसे वंचित रखी गयी, तिसपर भी उसकी सत्यताने लोगोंको आश्चर्यमें डाल दिया।

प्रश्न उठ सकता है कि टोनकी जीवित अवस्थामें उसकी स्त्रीका पतिके प्रति प्रगाढ़ प्रेम था इसीलिये वह पतिव्रता रही। किन्तु नहीं, उसके इस प्रारम्भिक जीवनमें दयाभाव प्रधान था, लेकिन बादको जब उसके ऊपर दुःख पड़ा उसने ऐसे धैर्यका परिचय दिया कि उसकी वास्तविक महत्ता चमकने लगी। जिस प्रेममें वे दोनों बंधे हुए थे वह साधारण नहीं था। इन दोनोंकी जीवनी पढ़नेसे स्पष्ट और सुन्दर मालूम पड़ती है। टोन धीर, संगठनकर्ता, जबरदस्त लड़ाका, दूरदर्शी, सोचनेवाला, अदम्य उत्साही और जन्मसेही नेता था। प्रेममें मग्न बच्चेकी तरह वह प्रेमभरी सादगीसे अपनी स्त्रीको लिखता है "मुझे सदा तुम्हारा और बच्चोंकाही ध्यान रहता है।" इस पत्रका अन्त यों है "मेरी ओरसे बच्चोंका मुंह बार बार चूम लेना। ऐ जीवनधन और प्राणप्रिये! भगवान तुम्हें सदा सुखी रखे।" यह आश्चर्यकी बात नहीं है। जब अपने कार्यके आरम्भमें टोन अमेरिकासे प्रचार-कार्यके लिये फ्रांस जानेकी तैयारी कर रहा था, तो उस समय भी उसे अपने असहाय बाल बच्चोंकी याद आनेसे कष्ट हो रहा था। उसे ख्याल आता था कि इस संकटमें मेरी स्त्री क्या करेगी। क्या वह भेंट होनेपर मुझे छातीसे लगाकर रोवेगी और रोते हुए बाल बच्चोंकी हालत सुनायगी और मेरी प्रतिज्ञाकी बात छेड़ेगी

तथा मुझे प्रेमकी याद दिलाकर गिड़गिड़ायगी कि अब देशका काम भूल जाओ ? सुनिये, इस संकटके समयमें अपनी स्त्रीकी धीरताके विषयमें टोन क्या लिखते हैं—"मेरी प्रतिष्ठा और हितके लिये मेरी स्त्रीका साहस और उत्साह नाममात्रको भी नहीं घटा था। उसने मुझसे निवेदन किया 'आप अपनी प्रतिज्ञा· पर डटे रहिये और देशके प्रति अपने धर्मको निभाइये। आपकी अनुपस्थितिमें घरका काम काज मैं संभालूंगी। देशके कामके समय बाल बच्चोंकी तथा मेरी तनिक भी चिन्ता न कीजिये। वह परमात्मा जिसने समय असमय आश्चर्यजनक रीतिसे हमारी रक्षा की है इस दुःखमें हमें न छोड़ेगा।' सच्ची स्त्रीकी यह अचूक वाणी है। जिस समय वह टोनको विदा करती है उसका शरीर कांपता है किन्तु आंखोंसे वह ज्योति निकलती है कि जिसके सामने मनुष्य भी लज्जित हो जाय। वह ज्योति उसके अद्वितीय पति टोनमें ही देखी गयी, किन्तु और कोई मनुष्य उसे पा नहीं सका। इस स्त्रीकी अटल धीरताकी अग्निपरीक्षा भीषण भविष्यमें ली गयी जब देशका काम नष्ट भ्रष्ट हो गया और टोनको अपने प्राण अर्पण करके प्रायश्चित्त करना पड़ा। जब उसका अन्तिम समय आया और उसके भाग्यका निर्णय हो चुका था उसने अपनी स्त्रीको पत्र लिखा। उसकी वीरताका इससे ओजस्वी प्रमाणपत्र और कोई नहीं हो सकता। टोनने लिखा "ऐ प्राण प्यारी ! अब विदा दो। मेरे लिये यह पत्र

समाप्त करना असम्भव हो गया है। मेरी [Mary] को मेरा प्रेम जताना और सबसे अधिक यह बात स्मरण रखना कि बाल बच्चोंकी मां बाप अब तुम्हीं हो। मेरे प्रति अपने प्रेमका पक्का प्रमाण तुम इन बाल बच्चोंकी शिक्षाके लिये अपनी रक्षा करके ही दे सकती हो। शक्तिमान ईश्वर तुम सबका भला करे।" क्या ही सुन्दर पत्र है! जो बात लिखी हुई है उससे अधिक जोर उस बातपर है जो नहीं कही गयी है। स्त्रीके लिये रोना नहीं; अपना नाममात्र दुःख नहीं। इस पत्रमें एक स्थलपर लिखा है—"तुम्हारे और बच्चोंके लिये हृदयमें जो भाव उठ रहे हैं शब्द उन्हें प्रकट नहीं कर सकते। इसलिये यह चेष्टा न करूंगा। किसी प्रकारके दुखड़ेका रोना तुम्हारी और मेरी वीरतामें बट्टा लगाता है।" इसीलिये तो टोनकी स्त्रीने अपने कष्टमय जीवनमें इस दारुण परीक्षाका शान्त चित्तसे सामना किया। टोनका अपनी स्त्रीके प्रति पूर्ण विश्वास बतलाता है कि यह वीर स्त्री पतिकी आज्ञाओंका किस प्रकार पूरा पूरा पालन करती थी। श्रीमती टोनका बादका जीवन पग पगपर साक्षी देता है कि उसने पतिकी अमानतमें खयानत नहीं की। टोनके लड़केने जो पिताके मरते समय निरा बच्चा था अपनी जवानीमें उसने अपनी स्मृतियां लिखीं। एक स्थानपर वह अपनी माताकी सीधी सादी प्रशंसा करता है। देखिये,इस सादगीमें कैसा ओज भरा हुआ है "मेरी बची हुई मांने मेरा पालन पोषण पिताके सब भावों और सिद्धान्तोंके अनुसार किया।" मांकी प्रशंसामें

यह शब्द यथेष्ट हैं। आगे सुनिये। उसने सन्तानकी सेवामें अपनेको मिटा दिया और गर्वके साथ अपनी तथा अपनी सन्ततिकी स्वतन्त्रताका पूरा ध्यान रखा। वह फ्रांसके एक सेनापतिकी स्त्री थी। उसने सहायता स्वीकार नहीं की। फ्रांसके सपूतोंने उसका सम्मान किया।

टोनकी मृत्युके सालभर बाद लूश्यां बोनापार्तेने फ्रांसकी राष्ट्रीय सभामें उसकी प्रशंसा करते हुए ओजस्वी भाषण दिया था कि "यदि टोनकी सेवा आपके भावोंको उत्तेजित करनेके लिये यथेष्ट नहीं है, तो मैं उस उच्च विचारवाली स्त्रीके स्वतन्त्र विचार तथा दृढ़ताका उल्लेख करूंगा जो अपने पति तथा अपने भाईकी कब्रपर आयर्लैण्डकी मुक्तिकी लालसा अपने आंसुओंके साथ बहा रही है। मैं चाहता हूं कि उसके चेहरेपर दुःखके भावोंके साथ २ आयरिश तेज किस प्रकार सना हुआ है यह मैं आपको बतला सकता। वह स्पार्टा (प्राचीन यूनानका एक प्रान्त) की उन रमणियोंकी याद दिलाती है जो अपने देश-भाइयोंके युद्धक्षेत्रसे लौटनेपर उत्सुकताभरी दृष्टिसे सेनाको देखनेके लिये दौड़ पड़ती थीं और जब देखती थीं कि उनके पति, पुत्र और भाई लापता हैं तो आनन्दसे कहती थीं 'उसने अपने देशके लिये प्राण दिये हैं; वह प्रजातन्त्रके लिये मरा है'। "जब फ्रांसमें प्रजातन्त्रका पतन हुआ, नेपोलियन सम्राट् बना और इस हलचलमें उसके स्वत्वोंपर ध्यान न दिया गया, तो वह स्वयं अपने पुत्रको लेकर नेपोलियनके पास गयी और टोनकी सेवाओंका स्मरण

दिलाते हुए उससे प्रार्थना की कि वह उसे पलटनमें भर्ती कर ले। सबको देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि नेपोलियनने उसकी बात बड़े आदरसे सुनी और तत्काल उसे स्वीकार कर लिया। उसने यह प्रार्थना अपने एकमात्र बचे हुए पुत्रके लिये की थी। उसके दो बच्चे पहले ही मर चुके थे। लड़कीकी मृत्युका दृश्य बड़ा हृदयविदारक था। अब वह एक लड़केको लेकर खड़ी थी। किसी बच्चेका संरक्षण इतने अधिक अनुरागसे न किया गया होगा और न किसीको गर्वके साथ जीवन आरम्भ करनेका ऐसा पथ सुझाया गया होगा। इस तत्वको भली भांति समझनेके लिये इस बालकके स्मृतिपत्र पढ़ने चाहियें और स्थान स्थानमें इस बातपर विचार करना चाहिये कि इस रमणीने अपने पतिको कैसी वीरताके साथ वचन दिया था कि वह अपने बच्चोंका उत्तरदायित्व ग्रहण करती है और अपने घोर कष्टके दिनोंमें उसे अपने वचनोंका किस प्रकार अक्षरशः पालन करना पड़ा। वह सत्यपर दृढ़ रही। उसकी शक्ति और भक्तिकी उपमा नहीं मिलती। उसके दो बच्चे रोगसे कालके ग्रास बन गये थे और बचे हुए लड़केको उसने किस प्रकार रात दिनकी हिफ़ाज़तसे यमके घरसे लौटाया था। इस लड़केको उसने किस प्रकार शिक्षा दिलायी और किस प्रेमपूर्ण गर्वके साथ उसे सैनिक कार्यमें नियोजित किया।

एक बार किसी नीचहृदय पुरुषने इशारेसे कहा कि तुम रुपया मांगनेको हमारे पास आयी हो। उस समय उसके हृदयसे वीरो-

चित अभिमानके यह शब्द निकले कि मैंने इतने संकट झेले किन्तु दूसरेके आगे हाथ फैलाना कभी नहीं सीखा। अपने सब कष्टोंमें वह तेजस्वी, साहसी, शिष्टाचारी और अपने कर्तव्यके प्रति सदा सजग रहती थी। समय पड़ेपर वह कभी अपने कर्तव्यसे च्युत न हुई; उसने अपना धर्म पूरा पूरा निबाहा। वर्षों बाद फिर जब वह अपने लड़केको सेनामें भर्ती करनेको भेजती है, तो उसी प्रकार कांप कांपकर उसे विदा करती है जिस प्रकार कुछ साल पहिले उसने अपने पतिको आश्वासन देकर देशके प्रति धर्म निबाहने भेजा था। आज वह अपने इकलौते बेटेसे अलग हो रही है। उसका हृदय उसके शब्दोंमें ही देख लीजिये—"आजतक मैंने अपनेको यह सोचनेका अवसर भी नहीं दिया था कि मेरा विलियम मेरा है, मेरा इकलौता बेटा है। मैं यही सोचती रही कि टोनका लड़का मुझे सौंपा गया है, किन्तु विदाईके समय प्रकृतिने अपना जोर दिखाया। मैं एक खेतमें बैठ गयी। मेरे सामने सफेद और लम्बी सड़क थी। मैं सड़क भर बेटे ही बेटेको देखती थी। मेरी विचारशक्ति लुप्त हो गयी। उस समय ऐसा मालूम पड़ता था कि जीवन भरकी सब यन्त्रणाएं एक साथ मेरे ऊपर आ टूटी हैं और मुझे घेरे खड़ी हैं। मुझे उस वक्त एक जबरदस्त चाह हुई और वह चाह सदाके लिये आंखें बन्द कर देनेकी थी। मैं उसी हालतमें रही; मुझे यह नहीं सूझ रहा था कि घरको भी लौटना है। इतनेमें एक छोटी लवा मेरे पासकी झाड़ीसे उड़ी और मेरे सरके ऊपर

चक्कर काटने लगी। ओह! वह हवामें कैसा सुन्दर और प्रफुल्लित करनेवाला गान गा रही थी। उसकी ध्वनिने मुझे शान्ति दी और बेहोशीसे जगाया। मेरे हृदयने आवाज दी, यह टोनने तेरे पास भेजी है। मैं अपने निर्जन घरको वापस चली आयी।" यह दृश्य है जो हमारे दिलको मोम बना देता है। कैसी पतिव्रता स्त्री थी! धूपमें बिल्कुल अकेली सर झुकाये घासपर बैठी हुई है; लवाका गान सुनकर समझती है कि पतिने मीठा आश्वासन देनेके लिये इसे भेजा है। ऐसी स्त्रीको देखकर हममें कमजोरी पैदा करनेवाले भाव उत्पन्न नहीं होते। हमें मातृभूमि और उसके निवासियोंपर गर्व होता है; हमारे विचार दृढ़ और निश्चित बन जाते हैं; हमारा हृदय कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होनेकी पुकार मचाता है; हम रोते गिड़गिड़ाते नहीं हैं किन्तु देशका हित करनेके लिये हमारा खून खौलने लगता है।

(४)

नारी-धर्मका यह वीरतापूर्ण उदाहरण हमारी स्त्रियोंहीके नहीं किन्तु हमारे पुरुषोंके सामने भी रखा जाना चाहिये। पाठकोंको इससे मालूम होगा कि देशभक्ति हृदयके कोमल भावोंका नाश नहीं करती बल्कि उल्टा उन्हें जगाती है और विस्तृत करती है। हमको ऐसा विचारनेका अभ्यास पड़ गया है कि सिपाहीमें प्रेम और करुणाका भाव नहीं रहता। हम समझते हैं कि यह गुण उसकी दृढ़ता नष्ट कर देंगे और उस-

का काम चौपट कर देंगे। किन्तु हमें ध्यान रहना चाहिये कि मनुष्योचित गुणोंका अभाव हमारे सब कार्य निरर्थक कर देता है। जबतक हम सयाने नहीं होते और हमारी नसोंमें कविता-का रस नहीं बहता तबतक तो हम किसी भी सिद्धान्तके अनुसार काम करनेको तैयार रहते हैं; किन्तु जब प्रकृति हमारे ऊपर अपना राज्य जमाती है तो कट्टर सिद्धान्तवादी किसीको अपने वशमें रख नहीं सकता। हमें यह बात याद रखनी चाहिये और मनुष्य बनना चाहिये। हम शब्दोंमें नहीं तो कार्यतः कह रहे हैं—"आयलैंडके लिये कृपया घर गृहस्थीके जञ्जालमें मत फंसिये।" इस दृष्टिसे तो हम यह भी कह सकते हैं-"आयलैंड-के लिये कृपया अपनी रगोंमें रक्तका प्रवाह रोक लीजिये।" ऐसा होना असम्भव है। यदि सम्भव भी होता तो यह घृणित बात होती। स्त्री और पुरुषको कन्धेसे कन्धा मिलाकर अपने जीवनमें महत्वपूर्ण और स्वच्छ धर्मका पालन करना होता है। इस धर्मके स्थानपर ऐसा प्रकृतिविरुद्ध जीवन व्यतीत करना जिसमें न तो तपोवनके एकान्त वासका ही आनन्द मिले और न संसारमें ही हम कुछ कर सकें विकट और बुरा है।

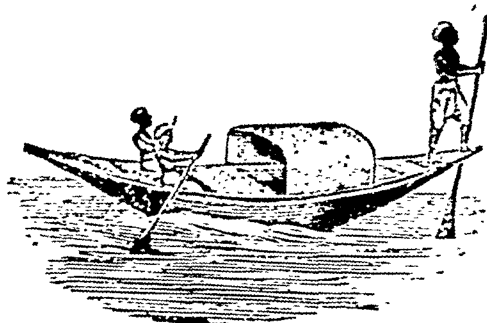
हमारा सौभाग्य है कि टोनकी स्त्री आयलैंडमें पैदा हुई। इस उदाहरणसे कोई भी स्त्री सीख सकती है कि बहादुरसे बहादुर आदमीकी टक्करका कैसे बना जाता है। मनुष्यको इस दृष्टान्तसे सबक लेना चाहिये कि स्त्री और पुत्र भले ही कष्ट पावें किन्तु उन्हें गुलाम और कायर बनाना पाप है। संसारमें

ऐसे निष्कपट-हृदय मनुष्य भी वर्त्तमान हैं जो स्वयं अपनी देहमें सब कष्ट सहनेको तैयार हैं, किन्तु वे अपने कुटुम्बियोंका कष्ट नहीं देख सकते। इनको परिवारका स्नेह जकड़ लेता है और पतनकी ओर घसीट ले जाता है। ऐसा कभी न होना चाहिये। यदि कर्तव्यको पालनेसे पुत्र और कलत्रपर आपत्ति आनेका अन्देशा हो और इसीलिये उसे ताकपर रख देना पड़े तो स्त्री, धर्मपत्नी नहीं, भार बन जाती है और सन्तान पतित जीव बन जाती है जो त्रिशंकुकी तरह अधर लटका हुआ है, जो सर ऊंचा नहीं उठा सकता और भगवान तथा मनुष्यके प्रति अपना कर्तव्य निबाहनेके अयोग्य है।

मनुष्यको घबराना न चाहिये कि उसके प्रेमियोंकी अग्नि-परीक्षा हो रही है। उसे शक्तिभर ऐसा बननेकी चेष्टा करनी चाहिये कि वे आंचमें पक्के उतर आयें। इसके बाद सत्यकी महिमा और सत्याग्रही स्वभावकी सत्यताके भरोसेपर अपने प्रेमियोंकी विजय छोड़ देनी चाहिये। परिणाममें ऐसे पुरुष तथा ऐसे प्रेमियोंको वह पुरस्कार मिलता है जिसका उन्हें स्वप्नमें भी ध्यान न था।

सुनिये, जिस युद्धमें इतनी परीक्षा ली जा रही है वह उनके जीवनमें उन नये और स्वच्छ भावोंको लायगा जिनका समाजके समागममें उसे आजतक पता न चला था। इससे उन्हें अधिक सहानुभूति, परदुःखानुभव, विनय और शक्ति प्राप्त होगी। इस परीक्षासे जीवनके नये पर्दे खुलेंगे और समाजके प्रति हृदय-

में उदार विचार पैदा होंगे। सारांश यह है कि इस यन्त्रणामय परीक्षा द्वारा ही जीवनमें ज्ञान, करुणा और वीरताके अपूर्व सम्मिश्रणका आनन्द मिलता है और ऐसा जीवन, चाहे इसमें कितने ही दोष, लड़ाइयां, झगड़े और यातनाएं क्यों न हों, सदा श्रेष्ठ और मनोहर है।





नवम परिच्छेद



साम्राज्यवाद

(१)

आयर्लैण्डको होमरूल देनेका वचन मिलते ही तुरन्त साम्राज्यके कई नये पक्षपाती दिखायी देने लगे हैं। सम्भव है इससे भी भलाई निकल पड़े। इससे हमको साम्राज्यके पक्षपातियोंके साथ पहिलेकी अपेक्षा अधिक निकट जाकर टक्कर लेनेका मौका मिल जायगा। आजतक हमारा युद्ध अस्पष्ट सिद्धान्तोंके ऊपर रहा है। होमरूलके लिये लड़नेवाले साम्राज्यवादियोंने शब्दजालके भीतर यह बात छिपायी कि वह साम्राज्यके लिये लड़ रहे हैं। अब होमरूल प्राप्त होने हीको है। इससे हमें कमसे कम एक लाभ होगा। गन्दी हवा साफ हो जायगी। यह बात निश्चित रूपसे तय हो जायगी कि हम राष्ट्रके लिये लड़ें या साम्राज्यके लिये। राष्ट्रके पक्षमें हमें जो कुछ कहना है आगे कहेंगे, किन्तु इस समय हम साम्राज्यवादपर लिखेंगे, क्योंकि हम साम्राज्यवादियोंकी तरफसे झूठी और पाखण्डपूर्ण बातें सुन रहे हैं। हम साम्राज्यवादकी जांच करेंगे और इसका अत्याचार, निठुरता और पाखण्ड दिखायेंगे। साथ साथ यह भी दिखायेंगे कि साम्राज्यवादियोंको अपने ऊपर आक्रमण करनेका छोटेसे छोटा मौका

देना कितना भयंकर है। साम्राज्यको हम जितना जानते हैं और उसके साथ सम्बन्ध रखनेसे हमें जो ज्ञान प्राप्त हुआ है उससे हम कह सकते हैं कि साम्राज्य बुरी चीज है और हमें स्वयं ही इससे मुक्त होना और आगेको इसके जालमें फंसनेसे बचना नहीं चाहिये, वल्कि संसारके हर किसी ऐसे राष्ट्रका उत्साह और आशा बढ़ानी चाहिये जो साम्राज्यके विरुद्ध लड़ रहा हो।

(२)

माकियावेली एक स्पष्ट लेखक हुआ है। उसने साम्राज्यवादपर एक पुस्तक लिखी है। इस पुस्तककी पड़ताल करनेसे साम्राज्यवादकी माया कट जायगी। हां, आंखें होते हुए जो न देखना चाहे उसे कोई नहीं दिखला सकता। साम्राज्यके कई पक्षपाती माकियावेलीकी दुष्टतापूर्ण बातोंको पढ़कर एकदम घबरासे जाते हैं। इस घबराहटसे हमें भ्रममें न पड़ना चाहिये। जिन लोगोंने माकियावेलीको "राजकुमार" नामक पुस्तक नहीं पढ़ी है वे निम्नलिखित अवतरणोंको ध्यानसे पढ़ें और देखें कि ये बातें आयलैंडमें अंग्रेजोंके शासनपर किस प्रकार घट जाती हैं। इन बातोंको पढ़कर समझें कि साम्राज्य स्वयं ही बुरा है, हर तरहसे दुष्टतापूर्ण है, इसका पग २ पर विरोध किया जाना चाहिये, इससे निरन्तर युद्ध जारी रहना चाहिये और उत्साहके साथ तथा विना हीले हवालेके उसका त्याग करना चाहिये। हमसे शैतान, उसकी शान और उसके कामोंसे दूर रहनेके लिये

बचपनसे ही कहा जाता है। वही बात इसके लिये भी लागू है। पहले विदेशी शासकके आक्रमणकी बात सोचिये। माकियावेली कहता है—"आक्रमणकी साधारण रीति यह है। ज्योंही विदेशी राजा किसी प्रदेशपर आक्रमण करता हैं तो वहांके दुर्बल और कृतघ्न निवासी उसके साथ मिल जाते हैं। कारण यह है कि उनमें अपने वर्तमान प्रभुओंके प्रति ईर्ष्या और द्वेषका भाव रहता है। ऐसे छोटे छोटे रजवाड़ोंको अपनी ओर करनेके लिये कोई कष्ट उठा न रखना चाहिये। वशमें आते ही ये लोग तुरत मिलकर आक्रमणकारीके साथ एक हो जाते हैं। विजयी राजाको विशेष ध्यान इस बातका रखना चाहिये कि यह कभी शक्तिशाली न बन जायं। इनके हाथमें विशेष सत्ता भी न दी जानी चाहिये। ऐसा करनेसे विजयी राजा बड़ी आसानीके साथ अपने सैन्यबल और अपनी ओर किये हुए इन राजाओं और रजवाड़ोंकी सहायतासे अपने पड़ोसियों-की शक्ति कम कर सकता है और विजय किये हुए प्रदेशमें एकछत्र राज्य चला सकता है।" यह देशको फोड़कर उसपर शासन करनेकी पुरानी नीति है।

किसी देशमें अपना प्रवेश करनेके लिये कोई बहाना चाहिये। माकियावेलीने एक राजाकी प्रशंसा की है जो सदा धर्मका बहाना निकाला करता था। किसी देशपर अधिकार हो चुकनेपर उस नीतिसे काम लिया जाना चाहिये। माकियावेली कहता है—"जो पशुबलका प्रयोग करके किसी राष्ट्रका शासन अपने

हाथमें ले लेता है उसे वे सब निष्ठुरतायें काममें लानी चाहियें जो तुरत फलदायी हों।" यह लेखक आगे चलकर लिखता है—"यदि राजा क्रूरताकी सहायतासे प्रजाको वशमें रखता है तो उसे बदनामीकी परवा न करनी चाहिये, क्योंकि जो राजा एक स्वाधीन देशको जीतता है और उसे नष्ट भ्रष्ट नहीं करता वह बड़ी भारी भूल करता है और उसे अपने नाशकी प्रतीक्षा करनी चाहिये। कारण यह है कि जब वहांके निवासी बगावत करनेको तैयार होते हैं तो वे सदा स्वाधीनता और अपने पूर्वपुरुषोंद्वारा बनाये हुए कानूनोंका नाम लेते हैं। इस विप्लवको अधिक समयका शासन वा सदय व्यवहार शान्त नहीं कर सकता।" यदि राजा देशको भली भांति न उजाड़ सके तो, उसे राय दी गयी है कि, वह चापलूसी और रियायतोंसे काम ले। "या तो प्रजाकी चापलूसी की जाय, उसपर रियायतोंकी बौछार की जाय, नहीं तो वह भली भांति तबाह कर दी जाय।" इस वाक्यपर हमें घूस और उपाधियों (टाइटलों)का स्मरण हो आता है। और सुनिये, "जो प्रदेश प्राचीन कालसे स्वाधीन रहा हो उसे अधीन रखनेका सबसे सहज तरीका यह है कि वहींके नागरिक नौकर रखे जायं।" यह वाक्य देखकर हमें बड़े बड़े ओहदोंपर मरनेवालों, दरबारों और राजभक्तोंके अभिनन्दनपत्रोंकी याद आती है। विजयको स्थायी बनानेके लिये लेखक बतलाता है—"जब एक राजा नयी रियासत जीतता है और उसे अपने राज्यमें मिला लेता है तो उसके लिये यह आवश्यक है कि प्रजाको निरस्त्र कर

दे। केवल उन्हें हथियार रखने दे जो विजयके समय उसकी तरफ आगये थे। किन्तु धीरे धीरे उन्हें भी निकम्मा बना देना चाहिये और उनको आलस्य तथा क्लीवताकी उस हालतमें डाल देना चाहिये कि कुछ समय बाद उसकी सारी शक्ति अपनी फौजके भरोसे ही खड़ी रह सके।" यह बात हमें आर्मस एक्ट (हथियार न रखनेके कानून) और अपने निहत्थे लोगोंका स्मरण कराती है। किन्तु यह सम्मति देनेपर भी कि आधी प्रजा निरस्त्र कर दी जाय और आधी उपाधि, नौकरी आदिसे अपने वशमें कर ली जाय माकियावेली कहता है कि विजयी राजाको इन दोनोंमेंसे एकको भी अपना विश्वासपात्र नहीं बनाना चाहिये। उसके शब्द पढ़िये—"बुद्धिमान और नीतिज्ञ राजाको चाहिये कि वह अपना वचन पूरा करनेकी चिन्ता न करे जबकि ऐसा करनेसे उसका अहित होता हो और जिस कारणसे वचन दिया गया था वह दूर हो गया हो।" इस विषयमें कोई गलती न हो इसलिये उक्त लेखक अधिक स्पष्ट भाषामें लिखता है—"अपने भावोंको छिपाना और सफलतापूर्वक मनमें कुछ तथा बाहर कुछ दिखाना बड़े महत्वकी बात है।" इन वाक्योंसे तोड़ी हुई सन्धियां और असंख्य बिश्वासघात आंखोंके सामने आ जाते हैं।

दुनियांकी नजरमें प्रतिष्ठित बना रहना अच्छा है किन्तु माकियावेली इस विषयपर भी राजाको सतर्क करता है—"सज्जन, दयालु, शिष्टाचारी, धार्मिक तथा निष्कपटसा बना रहना सम्मान प्राप्त करना है, किन्तु तुम्हारा मन इतना ठीक और अभ्यस्त रहना

चाहिये कि अवसर पड़नेपर उसके सोलहों आने विरुद्ध कार्य कर सको।" जो भद्रपुरुष इन बातोंको पढ़कर दुविधामें पड़ गया है वह ध्यानसे सुने—"यदि इन दोषोंके कारण उसका नाम बदनाम होता है तो उसे तनिक चिन्ता न करनी चाहिये क्योंकि ऐसा न करनेसे उसका राज्य सुरक्षित नहीं रह सकता।"

यहां तक हमने प्रसिद्ध राजनीतिक लेखक माकियावेलीके सिद्धान्त लिखे हैं। इन सिद्धान्तोंकी नीतिभ्रष्टता देखकर हमारे वे साम्राज्यवादी दंग रह जाते हैं जिन्होंने जंगली और अर्द्धसभ्य जातियोंको सभ्य बनानेका बीड़ा उठाया है। हम तो अब अपनी आंखें खोल रहे हैं और देख रहे हैं कि दोनों नीतिभ्रष्ट और दुरंगे हैं। हमें तो माकियावेलीकी पुस्तककी बातें ठीक ऐसी लगती हैं मानों किसी विवेचकने आयलैंडमें अंगरेजोंका शासन देखकर उसकी विशेषताओंका भली भांति निरीक्षण किया है और उनसे ये सिद्धान्त निकाले हैं। माकियावेलीने अपनी पुस्तकमें जो पोल खोली है उसके लिये हमें उसे धन्यवाद देना चाहिये। उसने राजाको जो सम्मति दी है वह उसके युगके डाकुओंकी कलई खोल देती है और हमें अपने समयके साम्राज्यकी बुराइयां दिखानेमें सहायता पहुंचाती है।

(३)

इस बातसे हमें शिक्षा लेनी चाहिये कि ४०० वर्ष पहले इटलीमें लिखा हुआ यह ग्रन्थ आज भी पूरी तरहसे लागू है।

साम्राज्यवादियोंका यह वास्तविक चित्र है, इसलिये हमें साम्राज्यसे कोई वास्ता न रखना चाहिये। यह कहा जायगा कि अब आगे हमपर पुराने हथकण्डे काममें न लाये जायंगे। साम्राज्यवादियोंको हम बता देना चाहते हैं कि वे इस नयी मित्रतासे बल पाकर दूसरे देशोंपर यह चालबाजियां चलेंगे। यह भी हमारे नामपर कलंक है। हम किसी देशको अपने अधीन नहीं रखना चाहते। हम उन्हें साम्राज्यका विरोध करनेके लिये उत्साहित करेंगे। यदि उसके लिये हमें भविष्यमें लड़ना पड़ेगा तो यह स्वयं यथेष्ट प्रोत्साहन है।

हमारा दमन नीचताके साथ होनेसे दूना कड़ुवा बन गया है। जबरदस्तके अत्याचारसे हमारा रोष प्रचण्ड हो उठता है, किन्तु नीचका अत्याचार असह्य हो जाता है। क्रोमवेलका अत्याचार आसानीसे भूला जा सकता है किन्तु मेकालेकी पाखण्डपूर्ण बातें नहीं। जब हम मेकालेकी कुछ पंक्तियां पढ़ते हैं तो बदनमें आगसी लग जाती है। और यह आग तभी बुझेगी जब हम विरोधको बिलकुल मिटा देंगे। मिल्टनपर लेख लिखता हुआ मेकाले इङ्गलैण्डकी राज्यक्रान्तिपर बड़ी २ बातें छांट गया है और उसकी विशेषता बतलाता है कि "साम्राज्यका एक भाग ऐसी दुःखदायी स्थितिमें था कि उस समय हमें सुखी बनानेके लिये उसकी महान् यन्त्रणा आवश्यक थी और हमें अपनेको स्वाधीन बनानेके लिये उसे गुलाम बनाना आवश्यक था।" संसारमें शायद ही किसीने ऐसी बेशर्म बात कही हो।

भूलियेगा मत कि यह सिद्धान्त साम्राज्यके "बड़े साझीदार" का है। यदि मेकाले हमारा गला घोंटनेके लिये ईश्वरसे प्रार्थना करता और भगवानको धन्यवाद देते हुए क्रोमवेलके समान हमारा गला घोंट देता तो बादकी पीढ़ियां आग बबूला हो उठतीं, किन्तु मेकालेके भाव जहरमें कडुवापन है। लीजिये, और सुनिये! मेकाले माकियावेलीकी पुस्तक पढ़कर अवाक् रह गया था। माकियावेलीके विषयमें आप लिखते हैं "जिस पुरुषको इटलीके इतिहास और साहित्यसे परिचय न हो उसके लिये यह असम्भव बात है कि उस पुस्तकको जिसने माकियावेलीके नामपर कलंकका टीका लगाया है बिना घोर घृणा और आश्चर्यके पढ़ सके। दुष्टताका बिलकुल नग्न लेकिन निर्लज्ज चित्र है। ऐसी शांत, विचारपूर्ण और वैज्ञानिक निष्ठुर क्रूरताका वर्णन नीचसे नीच प्रकृतिका पुरुष भी नहीं कर सकता। मालूम पड़ता है कि यह किसी नर-पिशाचने लिखा है।" किन्तु यह प्रबन्ध साम्राज्यवादपर महत्वपूर्ण उज्ज्वल प्रकाश डालता है। मेकाले माकियावेलीके विषयमें लिखता है कि "उसका एकमात्र दोष यह था कि उसने उस समयके कुछ प्रचलित सिद्धान्तोंको स्वीकार कर उन्हें ज्वलन्त और अन्य लेखकोंसे अधिक ओजस्वी भाषामें लिखा।"

यहां सत्य बात स्वयं प्रकट होगयी, यद्यपि मेकालेका यह इरादा नहीं था। क्या मजेकी बात है! माकियावेलीका अपराध यह है कि उसने ज्वलन्त और ओजस्वी भाषामें उनका

निरूपण किया है। यह कोई दोष नहीं है कि उसने इन बुरे विचारोंको अपने हृदयमें स्थान दिया। बात यह है कि दिलमें चाहे कुछ सोचिये मगर ढोंग दूसरा रचिये।

मेकालेकी घोर घृणा और आश्चर्य देखिये और साथ साथ उसी प्रबन्धकी यह बात पढ़िये—"जिस पुरुषने संसारका अनुभव प्रात किया है वह जानता है कि साधारण सिद्धान्त बिल्कुल निकम्मी चीज है। यदि वह नीतिमूलक और बिल्कुल सत्य है तो अनाथ बालकोंको सिखलाने योग्य बात है, और कुछ नहीं।" पाठक समझे! नीतिमूलक और सत्य बातको अनाथालयमें शरण मिली। कई लोग कहेंगे, यह व्यंग है। हमें इसपर विश्वास नहीं। किन्तु यदि मान भी लिया जाय तो ऐसे व्यंगमें हृदय उतना ही स्पष्ट प्रतीत होता है जितना गम्भीर प्रलापके कई खंडके ग्रन्थको पढ़कर नहीं हो सकता। हमें तो यह बात अंगरेज शासनकी पहचान करानेवाली नीतिसी मालूम पड़ती है। अंगरेज जातिको इस बातका अभ्यास पड़ गया है, वह यह नीति काममें लाती है और इसके साथ उसका सम्बन्ध जुड़ा हुआ है। किन्तु आयरिश जातिको इस नीतिसे पाला नहीं पड़ा है, न पड़ता है और न पड़ेगा। हम इससे कदापि सम्बन्ध नहीं जोड़ सकते। पुराने अत्याचार ज्यों ज्यों अधिकाधिक पुराने होते जाते हैं हमारा क्रोध शान्त होता जाता है; किन्तु पुरानी कपटी बातोंको फिर २ दोहराना, इतना ही नहीं, किन्तु यह चेष्टा करना कि उनकी सत्यता हम स्वीकार करें, हमारी सारी देहमें

आग भड़का देता है। यह आग इतनी जबरदस्त होती जाती है कि अंगरेज जातिके साथ सम्बन्ध टूटनेपर ही यह भी बुझेगी।

(४)

मेकाले तो आयलैंडवालोंको धोखेमें नहीं डाल सकता, किन्तु हमें भय है मिल और बर्नार्डशा जैसे लेखकोंसे। बहुधा ऐसा होता है कि जब कभी हम किसी निष्कपटी आदमीकी बातोंसे घपलेमें पड़ जाते हैं और हमें उसकी प्रकृतिका परिचय नहीं मिलता तो हमारा विवेक हमें ढोंगसे बचा देता है और हृदयमें उसके प्रति घृणा पैदा हो जाती है। जब आक्रमणकारी देश आक्रमणका मौका खोजता है तो वह पहले कोई बहाना ढूंढता है। हमको खतरा इसमें है कि लोग आक्रमणकारी देशको बहानेका मौका दे देते हैं। मिलने जो यह वाक्य लिखा है वही काफी बहाना है। "स्वेच्छाचारी शासन असभ्य समाजोंके लिये उचित और न्यायसंगत है। हां, उद्देश्य यह होना चाहिये कि उनको उन्नत किया जाय।"

शासाहब अपनी एक पुस्तककी भूमिकामें लिखते हैं—"मैं तिब्बत निवासियोंको मशीनके भीतर दबाकर पीस डालूं यदि वे मुझे सर्वजातीय स्वतंत्र देनेसे इन्कार करें।" अपने राज्यके भीतर किसी स्वतंत्रको बलपूर्वक प्रचलित करना तो हमारे अधिकारमें हुआ, किन्तु "बर्बर" कहकर दूसरे लोगोंके ऊपर इसका प्रयोग करना सरासर दूसरी बात है।

बरनार्डशा मिश्रमें जो अत्याचार हुआ था उसकी पोल जीती जागती और चुभनेवाली भाषामें भले ही खोले; किन्तु जिन्हें दूसरे देशोंपर हमला करना है उनका 'तिब्बतको पीस डालने' वाले वाक्यांशसे काम सध जाता है। ऐसा स्वाधीनताका पक्षपाती और प्रसिद्ध लेखक जब लिखता है—"मैं मोरक्को, ट्रिपोली, साइबीरिया और अफ्रिकाके लोगोंको "सभ्य" बनानेके लिये फ्रांस, इटली, रूस, जर्मनी और इंगलैण्डके साथ सहयोग करनेको तैयार हूं" तो मिश्रके अत्याचारके ऊपर उसने जो गाली बरसायी है वह व्यर्थ हो जाती है। अत्याचार हो चुकनेपर वह भले ही रो लें किन्तु बिना क्रूरता किये वे लोग "सभ्य" नहीं बन सकते।

बरनार्डशाके इन वाक्योंको पढ़कर और साथ ही साम्राज्यके विरुद्ध उसके जो सच्चे उद्गार हैं उन्हें देखकर साम्राज्यके हिमायती मन ही मन हंसते होंगे। साम्राज्यको बुरा बतलाते हुए शा लिखते हैं—"यह नाम ऐसा है कि जिस आदमीके हृदयमें अपनी मातृभूमिके प्रति पवित्र भाव है और जो पुरुष दूसरोंके हृदयोंमें इन भावोंको पवित्र और अविच्छेद्य समझता है इस नामको सुनकर अत्यन्त घृणाके साथ इसपर लानत भेजेगा।" अपनी "प्रतिनिधि शासन" नामक पुस्तकमें जब मिल लिखता है कि "अंगरेज एक ऐसी जाति है जो स्वतंत्रताको समझती है। भले ही इसने भूतकालमें भूले की हों, किन्तु अब इस जातिने विदेशियोंके साथ व्यवहार करनेमें अन्य जातियोंसे बहुत अधिक विवेक प्राप्त

कर लिया है और नैतिक उन्नति की है।" यह शब्द सुनकर अंगरेज भाई "वर्वर" जातिको सभ्य बनानेके लिये आगे बढ़ते हैं, किन्तु उनके भाव मेकालेकेसे रहते हैं। यह सब बातें पढ़ सुनकर हमें स्वभावतः क्रोध होआता है; साथ ही आश्चर्य होता है और हंसी भी आती है।

साम्राज्यके पक्षमें जो कुछ लिखा गया है उसे पढ़कर क्रोध आता है, घृणा पैदा होती है; किन्तु स्वाधीनताके लेखक मिलके ग्रन्थ रत्नोंमेंसे यह वाक्य देखकर जी खोलकर हंसे बिना नहीं रहा जाता। मिल अपनी स्वाभाविक गम्भीरतासे कहते हैं—"दूसरे देशोंको हड़पना ऐसी अभिलाषा है जो जातीय दृष्टिसे देखनेपर अंगरेजोंके लिये अस्वाभाविक है।" जब निष्कपटहृदय अंगरेज ऐसी बात लिख सकता है तो हम सबको होश हवाश दुरुस्त रखना चाहिये; और जब आजकलकी तरह साम्राज्यके पक्षमें अहितकर, बेढंगी बातें चारों ओरसे बकी जा रही हैं हमें सोचना चाहिये, इन सब बातोंपर ध्यानसे विचार करना चाहिये और चौकन्ना रहना चाहिये।

(५)

अब इस परिच्छेदके अन्तमें हम होमरूल-दलवालोंपर अपनी सम्मति लिखेंगे। यह भविष्यवाणी सुनकर हंसी आती है कि होमरूल मिलनेपर आयर्लैंण्ड साम्राज्यका भक्त रहेगा। हमें आश्चर्य है कि आयरिश लोग भी ऐसे बेवकूफ होते हैं; यद्यपि

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि अंगरेज लोग ऐसे सीधे सादे होते हैं कि वे ऐसी बातोंपर झट विश्वास कर लेते हैं। इतिहास और अनुभव इन बातोंके विरुद्ध जाते हैं। सम्भवतः होमरूल दलके नेता समझते हैं कि दस बीस सालमें ही उनका काम पूरा होजायगा और इसी अवधिके भीतर होमरूल प्राप्त होजायगा। ये लोग शायद इसी कालके भीतरकी बात कहते हैं।

किन्तु इस अवधिके बाद हमारी सन्तान शक्तिशाली और लड़ाकी बन जायगी और यदि हम उस समय तक न सम्हले तो वह हमारे कामके लिये तैयार होजायगी। वर्तमान समयके लिये मैं तो यही कहूंगा कि बूढ़े कार्यकर्ताओंकी सीमा हमारे लिये बस नहीं है। जो कोई आगे बढ़नेसे हिचकता है उसे हमारा अर्वाचीन और प्राचीन इतिहास देखना चाहिये। दबाने और उजाड़नेकी पुरानी चेष्टा विफल होनेपर हमें पुचकारनेका नया प्रयत्न आरम्भ हुआ। पहले छोटी छोटी रियायतें बख्शी गयीं, फिर बड़ी। पहले यह समझा गया था कि कठोर शासनसे होमरूल दबोचा जायगा, फिर दयासे इसके प्राण लेनेकी ठहरी और हमें स्थानीय स्वराज्य दिया गया। स्थानीय स्वराज्यसे पूरा स्वराज्य प्राप्त करना अनिवार्य होगया और अब जबकि होमरूल प्रायः प्राप्त होगया है तो हम आगे बढ़ रहे हैं।

———

दशम परिच्छेद

सशस्त्र प्रतिरोध।

(१)

स्वाधीनतापर विचार करनेसे अवश्य ही इसके लिये हथियार उठानेका प्रश्न उठता है। यदि जातिके स्वत्वोंकी सत्यता और न्याय्यता प्रमाणित करना यथेष्ट होता तो संसारमें अत्याचार बहुत कम रह जाता, किन्तु अत्याचारी सत्ता सत्यके प्रति अंधी हो जाती है, दलीलोंसे इसका दिल नहीं पसीजता, इसका सामना पशुबलसे करना पड़ता है। इसलिये हमें विद्रोहका नैतिक विचार करना आवश्यक है।

(२)

चिड़चिड़े, नुक्ताचीन और नीम हकीम खतरे जानका मसला चरितार्थ करनेवाले सज्जन सर्वत्र मिलते हैं। ऐसे आदमी आपत्ति करेंगे—"आयलैंण्डमें हथियार लेकर लड़नेका सवाल कैसे उठ सकता है? यदि कोई इस प्रकार युद्ध करना चाहे तो उसे मालूम होगा कि यह बात असम्भव है; और न कोई लड़ना ही चाहता है। यदि आपको आजमायश करनी हो तो खुद जाकर देख लीजिये।" ऐसी रूखी समालोचना बिल्कुल व्याव-

हारिक नहीं है। ऐसी बातोंकी तो परवा भी न की जानी चाहिये, किन्तु इससे मालूम होता है कि बहुतसे लोग ऐसे हैं जो तुरत लड़कर हमारी लम्बी लड़ाईको तय कर देना चाहते हैं, पर वे समझते हैं कि यह सम्भव नहीं है। व्यावहारिक बातोंका विचार करनेके लिये हमें कुछ बातें ध्यानमें रखनी चाहियें। यद्यपि आयर्लैंड हारनेपर भी कई बार लड़ा है और फिर लड़नेको तैयार हो सकता है, किन्तु इस समय नीतिका सहारा लेकर प्रश्न उठाया जाता है कि निरस्त्र आयर्लैण्ड दुर्जय इङ्गलैण्डका सामना किस प्रकार करेगा? इङ्गलैण्डके लिये तो यह सबसे आसान लड़ाई होगी। हम जिस बातपर जोर देना चाहते हैं वह यह है—निष्क्रिय रहकर और बहावकी ओर बहते जानेसे हम उस स्थितिको जा रहे हैं जहां इङ्गलैंड लपेटमें आ ही जायगा। हमें या तो उसके लिये लड़ना पड़ेगा या उससे साफ अलग हो जाना पड़ेगा। उसके साथ सम्बन्ध रहनेसे हम किसी प्रकार निरपेक्ष होकर नहीं रह सकते। इसलिये सैनिक नीति बिलकुल व्यावहारिक है। इसके अतिरिक्त हमारे लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। इङ्गलैण्डके संकटमें उसकी सहायता करना उतना ही हानिकर है जितना उससे सम्बन्ध तोड़नेका दुस्साहसपूर्ण कार्य। सबसे बड़ी बात तो यह है कि स्थिति आश्चर्यजनक रूपसे बदल गयी है। इङ्गलैण्ड भीतर और बाहर दोनों तरफसे संकटमें है। वहां हर तरहके मजूरोंके झगड़े मचे हुए हैं जिनका क्या परिणाम होगा कुछ ठिकाना नहीं। एक दूसरा झगड़ा इङ्ग-

लैण्डमें ऐसा मचा हुआ है जिसके कारण इंगलैण्डके प्रधान मन्त्री रूसके जारके समान सुरक्षित होकर बाहर निकलते हैं।* इङ्गलैण्डमें इस समय जो अशान्ति फैली हुई है इससे वहांके अधिकारियोंकी बुद्धि हरण होनेकी सम्भावना है। इस मुसीबतमें अकेला इङ्गलैण्ड ही नहीं है, सब महाशक्तियोंकी यही हालत है। कमसे कम यह तो बहुत सम्भव है कि घरेलू लड़ाईसे यह उसी प्रकार अवाक् हो सकते हैं जिस प्रकार बाहरी शक्तिसे लड़ाई करनेकी आवश्यकता पड़नेपर। इन बातोंका साफ शब्दोंमें निचोड़ यह है—हम इस बेचैनीसे दूर जाकर शान्तिसे बैठे रह नहीं सकते। हमें खड़ा होना पड़ेगा और अपने देशके लिये लड़ना पड़ेगा, नहीं तो दूसरोंकी सहायता करनी पड़ेगी। हमें तैयार हो जाना चाहिये और अधिकारोंके लिये डट जाना चाहिये। जो हो, यह बात कोई अस्वीकार नहीं कर सकता कि हमारे वर्तमान आन्दोलनके समय विद्रोहकी नैतिक स्थितिपर विचार करना व्यावहारिक तो अवश्य है।

(३)

हमें उस अल्पमतपर विश्वास है जो हमारी इन बातोंमें बुद्धिमत्ता देखता है। हमारा उद्देश्य यह होना चाहिये कि इस तर्कसे जनतापर कुछ प्रभाव पड़े। हमें धीर और दृढ़निश्चयी बनना चाहिये। हम शीघ्र धीरज खो देते हैं और जल्दबाजीमें

* यह स्त्रियोंके मताधिकारके आन्दोलनके विषयमें है। आजकल यह आन्दोलन धीमा पड़ गया है किन्तु इसका स्थान कम्युनिज़्मने ग्रहण कर लिया है—अनुवादक।

गाली गलौज करके उन लोगोंको अपने दलसे अलग कर देते हैं जो अभीतक कुछ निश्चय नहीं कर सके हैं और हमारे पक्षमें आ सकते हैं। बहुत सम्भव है किसी खटके या किसी निर्बलता-के कारण यह भाई पिछड़ रहे हों और सत्यकी स्फूर्तिदायक समीर और स्वाभाविक संयमसे हमारे सच्चे, श्रेष्ठ सैनिक बन जायं। अमेरिकन गृहयुद्धके समय एमर्सनने युद्धमें हत सैनिकोंका स्मारक खोलते समय ऐसे वीरोंका हृदयग्राही उल्लेख किया था। उसने एक नवयुवकका जिक्र किया जिसे वह जानता था। इस नव-युवकको आशङ्का थी कि मैं डरपोक हूं। इसलिये उसने संकटमें रहनेका अभ्यास डाला। वह जबरदस्ती संकटके स्थानोंमें जाया करता था और उसका सामना करता था। एमर्सनने कहा है—"यह वीर न्यूयार्कमें भर्ती हुआ, युद्धक्षेत्रको गया और जाते ही खेत रह गया।" उसने इस घटनापर जो टिप्पणी की है वह हमारे लिये महत्वपूर्ण है। "इस भावपूर्ण हृदयसे ही बड़े २ वीर बने हैं।" हम देशभाइयोंको शरीरसे हृष्ट पुष्ट बनानेके लिये जो कष्ट उठा रहे हैं वही कष्ट हमें उनका चित्त दृढ़ बनानेके लिये भी उठाना चाहिये। हम शारीरिक शिक्षा, कवायद आदिका बड़ा ध्यान रखते हैं। यह उचित है, क्योंकि इससे हुलड़शाही सुसंगठित सेनाके रूपमें परिणत हो जाती है और स्वावलम्बन-हीनता शक्तिमें बदल जाती है। हमें उन मनुष्योंके हृदयोंसे बड़ी सावधानीके साथ काम लेना चाहिये जिनकी अभी परीक्षा नहीं हुई है। यह दुर्बल हों, चिन्तित हों और विवेकके विषयमें

बारीक छानबीन करनेवाले हों, किन्तु एमर्सनके नवयुवकके समान वे लोग युद्धक्षेत्रकी सबसे आगे बढ़ी हुई पंक्तिमें पहुंच सकते हैं, किन्तु उनके साथ तर्क करनेमें हमें धीरजसे काम लेना चाहिये। उन्हें अपनी बात समझानेमें हमें अपना दिमाग ठण्डा रखना चाहिये और पूरी सहानुभूतिके साथ छोटी छोटी बातोंपर भी विचार करना चाहिये। इस बातकी आवश्यकता निस्संदेह स्पष्ट है कि हम शारीरिक बातोंपर जिस सावधानीसे विचार करते हैं मानसिक बातोंपर उससे अधिक सावधानी चाहिये।

(४)

सबसे पहले विद्रोह करनेका विरोध धार्मिक दृष्टिसे किया जायगा। इस तर्कमें सब शंकाएं और दुविधाएं आ जुटेंगी और यही टेढ़ी खीर भी है। प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्रको अधिकार है कि वह किसी दूसरेसे लड़े; किन्तु न्यायसंगत कारण होनेपर भी विद्रोह करनेका अधिकार किसी पराधीन जातिको नहीं मिला है। हम आयर्लैण्डवालोंको भी यह अधिकार नहीं मिला है और सदा यह अस्वीकार किया जाता है। इसलिये हमें अपने विरोधियोंको शब्द प्रतिशब्द उत्तर देना है और क्रमशः उस स्थानपर पहुंचा देना है जहां वे हमारे सिद्धान्तोंको मानने लग जायंगे। किन्तु कोई यह न समझे कि स्वाधीनता शास्त्रार्थका विषय है। यह उससे अधिक है। युद्धके विषयमें हम बहुधा अपनी प्रतिज्ञाओंका उल्लेख नहीं करेंगे किन्तु अपने निश्चय बता-

देंगे। इतना हम अवश्य करेंगे कि जहांतक हो सकेगा न्याय-शास्त्रके अनुसार अपनी दलीलोंके लिये पुष्ट प्रमाण देंगे। तोभी सदा ध्यानमें रखियेगा कि स्वाधीनता प्राप्त करनेका हमारा कारण वाद्विवादसे वहुत ऊपर उठा हुआ है। कोरा तर्कशास्त्र ज्योतिकी उस रहस्यमय चिनगारीको धारण नहीं करता जो हमारा जीवन है। इसलिये हम अपने शत्रुओंसे वहस करते समय उतनी ही अच्छी, वल्कि उससे भी अच्छी, दलीलें देनेका वचन देते हैं जितनी अच्छी उनकी युक्तियां हैं। किन्तु हम अपने सिद्धान्तकी वाजी इन दलीलोंसे अधिक महत्व रखनेवाली वातोंपर लगाते हैं। इस आधारपर मैं युद्धकी न्याय्यतापर सामान्य वादविवाद नहीं करूंगा किन्तु किसी शासनके विरुद्ध विद्रोह करनेपर विशेष जोर दूंगा। इस विषयपर एक वड़ा ग्रंथ लिखा जा सकता है, किन्तु दिखाऊ दार्शनिक उलझनोंको छोड़कर हम उसी वातपर विचार करेंगे जिससे हमारा साक्षात् सम्बन्ध है। × × × ×

यह वात साफ है कि हमारी स्थिति वड़ी नाज़ुक और टेढ़ी है। इस विषयपर इन प्रारम्भिक शब्दोंको लिखते समय हमें एक वातपर विशेष जोर देना है। हमें किसी कठिनाईसे इसलिये नहीं भागना चाहिये कि वह नाज़ुक और खतरनाक है और न हमें उससे समझौता ही करना चाहिये। रणभूमिपर शारीरिक संग्राममें कूटनीति और रणनीतिका प्रयोग धर्मसंगत माना गया है पुरुषोंको आगे वढ़ना और पीछे हटना ठीक समझा जाता

है ; सम्मुख आक्रमण करना और दांव-घातसे काम लेना नीति-सम्मत समझा जाता है। किन्तु जहां सिद्धांतकी बात आती है वहां कूटनीतिका कोई काम नहीं; वहां तो सीधे रास्तेका अनुसरण करना पड़ता है और यह रास्ता ढूंढ़कर निकाला जाता है तथा अंत तक अटल रहकर निभाया जाता है।

एकादश परिच्छेद



कानूनका सच्चा अर्थ

(१)

जब हम अवैधसत्ताका विरोध करते हैं तो हम वैधसत्ता-को क्यों मानते हैं और उसका क्या अर्थ समझते हैं यह बतला-कर हमें अपनी जड़ मजबूत कर लेनी चाहिये। इसलिये हमें कानून शब्दका अर्थ भली भांति समझना चाहिये। कानूनकी परिभाषा यों की जा सकती है कि कानून शुद्ध बुद्धिकी वह आज्ञा है जिसका उद्देश्य लोकहित है और जो शासक-शक्तिद्वारा प्रचा-रित की जाती है। इस सम्बन्धमे हम प्रामाणिक लेखकोंके कुछ वाक्य उद्धृत करेंगे। "आदमीके बनाये हुए कानूनपर कानूनकी छाप तभीतक रहती है जबतक कि वह शुद्ध बुद्धिके अनुसार हो। इस दृष्टिसे इसकी उत्पत्ति स्पष्टतया ईश्वरी नियमसे है।" [एक्वीनास एथिक्स प्रथम खण्ड पृ० २७६] सेण्ट टामसने ऐसे कानूनोंके विषयमें लिखते हुए जिनका उद्देश्य, प्रचार-कर्ता अथवा स्वरूप अधार्मिक है लिखा है—"ऐसी कार्रवाइयां कानून नहीं कही जा सकतीं, यह तो अत्याचारकी कृति है। क्योंकि सेण्ट आगस्टीनने लिखा है कि 'जो कानून धार्मिक नहीं है वह कानून

ही नहीं है'। [एक्वीनास एथिक्स प्रथम खण्ड पृ० २६२] वालमेजने लिखा है कि "किसी भी कानूनमें मुख्य बात यह रहनी चाहिये कि वह शुद्ध बुद्धिसंगत हो, वह शुद्ध बुद्धिका ही प्रकाश हो अर्थात् वह समाजमें शुद्ध बुद्धिके प्रयोगका साधन हो।" (यूरोपियन सिविलिजेशन अ० ५३) इसी अध्यायमें वालमेजने सेण्ट टामसकी बातको पुष्ट करते हुए लिखा है कि "राज्य राजाके लिये नहीं होता बल्कि राजा राज्यके लिये होता है।" और उसने इसका स्वाभाविक परिणाम निकाला है कि "सब सरकारें समाजके हितके लिये स्थापित की गयी हैं। चाहे किसी तरहकी सरकार हो, जो उसका शासन चलाते हैं उन्हें इस बातको सदा अपना पथप्रदर्शक समझना चाहिये।" 'प्रतिनिधि-शासन' नामक अपनी पुस्तकमें मिलने लिखा है कि सरकारका एकमात्र उद्देश्य प्रजाका हित करना है। ईसा मसीहके पैदा होनेसे पहले प्लेटो भी ऐसी ही बात कह गया है। वह एक आदर्श नगर स्थापित करना चाहता था जिसमें सारी प्रजा अत्यन्त सुखी रहे। (रिपब्लिक खण्ड ४) केल्डरवुडने लिखा है कि "नीतिपूर्ण शासन तभी न्यायपूर्वक स्थापित किया जा सकता है जब मनुष्यके सहज कर्तव्य और अधिकार अविच्छेद्य समझे जायं।" (अर्वाचीन दर्शन-शास्त्र अध्याय ४)।*

---

* हमारे यहां भी ऐसे वाक्य स्थान २ पर मिलते हैं, यथा :—

प्रजानां विनयाधानात् रक्षणाद् भरणादपि।

इस विषयपर सभी मतके और सभी समयके लोगोंकी एक राय रही है। जबतक यह सब बातें हमारे देशमें पूरी पूरी नहीं हो जातीं हम युद्धकी दशामें हैं। जब स्वाधीन और वास्तविक आयरिश सरकार स्थापित हो जायगी तो हम उसका पूरा और हार्दिक अभिनन्दन करेंगे। उस समय कानूनको भी जनता सहर्ष मानेगी। हम इस समय राजसत्ताका खण्डन करनेके लिये यह सब नहीं लिख रहे हैं, किन्तु हम यह बतलाना चाहते हैं कि इस समय जो लोग हमारे ऊपर शासन कर रहे हैं वे अनधिकारी हैं और जो झंडा हमारे देशमें फहरा रहा है वह हमारा नहीं है।

(२)

विद्यमान शासकोंका विरोध करनेके विषयमें वालमेज लिखता है कि "हमें उन सब दलीलोंको चकनाचूर कर देना

चाहिये जिन्हें जिस समय जो सरकार स्थापित हो उसीके अन्ध उपासक हमारे विरुद्ध पेश करते हैं।" (यूरोपियन सिविलिजे-शन अ० ५५) इस प्रसिद्ध स्पेनिश धर्मज्ञसे अधिक स्पष्ट बात हम नहीं लिख सकते। इन जीहुजूरोंकी दलीलोंके जवाबमें हम उसीका निम्नलिखित लम्बा और ओजस्वी वाक्य उद्धृत करते हैं–"न्यायविरुद्ध शासन कोई शासन नहीं है। जहां शक्तिके भाव होते हैं वहां अधिकारके भाव भी होने चाहियें। यदि ऐसा न होगा तो शारीरिक शक्ति पशुबलमें परिणत हो जायगी।" उसने फिर लिखा है कि "जिस शासकने सिर्फ तलवारके ही जोरसे किसी जातिको अपने अधीन कर रखा है उसे अपने इस कार्यसे यह अधिकार नहीं मिल जाता कि उस जातिपर उसका ही कब्जा रहे। वह सरकार, जिसने घोर अन्यायसे नागरिकोंकी सब श्रेणियोंको लूट खसोट लिया है, उनसे अनुचित कर वसूल किये हैं, न्याय्य अधिकार छीन लिये हैं, अपने कामोंको केवल इसी कारणसे न्यायपूर्ण नहीं बतला सकती कि उसे इन अत्याचारों-को कार्यमें परिणत करनेकी यथेष्ट शक्ति है।" इस पुस्तकमें ऐसी ही स्पष्ट और निश्चित बातें बहुतसी हैं। हमारे विरोधी लोग जो ऊंचे ऊंचे अधिकारोंपर हैं, इस विषयमें जो बेहूदी बातें बकते हैं वह हम सब जानते ही हैं। बालमेजने इसी पुस्तक और अध्यायमें ऐसे अधिकारीका एक बड़ा अच्छा उदाहरण उसकी दलीलोंके उत्तरके साथ दिया है —"पालमायराके धर्मा-चार्य डोन फिलिक्स आमाटने अपने 'लड़ाका ईसाई सम्प्रदाय'

नामक ग्रन्थमें लिखा है कि ईसा मसीहने अपने सरल और भाव-व्यञ्जक शब्दोंमें कहा है कि राजाका हक राजाको दो। इससे उसने (ईसाने) भली भांति सिद्ध कर दिया है कि शासकका केवलमात्र अस्तित्व ही यथेष्ट है कि प्रजा जबरदस्ती उसकी आज्ञा माननेको बाध्य की जाय, यह पुस्तक भी रोममें जब्त कर ली गयी थी।" वालमेजके यह अन्तिम शब्द ही इसकी खुलासा टिप्पणी हैं। और वह आगे लिखता है कि "इस जब्तीका चाहे जो कारण हो, हम निस्संकोच कह सकते हैं कि ऐसे सिद्धान्तोंका प्रचार करनेवाली पुस्तकके अनुसार प्रत्येक मनुष्य जो अपने अधिकारोंकी रक्षा करना चाहता है पोपकी इस आज्ञासे सहमत होगा।" यह तो हुई पशुबलपर स्थापित सरकारके विषयकी बातें। यह बलात्कारसे दूसरेके अधिकार छीनना है। इसकी जड़ जम जानेसे यह न्यायसंगत नहीं हो जाती। जब इसकी आज्ञाओंका उल्लंघन नहीं किया जाता तो कोई यह न समझे कि हम सिद्धान्तरूपसे उन्हें मानते हैं—हम तो दिखलानेके लिये भी उन आज्ञाओंको स्वीकार नहीं कर सकते, किन्तु यह समझना चाहिये कि अभी समय नहीं आया है कि इनका विरोध किया जाय। यह तो लड़ाईकी एक चाल है।

(३)

हम यह मानते हैं कि आयर्लैण्डमें अङ्गरेजोंका राज्य बलात्कारसे दूसरोंके स्वत्व छीनकर स्थापित किया गया है। अतः

हम उसकी सत्ता स्वीकार नहीं करते। किन्तु यदि कोई यह युक्ति उपस्थित करे कि बलात्कारसे स्थापित की हुई सत्ता यदि धीरे धीरे प्रजाद्वारा स्वीकृत हो जाती है तो वह एक प्रकारसे न्यायपूर्ण समझी जाती है। इसका मुंह-तोड़ उत्तर हमारे पास है। आयर्लैंडके विषयमें तो हम इस धारणाको निर्मूल बताते हैं। हमारा इस बातका साक्षी आयर्लैंडका इतिहास है जो यह बताता है कि पशुबलपर स्थापित ब्रिटिश अधिकारके सामने हमने कभी सर नहीं झुकाया। किन्तु जो हमारी इस निरी अस्वीकृतिको स्वीकार नहीं करते उनसे हम कह सकते हैं कि वह राजसत्ता जो आरम्भमें न्यायपर स्थापित की गयी थी, जब राष्ट्रका नाश करनेके लिये अपनी शक्तिका दुरुपयोग करती है तो उसका विरोध किया जाना चाहिये। हम अब भी यह बात मान रहे हैं कि अङ्गरेज सरकार प्रजामतके विरुद्ध पशुबलपर स्थापित है, किन्तु हम इससे भी बढ़ी चढ़ी हुई अन्यायकी बातें सिद्ध करके सब आपत्तियोंका निराकरण कर सकते हैं। इस विषयपर डाक्टर मरेने भली भांति विचार किया है। वह लिखता है-"सुप्रतिष्ठित और न्यायसंगत शासन जब अपनी शक्तिका दुरुपयोग करता है तो उसका विरोध किया जाना चाहिये या नहीं यह प्रश्न उठता है। हमारे धर्माचार्योंका बहुमत तो यह है कि ऐसे अवसरपर पशुबलके ही सहारेसे सामना करना धर्म-संगत है और यदि आवश्यकता पड़े तो यह भी उचित है कि स्वेच्छाचारी सम्राट् या राजाओंको सिंहासनसे उतार दिया

जाय।* किन्तु ऐसी स्थिति तब आती है जब अन्याय चरम सीमाको पहुंच जाता है। इस स्थितिके लिये निम्नलिखित बातें उपस्थित रहनी चाहियें:—

१—अत्याचारकी मात्रा अतितक पहुंच जानी चाहिये अर्थात् जब वह असह्य हो जाय।

२—अत्याचार खुल्लमखुल्ला हो; कमसे कम उनकी आंखोंमें जो सज्जन हों और जिनके विचार सच्चे हों।

३—अत्याचारीद्वारा किये हुए पाप उनसे बड़े हों जो उसका विरोध करने और उसे सिंहासनच्युत करनेसे पैदा होंगे।

४—जब अत्याचारसे छूटनेका इस चरम उपायकी शरण लेनेके अतिरिक्त और कोई मार्ग न रहे।

५—जब धर्मकी दृष्टिसे विजयका निश्चय हो।

६—यह क्रान्ति ऐसी होनी चाहिये कि सारी प्रजा मिलकर इसमें भाग ले या मदद दे। यदि एक छोटा दल जनताके समूहका साथ देना अस्वीकार करे तो इससे विद्रोह धर्मविरुद्ध नहीं हो जाता।

('धार्मिक निबन्धमाला'; रिकाबीकृत 'नीति दर्शन'का ८ वां परिच्छेद भी पढ़ने योग्य है।)

इनमेंसे कुछ बातें ठाकुर नरेने बड़े विस्तारके साथ लिखी हैं। मैंने उनका सारांश दे दिया है। साधारणसे साधारण

आदमी भी आसानीके साथ देख सकता है कि यह बातें आय-लैंण्डपर किस प्रकार पूरी पूरी घटती हैं। मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है कि यदि हमारे नेताओंसे कहा जाता कि क्रान्तिके लिये अपनी शर्तें बतलाइये तो वे इससे और भी अधिक कड़े नियम रखते। सच तो यह है कि उनके विषयमें यह कहा जा सकता है कि वे धर्मकी दृष्टिसे निश्चित विजयसे भी कुछ अधिक चाहते हैं। वे सब प्रकारसे पूर्ण निश्चय चाहते हैं। लड़ाईमें ऐसे पक्के निश्चयकी आशा कभी नहीं की जा सकती।

(४)

जब कोई राजसत्ता अपने अन्यायके कारण मिट जाती है तो हमें सत्य और न्यायके आधारपर नयी सरकार स्थापित करनेके लिये नागरिक सत्ताके मूलमें जाना चाहिये। अब यह बात कोई नहीं मानता है कि राजामें ईश्वरका अंश है, किन्तु इस विषयपर पुराने जमानेमें जो वादविवाद हुआ उससे शासनके सम्बन्धमें कुछ नयी बातें मालूम होती हैं। राजाकी शक्ति साक्षात् ईश्वरसे प्राप्त होती है इस विषयपर लिखते हुए "स्वारेजने बड़ी वीरताके साथ इस बातका विरोध किया कि स्वतः राजाको जन्मसे ही शासन करनेका अधिकार प्राप्त है। प्रजाकी सम्मतिसे ही सब प्रकारकी राजसत्ता उत्पन्न होती है। इसी तरहसे मेलंकथानके सर्वशक्तिसम्पन्न-राजसत्ताके सिद्धान्तका विरोध करते

हुए स्वारेजने परिणाम निकाला है कि जनताको ऐसे राजाको गद्दीसे उतारनेका अधिकार है जिसने अपनेको उस धरोहरको सम्हालकर रखनेके अयोग्य सिद्ध कर दिया है जो प्रजाने उसे सौंपी है।" (डिवुलफकृत 'मध्यकालीन दर्शनका इतिहास,' तीसरा संस्करण, पृ० ४६५)

इस अंगरेजी सिद्धान्तका स्वारेजने जो खण्डन किया है उसे प्रसिद्ध लेखक हलमने स्पष्ट, संक्षिप्त और निष्पक्ष बतलाया है। इन युक्तियोंकी सर्वत्र धाक जम गयी है। अंगरेज धर्माचार्योंकी अयोग्यता सिद्ध करनेके लिये हलमने उसके वाक्य उद्धृत किये हैं। 'यूरोपका साहित्य' नामक अपनी पुस्तकमें उसने लिखा है– "अतः यह शक्ति स्वतः अपनी प्रकृतिसे एक मनुष्य नहीं किन्तु मनुष्य-समूहके अधिकारमें रहती है। यह निश्चित सिद्धान्त है। हमारे सब प्रामाण्य लेखक इसे पुष्ट कर गये हैं। सब इस बातपर सहमत हैं कि राजाको कानून बनानेकी वही शक्ति है जो जनताने उसे सौंपी है। इसका कारण स्पष्ट है; क्योंकि सब मनुष्य समान पैदा हुए हैं इसलिये किसीको भी किसी दूसरे आदमी या राज्यके ऊपर राजनीतिक अधिकार नहीं है। और न हम इस विषयकी वस्तुतासे ही कोई कारण दे सकते हैं कि क्यों एक मनुष्य दूसरेके ऊपर शासन करे। हां, इसके विरुद्ध कारण दे सकते हैं।" (हलमकृत 'यूरोपका साहित्य' खण्ड २ अ० ४)।

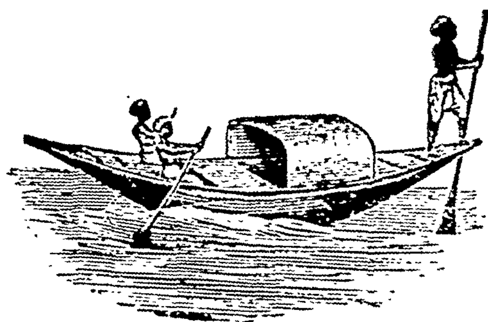
डाक्टर मरेने अपनी पुस्तकमें, सर जेम्स मेकिनटोसकी तारीफमें

कहा है कि अंगरेजी सिद्धान्तका खण्डन करनेवाले लेखकोंमें यह सबसे योग्य है, देखिये। मेकिनटोस क्या कहते हैं! वह बताते हैं कि पर-आज्ञापालनको विना अपवादके धर्म बतला देना बेहूदगी है। डाक्टर मरेने अपने 'मुख्य शासन शक्तिका विरोध' शीर्षक प्रबन्धके अन्तमें मेकिनटोसका एक लम्बा चौड़ा अवतरण उद्धृत किया है और इसकी महत्ता तथा बुद्धिमत्ताकी बड़ी प्रशंसा की है। 'इस अवतरणके अधिकांशमें लिखा गया है कि विद्रोहको सफल करनेके लिये कितनी कठिनाइयोंका सामना करना पड़ता है और उन घोर बुराइयोंपर भी जोर दिया गया है जो असफलतासे पैदा होती हैं। यहां मैंने जो कुछ लिखा है उसमें मुझे अधिक कष्ट बुराइयोंको खोलनेमें हुआ है छिपानेमें नहीं। किन्तु जब विद्रोह अनिवार्य और आवश्यक हो जाता है तो सबको डाक्टर मरेके उद्धृत किये हुए इस वाक्यका अनुमोदन करना चाहिये। "वह विद्रोह, जो दमनके कारण आवश्यक हो जाता है और जिसके कारणोंपर विचार करनेसे अधिक सम्भावना यह हो जाती है कि उसका अन्त अच्छा होगा, एक सार्वजनिक पुण्यका काम है। उसको संकट चारों ओरसे इस प्रकार घेरे रहते हैं कि इसके संचालक प्रशंसाके योग्य समझे जाने चाहिये।" जब क्रान्ति सफल हो जाती है तो जनतापर यह भार पड़ता है और उसका यह अधिकार रहता है कि वह नयी सरकार स्थापित करे।

(५)

इन सबका निचोड़ यह निकला कि वही सरकार न्याय-संगत है जो न्यायपर स्थापित की गयी हो और सर्वसाधारण-के हितके लिये हो। पशुबलपर स्थापित शासनका विरोध किया ही नहीं जाता बल्कि किया जाना भी चाहिये। वह राजसत्ता जो आरम्भमें नियमानुकूल थी जब धीरे धीरे अत्याचारी बन जाती है तो उसका विरोध करना चाहिये और उसे उलट देना चाहिये। और अन्तिम बात यह है कि जब अपनी शक्तिके दुरुपयोग या अत्याचारके कारण एक विशेष शासनका अस्तित्व नहीं रहता तो हमें वास्तविक राजसत्ताका पुनरुद्धार करना चाहिये। कभी२ कुछ लोग बिना समझे बूझे कह देते हैं कि "स्वतंत्रता अराजक-तासे प्राप्त होती है।" किन्तु यह घोर हानिकर सिद्धान्त है। इससे अधिक सत्य तो यह है कि अराजकतासे निश्चय ही अ-त्याचारकी उत्पत्ति होती है। अराजकतामें जनताको दबानेके लिये कोई न कोई अत्याचारी शासक निकल आता है। किन्तु जब दृढ़प्रतिज्ञ और संयमी जनता स्वेच्छाचार और अराजकता नहीं पर स्वाधीनता प्राप्त करनेका निश्चय कर लेती है तो वह प्राकृतिक नियमके अनुसार काम करती है। सेण्ट टामसने यह सि-द्धान्त भली भांति समझा रखा है और टर्नरने अपनी पुस्तक 'दर्शनशास्त्रका इतिहास' में इसे उद्धृत किया है—"अत्याचारी शासककी प्रजा जो सुख-शान्ति चाहती है उसे प्राप्त करनेकी

चेष्टा किसी व्यक्तिविशेषको नहीं किन्तु जनताद्वारा संगठित और धर्मकेअनुसार काम करनेवाली अस्थायी राजसत्ताको करनी चाहिये।" जब कुछ मनहूस और बेवकूफ लोग पागलोंकी तरह बकते हैं कि हम राजसत्तामात्रको बुरा बता रहे हैं, तो हमें शान्तिपूर्वक बता देना चाहिये कि हम राजसत्ताकी जड़को भली भांति समझते हैं। इसके मूलमें सत्य है और हम इसके प्रधान भावका पूरा सम्मान करते हैं। यह मुख्य भाव स्वतंत्रता है।



द्वादश परिच्छेद

सशस्त्र प्रतिरोध।

कुछ आपत्तियां।

(१)

विद्रोहका पक्ष पाठकोंके सामने उपस्थित करनेके बाद यह अनुचित न होगा कि हम इस विषयकी आपत्तियोंपर विचार करें। कई जिज्ञासु सिद्धान्तकी इस स्पष्ट आलोचनासे प्रसन्न होंगे, किन्तु कुछ चालाक विरोधी नीतिकी दुहाई देते हुए अथवा क्रान्तिकारियोंका बेहूदा उल्लेख करते हुए उनकी हंसी उड़ावेंगे; सम्भवतः वे किसी बड़े आदमीके नामकी दुहाई दें या ऐतिहासिक घटनाओंका जबरदस्त आसरा लें। यह विचित्रसी बात है कि हम इस बातका तो ध्यान रखते हैं कि जब हम किसी व्यवहारसिद्ध सिद्धान्तसे लोगोंकी नजर बचाना चाहते हैं तो शुद्ध तत्वकी शरण लेते हैं, किन्तु यह बात अभीतक हमारे ध्यानमें कम आयी है कि जब हम किसी सिद्धान्तकी सत्यताको आविष्कार करनेकी चेष्टा करते हैं तो हम असली बातोंका सहारा लेते हैं। ऐसे समय हमारी आंखोंमें प्रस्तुत और कष्ट-

प्रद संकट, चाहे वह क्षणिक ही हो, ऐतिहासिक घटनाओं अथवा आनेवाली विपत्तिसे बड़ा मालूम होता है। यह बात यदि हम समझ जायं तो उक्त भ्रममें पड़े हुए मनुष्यको हम इस बातमें सहायता देकर उसके दिलमें अपनी बात जमा सकते हैं कि स्थायी और अस्थायी हितमें क्या भेद है। इस प्रकार आपत्तियोंको हटाकर हम अपना पक्ष प्रबल कर सकते हैं।

(२)

ऐसा देखनेमें आता है कि बिल्कुल लापरवा आदमी भी बहुधा सावधानीकी दुहाई देते हैं। ऐसे लोगोंको, जिनकी एकमात्र चेष्टा कठिनतासे पिण्ड छुड़ाना होता है, जो अपनी कमजोरी छिपानेके लिये धैर्य्यपर व्याख्यान देते हैं, इस बातपर भली भांति विचार करनेकी सलाह देनी चाहिये कि किस प्रकार उग्र, निष्कपटी पुरुष इन बहानेबाजियोंसे झुंझला धीरजको त्याज्य पदार्थ बतलाकर उसपर अपनी सारी घृणा बरसाते हैं। ऐसी युक्ति सफल नहीं होती, यह कुछ कालके लिये उनका बड़प्पन घटा देती है। धैर्य दुर्बलोंका नहीं किन्तु बलवान आत्माओंका गुण है।

प्रतिपक्षी कहता है—"आपकी बातें कहनेमें तो ठीक हैं किन्तु देखिये, व्यवहारमें लोग किस प्रकार इनका दुरुपयोग कर रहे हैं।" यह दलील सुनकर इसका उचित उत्तर तुरत स्मरण हो आता है। डाक्टर मरेने एक स्थानपर लिखा है—"किसी नैतिक

सिद्धान्तका यह कहकर खण्डन नहीं किया जा सकता कि लापरवा लोग इसका दुरुपयोग करते हैं अथवा यह कहकर कि यदि अमुक सभामें या अमुक स्थितिमें इसका खुल्लमखुल्ला प्रचार किया जायगा तो हानिकी सम्भावना है।" यह वाक्य सर्वोत्तम है। सिवा दूसरोंके शब्द दुहरानेके विरोधी इसका कोई ठीक उत्तर नहीं दे सकता। हम वालमेजके शब्दोंमें उससे कहेंगे—"लोगोंसे नीतिज्ञ बननेको कहते हुए हमें झूठे सिद्धान्तोंकी आड़में छिपा नहीं रहना चाहिये। हमें सावधान रहना चाहिये कि जनताके दुर्भाग्यके रोषको शान्त करनेके लिये हम ऐसी भ्रमपूर्ण बातें न फैलायें जो सब सत्ता और समाजकी जड़ खोखली करनेवाली हों।" ('यूरोपियन सभ्यता' अ० ५५) ऐसे प्रश्नोंकी तहमें जानेसे जो घबराते हैं उनके बारेमें वालमेज लिखता है कि "मैं नम्रतासे कहूंगा कि ऐसे आदमियोंकी नीतिज्ञता बरबाद चली जाती है; उनकी दूरदर्शिता और सतर्कता किसी कामकी नहीं रहती। वे इन बातोंकी जांच करें या न करें उनकी जाँच हो चुकी, उनका मन क्षुब्ध है और वे उस मार्गपर जिस तरह जा रहे हैं उसका हमें बड़ा खेद है।" ('यूरोपियन सभ्यता' अ०५४)

फ्रान्सके पुराने राज्यमें जनताको जो २ कष्ट थे उनपर लिखता हुआ हर्बर नामक लेखक कहता है—"पुरोहितोंका धर्म यह था कि वे न्याय और सहनशीलताका प्रचार करते किन्तु जनता समझती थी कि वे तो उस राजासे मिल गये जिससे वह डरती थी और जिससे उसको बड़ी घृणा थी।" ('दर्शनशास्त्रका

इतिहास' अ० ५१) बात यह है कि जब अन्याय और पापका बोलबाला होता हो तो उसका स्थायी राज्य नहीं होना चाहिये; उस समय कोई ऐसी कमजोरी न रहनी चाहिये जो पुण्यका रूप धारण कर सके। हम जिस बातका फौरन सामना नहीं कर सकते उसका खण्डन तो सदैव कर सकते हैं। इन बातोंकी अवहेलना करना बुद्धिहीनताका सबसे बुरा स्वरूप है-यह ऐसी अदूरदर्शिता है जिसको हम इस अवसरपर कमसे कम अपनी ओरसे पूरे जोरके साथ अस्वीकार करते हैं।

(३)

क्रान्तिकारी शब्दका प्रयोग उसके अर्थको बिना विचारे हुए किया जा रहा है। हमें सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि यह शब्द परस्पर सापेक्ष अर्थ रखता है। यदि किसी जातिकी स्वाधीनता बलात्कार और विश्वासघातसे छिन ली गयी है और उसके भूतकालमें समृद्धिशाली रहे हुए देशमें दमनकारी उपायोंसे काम लिया जा रहा है तो यह भी क्रान्ति है और बहुत बुरी क्रान्ति है। यदि अत्याचारसे शासित और दमनके भारसे उजड़ते हुए किसी देशके लोग उठ खड़े होते हैं और अपने स्वाभाविक साहस, उत्साह और धैर्यसे पुरानी स्वाधीनता प्राप्त करके न्यायपूर्ण शासन स्थापित करते हैं तो यह भी क्रान्ति है और अच्छी क्रान्ति है। क्रान्तिकारीका विचार उसकी नीयत, उसके साधन और उसके उद्देश्यसे होना चाहिये और जब इन सबमें सत्य विद्यमान रहता है तो

इसका यह कार्य मेकिनटोसके शब्दोंमें 'सार्वजनिक पुण्यका कार्य' बन जाता है। इस कार्यसे सत्यको मनुष्य समाजमें उचित आदरका स्थान मिलता है।

(४)

बालमेजने बोसेके विषयमें कहा है कि उसने उन अधिकारों-को अस्वीकार किया है जिनका यहां प्रतिपादन किया गया है। इसलिये हम यहां बोसेके कुछ और वाक्य देंगे जो उसने किसी दूसरे प्रसंगपर कहे हैं किन्तु जो हमारे विषयमें लागू हो सकते हैं। साम्राज्यके विषयमें बोसे लिखता है—

"Les revolutions des empires sont reglees par la providence, et servent a humilier les princes."

अर्थात् साम्राज्यकी क्रान्तियां विधातासे निर्दिष्ट की जाती हैं और इनके द्वारा राजाओंका मिजाज ठंडा किया जाता है। इस वाक्यसे हम स्वाधीनताका युद्ध करनेसे रोके नहीं जा सकते। यदि हम और आगे बढ़ते हैं और वह बातें पढ़ते हैं जो उसने दूसरा शीर्षकमें लिखी हैं तो हम उस वीरता, स्वातन्त्र्य-प्रेम तथा देशभक्तिकी प्रशंसा ओजस्वी भाषामें देखते हैं जिसने प्राचीन यूनान और रोमका मेद बता रखा है। इसे पढ़कर कोई भी जाति स्वतन्त्रताके लिये उन्मत्त हो सकती है। स्वतन्त्र, अजेय और कृतज्ञताहीन यूनानके विषयमें बोसे लिखता है—

इतिहास' अ० ५९) बात यह है कि जब अन्याय और पापका बोलबाला होता हो तो उसका स्थायी राज्य नहीं होना चाहिये; उस समय कोई ऐसी कमजोरी न रहनी चाहिये जो पुण्यका रूप धारण कर सके। हम जिस बातका फौरन सामना नहीं कर सकते उसका खण्डन तो सदैव कर सकते हैं। इन बातोंकी अवहेलना करना बुद्धिहीनताका सबसे बुरा स्वरूप है- यह ऐसी अदूरदर्शिता है जिसको हम इस अवसरपर कमसे कम अपनी ओरसे पूरे जोरके साथ अस्वीकार करते हैं।

(३)

क्रान्तिकारी शब्दका प्रयोग उसके अर्थको बिना विचारे हुए किया जा रहा है। हमें सदा ध्यानमें रखना चाहिये कि यह शब्द परस्पर सापेक्ष अर्थ रखता है। यदि किसी जातिकी स्वाधीनता बलात्कार और विश्वासघातसे छिन ली गयी है और उसके भूतकालमें समृद्धिशाली रहे हुए देशमें दमनकारी उपायोंसे काम लिया जा रहा है तो यह भी क्रान्ति है और बहुत बुरी क्रान्ति है। यदि अत्याचारसे शासित और दमनके भारसे उजड़ते हुए किसी देशके लोग उठ खड़े होते हैं और अपने स्वाभाविक साहस, उत्साह और धैर्यसे पुरानी स्वाधीनता प्राप्त करके न्यायपूर्ण शासन स्थापित करते हैं तो यह भी क्रान्ति है और अच्छी क्रान्ति है। क्रान्तिकारीका विचार उसकी नीयत, उसके साधन और उसके उद्देश्यसे होना चाहिये और जब इन सबमें सत्य विद्यमान रहता है तो

उसका यह कार्य मेकिनटोसके शब्दोंमें 'सार्वजनिक पुण्यका कार्य' बन जाता है। इस कार्यसे सत्यको मनुष्य समाजमें उचित आदरका स्थान मिलता है।

(४)

बालमेजने बोसेके विषयमें कहा है कि उसने उन अधिकारों-को अस्वीकार किया है जिनका यहां प्रतिपादन किया गया है। इसलिये हम यहां बोसेके कुछ और वाक्य देंगे जो उसने किसी दूसरे प्रसंगपर कहे हैं किन्तु जो हमारे विषयमें लागू हो सकते हैं। साम्राज्यके विषयमें बोसे लिखता है—

"Les revolutions des empires sont reglees par la providence, et servent a humilier les princes."

अर्थात् साम्राज्यकी क्रान्तियां विधातासे निर्दिष्ट की जाती हैं और इनके द्वारा राजाओंका मिजाज ठंडा किया जाता है। इस वाक्यसे हम स्वाधीनताका युद्ध करनेसे रोके नहीं जा सकते। यदि हम और आगे बढ़ते हैं और वह बातें पढ़ते हैं जो उसने इसी शीर्षकमें लिखी है तो हम उस वीरता, स्वातन्त्र्य-प्रेम तथा देशभक्तिकी प्रशंसा ओजस्वी भाषामें देखते हैं जिसने प्राचीन यूनान और रोमका भेद बता रखा है। इसे पढ़कर कोई भी जाति स्वतन्त्रताके लिये उन्मत्त हो सकती है। स्वतन्त्र, अजेय और भ्रष्टताहीन यूनानके विषयमें बोसे लिखता है—

"Mais ce que la Grece avait de plus grand etait une

politique ferme et prevoyante, qui savait abandonner, hasarder et defendre, ce qu'il fallait; et ce qui est plus grand encore, un courage que l'amour de la liberte et celui de la patrie rendaient invincible."

अर्थात् यूनानमें सबसे बड़ी बात यह थी कि उसकी राजसत्ता दृढ़ और सुसज्जित थी। वह जानती थी कि कर्त्तव्यके लिये किस प्रकार त्याग किया जाता है, सर्वस्वकी बाज़ी लगायी जाती है और उसकी रक्षा की जाती है। इन सबसे बड़ी बात तो यह थी कि स्वातन्त्र्य-प्रेम और देशभक्तिके कारण उनका साहस अजेय था। निर्दोष रोम और उसकी स्वाधीनताके विषयमें बोसे लिखता है :--

"La liberte leur etait donc un tresor qu'ils preferoient a toutes les richesses de l'univers."

अर्थात् स्वाधीनता उनके लिये इतनी अनमोल थी कि वे विश्वकी सारी सम्पत्ति उसके सामने तुच्छ समझते थे। बोसे फिर लिखता है :—

"La maxime fondamentale de la republique etait de regarder la liberte comme une chose inseparable du nom Roman."

अर्थात् रोमन प्रजातन्त्रका मूलभूत सिद्धान्त यह था कि वह स्वाधीनताको रोमन शब्दसे अविच्छेद्य पदार्थ समझता था।

ये, उसकी इस दृढ़भक्तिका क्या परिणाम हुआ—

"Voila de fruit glorieux de la patience Romaine. Des peuples qui s'enhardissaient et se fortifiaient par leurs malheurs avaient bien raison de croire qu'on sauvait tout pourvu qu' on pneerdit pas l'esperance."

रोमन दृढ़ताका चकित करनेवाला परिणाम देखिये। जो जाति अपने दुर्भाग्यके समय वीर और शक्तिशाली बन गयी उसका यह विश्वास बिल्कुल ठीक था कि जबतक वह आशा न खो बैठेगी तबतक वह सब कुछ कर सकती है। और सुनिये—

"Parmi eux, dans les etats les plus tristes, jamais les faibles conseils n'ont ete seulement ecoutes."

गिरीसे गिरी दशामें भी उन लोगोंमें दुर्बलतासूचक विचार कभी नहीं सुने गये। प्राचीन स्वाधीनताके इस सुस्वर गुण-गानको पढ़कर हमारी स्वाधीनताकी इच्छा घटती नहीं, वल्कि हमारे अपूर्व इतिहाससे हमें जो सहज उत्तेजन मिलता है वह बढ़ता है और हमारे कानोंमें यह आवाज गूंजती है—"लड़ते जाओ और विजय प्राप्त करो; निकट भविष्यमें ही तुम्हारा कट्टर शत्रु लड़ाई हो चुकने और विजय प्राप्त कर चुकनेके बाद तुम्हारा उतनाही कट्टर प्रशंसक बन जायगा।"

(५)

हमने अटल सिद्धान्त निश्चित कर लिये हैं। व्यावहारिक परिस्थितियां क्षणिक और सदा बदलनेवाली होती हैं। यह बात निम्नलिखित अवतरणमें भली भांति वर्णन की गयी है—

"वर्तमानकालमें इतिहास और समाजविज्ञानकी बड़ी खोजके साथ उन्नति की गयी है और इन्होंने सप्रमाण सिद्ध कर दिया है कि देश और कालके अनुसार सामाजिक नियम बदलते रहते हैं; ये सामाजिक नियम बदलते रहनेवाली कई घटनाओंके परिणाम हैं। इसलिये नैसर्गिक अधिकारोंपर जो शास्त्र लिखा जाय उसमें मनुष्यके नैतिक उद्देश्यको लेकर अटल सिद्धान्त ही निश्चित नहीं किये जाने चाहियें किन्तु साथ साथ उन अस्थायी परिस्थितियोंका भी वर्णन करना चाहिये जो इन सिद्धान्तोंको काममें लाते समय सामने आती हैं।" (डे उल्फकृत 'प्राचीन और नवीन भाष्यशास्त्र' खण्ड २, अध्याय २) यदि हम सिद्धान्तोंका व्यवहार कल करते हैं तो आजके नियम देखकर नहीं चलना चाहिये, किन्तु अचानक आजानेवाली उन परिस्थितियों-को देखना चाहिये जो इन्हें काममें लाते समय सामने आती हैं। यह बात सबके ध्यानमें जम जानी चाहिये। बीस साल पहले जो हालत थी आज वह बहुत बदल गयी है। यह देखकर हमें समझ लेना चाहिये कि भविष्यमें स्थिति बहुत बदल सकती है। बीस सालके छोटे अरसेमें बड़े बड़े परिवर्तन हो सकते हैं। १८४८ में आयर्लैण्ड असफल क्रान्ति और सफल क्षुधा-कातरतासे चौपट हो चुका था। लोग निराशासे हर तरह-से दबे जा रहे थे। बीस साल बाद दूसरी बगावत संगठित की गयी और इसने आयर्लैण्डमें अङ्गरेजी सरकारकी जड़ हिला दी। डेउल्फ एक स्थानपर लिखता है कि "समाज-शास्त्रका

व्यापक और विस्तृत अर्थ नैसर्गिक अधिकारोंके शासके ढंगों को बदल रहा है।" इस परिवर्तनकी दृष्टिसे वह मनुष्य बुद्धिमान है जिसकी दृष्टि भविष्यपर है। डेडफके उस अन्तिम वाक्यका अनुमोदन करना चाहिये जहां वह सम्मुख उपस्थित होनेवाली घटनाओंपर निष्पक्ष होकर विचार करनेको कहता है: और कहता है कि "प्रत्येक प्रश्नका विचार उसके गुण दोष देखकर करना चाहिये।" जो लोग आयर्लैण्डको ब्रिटिश साम्राज्यसे विच्छिन्न करनेके पक्षमें हैं उन्होंने ही ऐतिहासिक घटनाओंसे शिक्षा ग्रहण की है, उन्होंने सामयिक परिस्थितिको अस्थायी समझा है और भविष्यमें अचानक आजानेवाले संकटोंपर विचार किया है। जिन लोगोंने इस विषयपर समझौता किया है वे अपने समयकी परिस्थितिसे घबरा गये थे। किन्तु किसी जातिके हजारों वर्षके जीवनके इतिहासमें ब्रिटेनकी पराधीनता अस्थायी और अचानक आ पड़नेवाली घटना है; हमारा अखण्ड सिद्धान्त तो आयरिश जातिकी स्वतन्त्रता है।

त्रयोदश परिच्छेद

—०—

अन्तिम शब्द ।

(१)

सिद्धान्तोंको सिद्ध करने और एतराजोंका जवाब देनेके बाद भी जो लोग हमसे अलग हैं—जिन लोगोंने दो देशोंके बीचमें पुलका काम दे रखा है उनसे अन्तिम निवेदन कर देना बाकी रह जाता है। वे लोग हमसे इसलिये अलग नहीं हैं कि वे भ्रममें हैं किन्तु वे अपने सिद्धान्तोंके दृढ़ भक्त हैं। वे सत्यके विषयमें सन्देहमें नहीं हैं किन्तु उसके रूपके विषयमें संदिग्ध हैं। ये वे साधारण आदमी नहीं हैं जिनके लिये मानवी नियम बनाये जाते हैं, जिन्हें विजयका नैतिक निश्चय हो जाना चाहिये या जो यह चाहते हैं कि जनता तुरत उनकी बातोंके सामने घुटने टेक दे। हमारे नेताओं और आश्रयहीन आशापर डटे हुए सैनिकोंकी यह विशेष महिमा है कि साधारण आदमियोंकी पराजयसे उन्हें आनेवाले संग्रामके लिये उत्तेजन मिला है। जब वे अपने समयके विचारोंके विरुद्ध खड़े हुए थे तो वे किसी उद्धतताके कारण नहीं बल्कि बहुधा इसलिये कि उनकी अन्तरात्मा उन्हें बतला देती थी कि सत्य यह है और लोग इसे भूल गये हैं। वे अपनी आत्माके तेजसे लोगोंको आगे का रास्ता दिखा गये हैं; उन्होंने बताया है कि भविष्यमें देश·

की छिपी हुई कीर्ति किस प्रकार उदय होगी। वे पहिलेसे ही जानते थे कि जनता अन्तमें हमारा सिद्धान्त मानेगी और बिना ऐसा किये वह आगे बढ़ भी नहीं सकती। वे समझते थे कि हम सत्यके लिये लड़ रहे हैं और इसे कोई शक्ति हरा नहीं सकती; और जब उन्हें लड़ाई-झगड़े, यंत्रणाएं तथा कष्ट सहन करने पड़े तो उन्हें इन बातोंसे उत्पन्न होनेवाला वह सूक्ष्म ज्ञान था जिसे संसारके बड़ेसे बड़े महात्मा ही प्राप्त करते हैं—अर्थात् जीवित रहना श्रेयस्कर है किन्तु धर्म-युद्धमें मरना भी उतना ही श्रेयस्कर है। इसका अर्थ यह नहीं है कि वे जीवनको तुच्छ समझते थे या उसे यों ही गंवा देते थे; क्योंकि जीवनकी महत्ता उनसे अधिक किसीने न समझी; उनसे अधिक जीवनकी महिमा किसीने नहीं गायी; जीवन-संगीतका प्रवाह उनसे अधिक किसीकी नसोंमें नहीं दौड़ा। किन्तु वे उस महान् सत्यका मूल्य समझते थे जिसके न रहनेसे संसार उजड़ जाता है। वह सत्य यह है—जो मनुष्य मरनेसे डरता है वह जीवित रहनेका पात्र नहीं है। इस ज्ञानने संसारका सबसे बड़ा भय उनके हृदयसे निकाल दिया और जीवनमें महान् आनन्दका समावेश कर दिया। और जब वे घोर विषादके समय बड़ेसे बड़ा कष्ट सहनेको उद्यत हुए तो उन्होंने समझा, जीवनका सच्चा सुख यही है और यदि कभी उन्हें मृत्युका सामना करना पड़ा तो वे इससे घबराये नहीं। उन्हें सदा सहकारिता और प्रेमके उत्तम गुणोंका पूर्ण ज्ञान रहा। उनके सुख और सफलताका एक

रहस्य यह भी है कि वे जीवितावस्थामें मताधिकार प्राप्त करने और मरनेपर स्मारक बनानेकी इच्छा न रखकर देशका काम करनेके लिये पूरे तैयार रहते थे। अन्तमें जब जागृत जाति अपने सहज स्वभाव, संयम, देशभक्ति और उत्साहसे सेनामें परिणत हो जायगी और स्वतंत्रता प्राप्त करनेके लिये कूच करेगी तो वह पूर्ण विजयके अवसरपर समझेगी कि यह सेना उनके द्वारा विजयी बनायी गयी है जिन्होंने जातीय विषादके समय आशाकी ज्योति जगा रखी थी।

(२)

सौभाग्यसे जब हम संसारके सबसे बड़े वक्ताके ओजस्वी भाषणकी ओर दृष्टि डालते हैं तो उसके भाषणके उस अंशको देखकर जिसमें उसने उनका गुणानुवाद गाया है जिनका संसार सबसे ज्यादा ऋणी है हमारा हृदय कृतज्ञतासे भर जाता है। अपने सर्वोत्तम भाषणमें यूनानके प्रसिद्ध वक्ता डेमोस्थनीजने प्रत्येक युग और जातिके उन वीरोंका पक्ष प्रतिपादन किया है जो त्यक्त आशाको पकड़कर लड़ते रहते हैं। एसकाइनोज नामक उसके एक विपक्षीने आक्षेप किया कि डेमोस्थनीजने एथेन्सनिवासियोंको ऐसी सम्मति दी कि उनकी हार हो गयी। इसका उत्तर डेमोस्थनीज यों देता है—"यदि देश परिणामको पहलेहीसे जानता तोभी वह अपना कार्य्यक्रम नहीं छोड़ता, यदि उसे अपनी कीर्ति, प्राचीनता अथवा भविष्यका कुछ भी ख्याल होता। हां,

इस समय वह अपने पराक्रममें असफल हो गया है। सफलता असफलता भगवानकी इच्छापर निर्भर है।" डेमोस्थनीज एथेन्स-निवासियोंसे प्रश्न करता है कि "जिस पदार्थको प्राप्त करनेके लिये हमारे पूर्वजोंने सब संकटोंका सामना किया यदि हम बिना उसके लिये युद्ध किये उसकी आशा ही छोड़ देते तो क्या हमपर सारा संसार नहीं थूकता ?" वह आगे कहता है कि उन परदेशियोंका विचार कीजिये जो तुम्हारे देशमें आते हैं, तुम्हारी इस गिरी हुई हालतको देखकर क्या कहते होंगे, "विशेषकर जब वे जानेंगे कि प्राचीन समयमें हमारे देशमें कीर्तिके लिये लड़े हुए संग्रामके सामने लज्जाजनक जीवनरक्षाको कभी ऊंचा स्थान नहीं मिला है।" और वह बड़े गर्वके साथ इस उच्च विचारपर पहुंचता है कि "कोई भी किसी समय हमारे राष्ट्रको शक्तिशाली और अन्यायी राजाकी सुरक्षित अधीनतामें नहीं रख सकता। हमारे राष्ट्रने सदा ही सम्मान और कीर्तिमें सबसे आगे बढ़नेके लिये भयंकर युद्धमें जूझनेका प्रयत्न किया है।" डेमोस्थनीजने थेमिष्टोक्लीजकी स्मृतिकी दुहाई देते हुए अपने देशवासियोंसे कहा है कि उन्होंने ऐसे वीर पूर्व-पुरुषोंका सदा सम्मान किया है। पुराने एथेन्सनिवासियोंने ऐसे वक्ता या सेनापतिको अपना पथप्रदर्शक नहीं समझा जो उन्हें सुखप्रद पराधीनताकी ओर ले जाय। यदि जीवन स्वतंत्रतामें नहीं बीत सका तो वे उसे तुच्छ समझते थे।" डेमोस्थनीज इस भाषणमें अपने श्रोताओंकी प्रशंसा करते हुए कहता है कि "मैं जिस बातकी घोषणा करता

हूं वह यह है कि यह सिद्धान्त आपके अपने हैं ; मैं दिखाता हूं कि हमसे पहली पीढ़ीमें राष्ट्रमें यही तेज विद्यमान था।" एक एक बातपर उसका तेज अधिकाधिक बढ़ता जाता है और अन्तमें वह अपने ऊपर कटाक्ष करनेके लिय एसकाइनीजको ललकारता है और जनतासे निवेदन करता है—"एथेन्सके निवासियो! राष्ट्रकी रक्षा और स्वतन्त्रताके लिये युद्ध करके तुमने कोई दोषका काम नहीं किया है: जिन तुम्हारे पूर्वपुरुषोंने मरेथोनके संकटका मुकाबिला किया, जिन्होंने पलाटियामें शत्रुसे लोहा लिया, जिन्होंने सालमिसमें सामुद्रिक लड़ाई लड़ी, जिन्होंने आर्टीमिजियममें सर्वस्व होम दिया तथा जो वीर सार्वजनिक स्मारकोंके भीतर सोये हुए हैं उनकी शपथ खाकर मैं तुम्हें बताता हूं कि इन सबको देशने सम सम्मानके योग्य समझा। एसकाइनीज! हमारे पूर्वजोंने सफल और विजयी वीरोंका ही सम्मान नहीं किया।"

हमारे नेता ओनील, टोन, ओडोनेल और मीचलकी कीर्तिकी धाक जमानेके लिये इन ओजस्वी वाक्योंकी आवश्यकता नहीं है, किन्तु इनके पढ़नेसे नयी स्फूर्ति आ जाती है और खून गरम हो जाता है। कैसे मर्मस्पर्शी वाक्य हैं! हम इनसे समझ जाते हैं कि यदि हममें तेज बना रहा तो हमारी वास्तविक विजय होगी। इस सत्याग्रही सिद्धान्तकी हमने और हमारे पूर्वजोंने प्रशंसा की है; यह बात मानवी हृदयका स्थायी सिद्धान्त कि वह महान् कार्यकी प्रशंसा करे और शारीरिक पराजयसे

ऊपर उठे। इस दृष्टिसे हम उस शिलालेखका अर्थ समझते हैं जिसके विषयमें रस्किनने कहा है कि यह संसारका अद्वितीय शिलालेख है, जिसके विषयमें हिरोडोटसने कहा है कि यह स्पार्टके उन वीरोंकी कब्रपर खोदा गया है जो थर्मापोलीमें वीर गतिको प्राप्त हुए और जिसे मीचलके जीवनी-लेखकने मीचलकी जीवनीका बहुत उपयुक्त संक्षिप्त सारस्वरूप समझकर उद्धृत किया है। वह शिलालेख यह है—" हे बटोही! तुम लसीडिमोनियन लोगोंसे कहो कि उनकी आज्ञा शिरोधार्य करके हम यहां पड़े हुए हैं।" मीचलकी जीवनीके लेखकने बहुत ही उचित कहा है कि इन वीरतापूर्ण पंक्तियोंका भीतरी अर्थ जो समझता है वह इनसे पराजयका नहीं किन्तु विजयका संदेशा पाता है।

३

अपने आदर्शरूप इन महात्माओंका उचित गुणानुवाद करते हुए हमें यह भी उचित है कि हम अपनेको इस महान् परम्पराके वारिस समझें। हमारे योग्य बात तो यह है कि जो झंडा हमारे हाथमें है हम उसकी शान ही लोगोंको न दिखावें किन्तु यह भी सिद्ध करें कि हम उसे फहरानेके योग्य हैं, क्योंकि उसकी विजय और उसका सम्मान इस बातपर निर्भर है कि हम उसकी महत्ता कहांतक समझते हैं; उसकी विजय इस विचारपर निर्भर है कि हमें सदा और सर्वत्र उसके लिए लड़ना चाहिये; उसकी

विजय इस ज्ञानपर भी निर्भर है कि न मालूम किस समय हम उसे फेंक देनेके लिये ललकारे जायं; वह इस विश्वासपर भी निर्भर है कि हम अपने व्यवहारसे उसकी कीर्ति और साख बढ़ा सकते हैं अथवा उसे बदनामीकी ओर खींच ले जा सकते हैं। मैं कहूंगा कि हमें यह बात भली भांति समझ रखनी चाहिये; क्योंकि आजकल प्राचीन समयके पुरुषोंकी प्रशंसा करना और उनकी स्वतंत्रताके आदर्शको न मानना फेसन बन गया है। हम, जो इस प्राचीन तेजसे ही जीवित हैं, जो इसका प्रचार करते हैं, इसके लिये लड़ते हैं और कहते हैं कि अन्तमें इसकी पूर्ण विजय होगी, नवजवान, मूर्ख और अव्यवहारी बताये जाते हैं। हम इसका क्या उत्तर देते हैं? हमारा उत्तर हमारे पक्ष, उसके इतिहास और उसके भविष्यके अनुकूल है जो हमारी हंसी उड़ाते हैं या हमारे ऊपर तरस खाते हैं उन्हें देखना चाहिये कि हम उनके पक्षको तुच्छ समझते हैं और घृणाकी दृष्टिसे देखते हैं। यदि हमारे चुनावसे उनमें कोई भ्रम न फैला हो तो वे हमारे कामोंसे जान सकते हैं कि झंझट न रहनेपर हम उच्चसे उच्च पदोंके लिये योग्यताके साथ खड़े हो सकते हैं।

× × × ×

हमें अपने पक्षकी उन्नतिके साथ साथ महान् बनना है। क्या हम नीचतासे क्षमा-याचना करके इस झंडेका आदर कर सकते हैं? कदापि नहीं। जहां कहीं यह गिरा हुआ होगा हम इसे उठायंगे, जहां कहीं इसे ललकारा जायगा हम इसे और ऊंचा

फहरायंगे, जहां कहीं यह गाडा हुआ होगा हम इसका अभिवादन करेंगे, जहां कहीं यह विजयी होगा हम इसकी कीर्ति गायंगे और आनन्द मनायेंगे। हम सदैव इसके नामपर गर्व करेंगे, उत्साह दिखलायेंगे, प्रयत्न करते रहेंगे, आनन्द मनायेंगे और दूसरोंकी आज्ञाका उल्लंघन करेंगे। हम इसके लिये सुप्त स्मृतियोंको जागृत करेंगे, बुझी हुई आगमें फिर घी डालेंगे, जनताके सत्य विचारोंको पुनर्जीवित करेंगे। इस प्रकार सबमें पुराना तेज भर देंगे-वह तेज भर देंगे जो कभी हार स्वीकार नहीं करता, जिसकी महिमाका बखान हजारों बार कर चुके हैं, जिसे आयरिश देशभक्त एमेटने एक पंक्तिके भीतर अति सुन्दर रूपसे व्यक्त किया है। वह लिखता है-"जब मेरा देश संसारके राष्ट्रोंमें अपना उचित स्थान ग्रहण करे तब मेरी कब्रपर कुछ लिखा जाना चाहिये, अन्यथा नहीं। उसने 'यदि' नहीं कहा किन्तु 'जब' कहा। इसका मतलब यह है कि यह बात अनिश्चित नहीं किन्तु निश्चित है। प्रत्येक युगमें ऐसे आदमी पैदा हुए हैं और आज भी वर्तमान हैं जिनकी समझ मोटी और हृदय निष्ठुर होनेसे वे इस बातपर विश्वास नहीं करते, किन्तु हम इसपर विश्वास करते हैं, हम इसके सहारे जीवित हैं और इसे भली भांति समझते हैं। हम इसे ठीक एमेटकी भांति समझते हैं और भविष्य हमारी यह बात सिद्ध कर देगा। जब इतिहास-लेखक कार्य सिद्ध हो चुकनेपर इतिहास लिखेगा तो उसे हमारी सफलतापर आश्चर्य नहीं

होगा। उसे तो इस बातपर आश्चर्यचकित होना पड़ेगा कि हमारी आत्मा सदा दृढ़ बनी रही हमने निर्दोष यूनान और रोमके समयके उत्तम गुणोंसे टक्कर ली, हम आपत्तियों, यंत्रणाओं और अत्याचारको सहकर भी डटे रहे, नीचभावपूर्ण समयमें हम किसीके फुसलावेमें नहीं आये, यह सब झेलते हुए हम अपना उद्देश्य स्पष्ट रूपसे देखते रहे। इतिहास-लेखक यह सब बातें लिखेगा और आश्चर्यमें पड़कर गर्व और आनन्दके साथ उस लक्ष्यको देखेगा जिसे अदम्य उत्साहने प्राप्त किया है। इस लक्ष्यके विषयमें वह लिखेगा :—

"स्वाधीनता अनिवार्य थी।"

इन दो शब्दोंमें उस जातिका सारा इतिहास आ जायगा जो संसारके इतिहासमें अपना सानी नहीं रखती।

॥ इति ॥

मालव-मयूर

राजस्थान (मध्यभारत और राजपूताना) का सचित्र मासिक पत्र, [illegible]
ड़ा; पृष्ठ-संख्या ४०; मूल्य ३॥ वार्षिक।

सम्पादक

पं० हरिभाऊ उपाध्याय, महात्मा गांधीके "हिन्दी-नवजीवन" के उपसम्पादक।

मयूरका जीवन-कार्य

असत्य, अन्याय और अत्याचारका निर्भयता, शान्ति और विनय-पूर्वक विरोध
रना तथा राजस्थानकी आन्तरिक शक्तिको जागृत और विकसित करना।

मयूरकी विशेषतायें

१. सत्य, शान्ति और प्रेम इसके जीवनका धर्म है।

२. यह विश्व-बंधुत्वका प्रेमी, राष्ट्रीय धर्मका उपासक और भारतीयताका अभिमानी है।

३. यह विवेक-पूर्वक प्राचीनताकी रक्षा करता है और नवीनताका स्वागत।

४. देशी-राज्योंको यह ममत्वकी दृष्टिसे देखता है।

५. विज्ञापनबाजीके अनर्थसे समाजको बचानेके लिये इसमें विज्ञापन नहीं लिये जाते। सिर्फ लोकोपयोगी विज्ञापन **मुफ्त** छाप दिये जाते हैं।

६. ललित कलाओंके नामपर विषय-विलास-प्रेरक सामग्रीका प्रचार करनेकी प्रवृत्तिका यह विरोधी है।

७. छपाई, कागज तथा पोस्टेजके अलावा किसी किस्मका खर्चा इसपर नहीं लगाया जाता है।

नोट—सस्ता-साहित्य-मंडलकी उन्नतिके सम्बन्धमें तथा कौन कौनसी पुस्तकें निकलीं और निकल रही हैं आदि सब बातोंका उल्लेख इस पत्रमें विशेष रूपसे रहता है।

कुछ सम्मतियोंका सार

पूः पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—"मालव-मयूर" बहुत अच्छा निकला। छपाई और कागज उत्तम है। भाषा और विषय-योजना भी ठीक है।

सरदार माधवराव विनायक किबे—मेरा यह दृढ़ विश्वास हो गया है कि यह एक उच्च कोटिका मासिक-पत्र है।

सर्वेन्ट आव् इंडिया—......ने एक महत्वपूर्ण पत्रकी वृद्धि की है। मासिक-पत्रका सम्पादन वे विशेष योग्यता और पूरी जिम्मेवारीके साथ करते हैं जो कि हमें महात्मा गांधीकी प्रत्यक्ष देख-भालमें तालीम पाये सज्जनोंमें दिख देती है।

प्रताप—"मालव-मयूर" में मौलिकता और सात्विकता है। अधिक विच और विवेकके साथ चुनी हुई बहुतसी टिप्पणियां इसमें रहती हैं। हमें विश्वास कि "मयूर" का मीठा और सात्विक ढंग अपना रंग अवश्य लावेगा और उस म० भा० और रा० पू० के लोगोंकी अत्यन्त निर्बल और निर्जीव आत्मा बल मिलेगा।

मतवाला—सभी संख्यायें एकसे एक बढ़कर हैं। कवितायें और लेख ब ही सुन्दर, सरस और निर्दोष होते हैं। संपादकीय अंश अत्यन्त प्रशंसनीय हो है। अधिक पृष्ठ-संख्या वाले पत्र 'मयूर' से शिक्षा ग्रहण करें।

आज और प्रताप—लेख उच्च कोटिके हैं। उनपर दृष्टि रखते हुए अगल नंबर पिछलेसे बढ़ा चढ़ा मालूम होता है।...की टिप्पणियोंमें sense of proportion और sense of responsibility होती है, जिसकी इस समयके बहुतसे संपादकोंमें कमी नजर आती है।

कविकौमुदी—इसके सम्पादक हिन्दीके अच्छे और विचारशील लेखकोंमें हैं। संपादकीय नोटोंमें, उनकी स्पष्ट-वादिता, निर्भीकता और उत्तम विचारशैली देखकर चित्त प्रसन्न होता है।

पता—मालव-मयूर, अजमेर,

(राजपूताना)

लागत मूल्यपर हिन्दी पुस्तकें प्रकाशित करनेवाली
एक मात्र सार्वजनिक संस्था

सस्ता-साहित्य-प्रकाशक-मंडल, अजमेर

उद्देश्य—हिन्दी साहित्यमें उच्च और शुद्ध साहित्यके प्रचारके उद्देश्यसे इस मण्डल-का जन्म हुआ है। विविध विषयोंपर सर्वसाधारण और शिक्षित समुदाय, स्त्री और बालक सबके लिए उपयोगी और सस्ती पुस्तकें इससे प्रकाशित होंगी।

इस मण्डलके सदुद्देश्य, महत्व और भविष्यका अन्दाज पाठकोंको होनेके लिए हम सिर्फ उसके संस्थापकोंके नाम दे देते हैं—

मंडलके संस्थापक—(१) सेठ जमनालालजी बजाज वर्धा, (२) सेठ घनश्यामदासजी बिडला कलकत्ता (सभापति) (३) स्वामी आनन्दजी (४) बाबू महावीरप्रसादजी पोद्दार (५) डा० अम्बालालजी दधीच (६) पं० हरिभाऊ उपाध्याय (७) बा० जीतमल लूणिया अजमेर (मन्त्री)

पुस्तकोंका मूल्य—(१) प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंके लिये लगभग लागत मात्र रहेगा अर्थात् उन्हें लगभग १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकें ३) में मिलेंगी। इस तरह उन्हें १) में ५०० से ६०० पृष्ठों तककी पुस्तकें मिलेंगी। अर्थात् पुस्तकपर छपे मूल्यसे पौनी कीमतसे भी कुछ कममें उन्हें मिलेंगी। (२) द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहकोंसे पुस्तकपर छपे मूल्यपर (सर्वसाधारणके लिये) तीन आना रुपिया कमीशन कम करके मूल्य लिया जायगा अथार्त् उन्हें १) में लगभग साढे चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी (३) सर्वसाधारणको १) में लगभग चारसो पृष्ठोंकी पुस्तकें मिलेंगी। सचित्र पुस्तकोंका कुछ मूल्य अधिक रहेगा।

हमारे यहांसे प्रकाशित होनेवाली दो मालाऐं

हमारे यहांसे सस्ती साहित्य माला और सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक माला ये दो मालाऐं निकलती हैं। वर्ष भरमें प्रत्येक मालामें लगभग सात आठ पुस्तकें (कम या ज्यादा) निकलती हैं और इन सब पुस्तकोंकी पृष्ठ-संख्या मिलाकर लगभग १६०० पृष्ठोंकी होती है।

प्रथम श्रेणीके स्थाई ग्राहक

स्थाई ग्राहक होनेके नियम

नोट—मालासे निकली हुई पूर्व प्रकाशित पुस्तकें चाहे वे लें या न लें पर आगे प्रकाशित होनेवाली पुस्तकोंकी एक एक प्रति उन्हें अवश्य लेनी होगी।

(१) वार्षिक ग्राहक—चूँकि प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें पोस्टेज के अलावा ।) प्रति पुस्तक वी० पी० खर्च ग्राहकोंको अधिक लग जाता है अतएव यह सोचा गया है कि वार्षिक ग्राहकोंसे प्रति वर्ष ४) पेशगी लिया जाय अर्थात् तीन रुपया १६०० पृष्ठोंकी पुस्तकोंका मूल्य और १) डाक खर्च। वार्षिक ग्राहक जिस वर्षके ग्राहक बनेंगे उस वर्षकी सब प्रकाशित पुस्तकें उन्हें लेनी होंगी।

(२) जो सज्जन ॥) प्रवेश फीस देंगे उनका नाम भी स्थाई ग्राहकोंमें सदाके लिये लिख लिया जायगा और ज्यों ज्यों पुस्तकें निकलती जावेंगी वैसे वैसे पुस्तकका लागत मूल्य और पोस्टेज खर्च जोड़कर वी० पी० से भेज दी जावेंगी।

नोट—इस तरह प्रत्येक पुस्तक वी० पी० से भेजनेमें वर्ष भरमें कोई दो रुपया पोस्टेजका खर्च ग्राहकोंको लग जायगा।

हमारी सलाह है कि आप वार्षिक ग्राहक ही बनें।

क्योंकि इससे आप बार बार वी० पी० छुड़ानेके झंझटसे बच जावेंगे और पोस्टेजमें भी आपको बहुत ही किफायत रहेगी। और स्थाई ग्राहक फीसके आठ आने भी आपसे नहीं लिये जावेंगे।

द्वितीय श्रेणीके स्थाई ग्राहक

(१) **जो सज्जन** मालासे निकलनेवाली सब पुस्तकें न लेना चाहें, अपने मनकी पुस्तकें लेना चाहें वे ऊपर लिखे नं० २ के प्रवेश फीस वाले ग्राहक हो सकते हैं। पर उन्हें वर्षभरमें कमसे कम २) मूल्यकी पुस्तकें जिस मालाके वे ग्राहक बनें उस मालाकी लेनी होंगी।

नोट—आप जिस मालाके जिस श्रेणीके वार्षिक या प्रवेश फीस वाले ग्राहक बनना चाहें खूब स्पष्ट लिखें। दोनों मालाओंके बनना चाहें तो वैसा लिखें।

सस्ती साहित्य मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) द० आफ्रिकाका सत्याग्रह (म०गांधी) पृष्ठ २७२ मूल्य ॥) (२) शिवाजीकी योग्यता-पृष्ठ १३२ मूल्य ।≤) (३) दिव्य जीवन पृष्ठ १३६ मूल्य ।=) (४) भारतके स्त्री रत्न-पृष्ठ ४०२ मूल्य १=) (५) व्यावहारिक सभ्यता-पृष्ठ १०८ मूल्य ।)॥ (६) आत्मोपदेश पृष्ठ ११२ मूल्य ।-)

सस्ती प्रकीर्णक पुस्तक मालासे प्रकाशित पुस्तकें (प्रथम वर्ष)

(१) कर्मयोग-पृष्ठ १५२ मूल्य ।=) (२) सीताजीकी अग्नि-परीक्षा-पृष्ठ १२४ मूल्य ।-) (३) कन्या शिक्षा-पृष्ठ ९६ मूल्य ।) (४) यथार्थ आदर्श जीवन-पृष्ठ २६४ मूल्य ॥-) (५) स्वाधीनताके सिद्धान्त (टेरेन्स मेक्सविनी) पृष्ठ २०८ मूल्य ॥)

☞ स्थाई ग्राहकोंसे पिछले पृष्ठपर दिये हुए "पुस्तकोंका मूल्य" इसके अनुसार लिया जायगा।

—सस्ता साहित्य प्रकाशक मंडल, अजमेर

किसान ही धरती के मालिक हैं

किसानों का बिगुल



लेखक—किसान कवि

श्री उल्फतसिंह चौहान 'निर्भय'

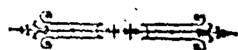
प्रकाशक—जीतमल लूणिया सस्ता-साहित्य-मण्डल, अजमेर।

प्रति ०००

१९३०

मूल्य =)

किसानों का बिगुल



प्रार्थना

दोहा

मंगलमय दातार तू जगपति जगदाधार ।
जो कछु दे, तो दे यही, करूँ कृषक-उद्धार ।।

गज़ल-कव्वाली

ईश्वर ! मेरा ये तन-मन कृषिकार के लिए हो ।
सर्वस्व मेरा इनके उपकार के लिए हो ।। १ ।।
व्रत, नेम, ध्यान मेरा, सन्ध्या, भजन व पूजा ।
सब धर्म कर्म इनके उद्धार के लिए हो ।। २ ।।
विद्या, सुमन्त्र जो कुछ व्यवहार-ज्ञान मेरा ।
इनकी कलह, कुमति के उपचार के लिए हो ।। ३ ।।
भावुक-विशुद्धता जो सौजन्य, शील मेरा ।
आपस में प्रेम-भक्ती-संचार के लिए हो ।। ४ ।।
मेरा जो कर्म-कौशल, साहस व शूरताई,
रक्षक सदैव इनके अधिकार के लिए हो ।। ५ ।।

'निर्भय' मगन रहूँ नित करके किसान-सेवा।
निष्काम-काम मेरा संसार के लिए हो ॥ ६ ॥

---

(२)

उलाहना

सवैया

हम दीन मलीन औ हीन भए
छिनि दूर गई सबरी प्रभुताई।
'बदनाम गुलाम हरामी' बने
पर-राज की गाज महा दुखदाई ॥
'निरभै' निशि-वासर टेरयो करै
करुणाकर को करुणा नहिं आई ॥
कहा जानि हैं पीर वे औरन की
जिनके नहिं फाटी है पाँव बिवाई ॥ १ ॥

आरत भारी पुकारत हैं,
तुम तारत हो हमने सुन पाई।
आप पै भीर परी न कबौं परि
जानि हौ का पुनि पीर पराई ॥
याही से नाहिं सुनो 'निरभीक' की
साँचु ही जान लई निठुराई।

जानत पीर न औरन की
जिहि के नहिं फाटी है पाँव बिवाई ॥ २ ॥

दोहा

दीनबन्धु ! करुणानिधे ! विपति-विदारन-हार ।
का हमरे ही भाग्य में बदे सकल दुख-भार ?

---

(३)

किसान की आन

रसिया

कब तक बने रहेंगे हम हीं, जग में दुखिया दीन किसान ॥ टेक ॥
और देश के तो किसान सब भोगत स्वर्ग महान ।
हम ही जनमे जा भारत में दुख-दारिद की खान ॥१॥ कब तक०
काहु दिन हमहीं हते विश्व में 'धनपति विद्यावान ।'
अब तो 'काले कुली हरामी पाजी बेईमान' ॥२॥ कब तक०
दुनिया भर के हम शासक थे न्यायी, नीति-निधान ।
पड़े गुलामी में दुख भोगें ऊकैं सकल जहान ॥३॥ कब तक०
पूँजीपति. हुक्काम मौजलें खूब बनावत शान ।
हम ही दीखत लटी नारि के चाहिं सो मसकत आन ॥४॥ कब तक०
योंहीं भींकत रहें जनम भरि तौ न होहि कल्यान ।
करि संगठन उठेंगे जब हम हैं जाहिं सब के कान ॥५॥ कब तक०

सहि-सहि अत्याचार उठे जब जगके वीर-किसान।
अत्याचार और दुक्खनु को मिटि गयो सर्व निशान ॥६॥ कब तक०
'निर्भय' हम हू दिखला देंगे अब अपने अरमान।
कै तो सुखी स्वतंत्र रहेंगे कै होंगे बलिदान ॥७॥ कब तक०

---

(४)

ईश्वर से प्रार्थना

सवैया

दीन-दशा दिन पै दिन दावति
दौरि कें दारिद साज संजोए।
राति दिना चित चिन्त रहे
जासों कंचन सौ तन माटी मिलोए ॥
बारहि बार निहोरे करे
करुणा-निधि पै अपनो दुख रोए।
पै 'निरभै' की सुनी नहिं एकहु
काननु दै अँगुरी कित सोए ॥ १ ॥
लोक गयौ, परलोक गयौ, पर
शोक गयौ न, रह्यौ तन भोए।
मान गयौ, ध्रुव-ध्यान गयौ
अपमान गयौ न, बड़े दुख ढोए ॥

देश गयौ, सुर-त्रेष गयौ पै
कलेश गयौ न, सबै धन खोए।
या 'निरभै' की सुनौ अबहू प्रभु !
काननु दै अँगुरी कित सोए॥ २ ॥

'काले कुली औ गँवार' भए
'बदकार' भए नहिं जात हैं जोए।
'पाजी, गुलाम, निकाम' भए,
बदनाम भए सब औगुन ढोए।
'जंगली, मूढ़, असभ्य' भए 'खलु
भीरु' भए 'नरभै' गुन खोए।
देश दशा प्रभु ऐसी भई तुम
काननु दै अँगुरी कित सोए।

---

(५)

किसान—मोहन

गजल

किसान—ईश ! क्यों रूठे हो हम से जो यहाँ आते नहीं ?
हम किसानों की दशा पर तुम तरस लाते नहीं॥ १ ॥
मोहन—प्रिय किसानों को कभी भी भूल हम जाते नहीं।
हम न रूठें किन्तु हम पर तुम यकीं लाते नहीं॥ १ ॥

किसान—टीड़ी, पाले रोज पड़ते ये अकालों पर अकाल।
पानी तुम में नहीं रहा क्या ? पानी बरसाते नहीं॥ १॥
मोहन—फल तुम्हारे ही कुकरमों का, जो पड़ते हैं अकाल।
तुम में पानी कुछ भी होता, ऐसे पछताते नहीं॥ १॥
किसान—नित करोड़ों कट रही हैं तेरी वो व्रज-नन्दिनी।
इनको बचाने के लिए आकर के अपनाते नहीं॥ २॥
मोहन—स्वारथी, लोभी, निठुर हो तुम ही कटवाते उन्हें।
आऊँगा लेकिन मुझे वे ग्वाल दिखलाते नहीं॥ २॥
किसान—जा रहा है सब हमारा धन विदेशों को बहा।
इस ग़रीबी से बचें वो मन्त्र बतलाते नहीं॥ ४॥
मोहन—लो न तुम चीजें विदेशी धन रहे सब देश में।
तुम ग़रीबी से बचो, क्यों चरखा चलवाते नहीं॥ ४॥
किसान—रात-दिन करके भी मेहनत नंगे-भूखे मर रहे।
सुध नहीं लेते हो अब क्या हम तुम्हें भाते नहीं॥ ५॥
मोहन—वीर होकर मरना सीखो, फिर न भूखों से मरो।
जीते-जी मुरदा बने जो, वे मुझे भाते नहीं॥ ५॥
किसान—रात-दिन पिसते हैं हम तो जुल्मो अत्याचार से।
ढूँढ़ते फिरते तुम्हें पर हम कहीं पाते नहीं॥ ६॥
मोहन—स्वाभिमानी तुम बनो आँखें दिखावें कौन फिर।
जानते बलिदान होना, क्यों मुझे पाते नहीं॥ ६॥

किसान—लुट रहे हैं हर तरह से हम अनाथों की तरह ।
करने को रक्षा हमारी चक्र ले धाते नहीं ॥ ७ ॥
मोहन—मर्द हो कर लुट रहे हो ये मुझे अफ़सोस है ।
चाहते रक्षा तो क्यों कर्मण्यता लाते नहीं ॥ ७ ॥
क़िसान—ये विदेशी याँ रहें यह हम न हरगिज़ चाहते ।
दिल से हम कहते हैं 'निर्भय' ये मगर जाते नहीं ॥ ८ ॥
मोहन—चाह से केवल कहीं होता न कोई काम है ।
'निर्भय' हो फटकार दो वे कौन जो जाते नहीं ॥ ८ ॥

---

(६)

भोले-किसान

कवित्त

देश, घर-बार गयौ, भैया-परिवार गयौ
बनी सो बिगार गयौ बुद्धू की गुमानी में ।
हिन्दुन सों छुआछूत, ईसाई के खात जूत,
मियान के पूजें भूत, हद बुद्धिमानी में ।
विधवा विचारी हाय ! घर सों निकारी गई,
औरन की नारी भई, खाक डारी ज्वानी में ।
आपनी हू भेनि-बेटी-रोटी की न रक्षा होति,
'निर्भय' जाते डूबि क्यों न चुल्लू भर पानी में ।

दोहा

किसान पीछे अक़ल के लिए फिरत हैं लट्ठ ।
हानि-लाभ सोचे नहीं करें मरन के ठट्ठ ॥

गज़ल

भोले-भाले अक़्ल के बुद्धू 'किसान' सब कुछ भुला रहे हो ।
सोके ग़फ़लत की नींद गहरी हा! मौत अपनी बुला रहे हो ॥१॥
तेरे दर पर लगा के फेरी सुनाते तुझको तेरे भले की ।
सुनने की भी न तुझको फुरसत ऐसी झपकी लगा रहे हो ॥२॥
दिन-दहाड़े खज़ाने लुट करके जा रहे हैं बिराने घर को ।
अपने हाथों ही अपने घर को दे के अगनी जला रहे हो ॥३॥
पहनते हो विदेशी मलमल वो छींट, तंजेब, सूती अतलस ।
छोड़ि चरखा स्वदेशी-खद्दर अपनी पूँजी गँवा रहे हो ॥४॥
शोक ! आपस में लड़-झगड़ कर गँवाते पैसा अदालतों में ।
वकील, चपरासी, ऐलमद को बन के नादाँ लुटा रहे हो ॥५॥
सहते आये हो मुद्दतों से ज़ुल्मों सख्ती सितम-सितम पर ।
ज़ालिमों को ये ज़ुल्म करना तुमही बुज़दिल सिखा रहे हो ॥६॥
खूँ-पसीना को एक करते हो तब भी रहते हो भूखे-नंगे ।
लूट ले जाते विलायती उनको मालिक बता रहे हो ॥७॥
तुम ही बोते हो, सींचते हो, तुम ही मालिक, ज़मी तुम्हारी ।
बन के बुद्धू कमाई अपनी लुटेरों को तुम लुटा रहे हो ॥८॥

इस तरह बरबाद होने का न तुमको ख्याल बिलकुल ।
इस तरह बेहोश होकर हस्ती अपनी अपना मिटा रहे हो ॥९॥
देख दुनिया की दौड़ सरपट कमर को कसलो ए तुमभी 'निर्भय' ।
गरजो इकमिल बहादुरी से तुमहीं शेरे जहाँ रहे हो ॥१०॥

---

(७)

किसानों की भूल

दोहा

सत्य-पन्थ चाल्यो नहीं, अब रोवै दुख पाय ।
जैसो कीनों भोगि तू, काहे को पछिताय ॥

रसिया

अपने कर्मन को फल भोगे मूरख काहे को पछिताय ॥टेक॥
मूरखता में ऐसो भोयौ—आपस में लड़ि-लड़ि सब खोयो ।
रु दूसरे की चुगली करि लीनौ नास कराय ॥१॥अपने०
सहि-सहि अत्याचार अघाये—ज़ालिम के बड़े रुतबा बढ़ाये ।
ऐसे दव्बू कायर ह्वै गये, बात कहौ घिघियाय ॥२॥अपने०
दै-दै रिशवत अमला बिगारौ—अपनौ सब अधिकार बिसारौ ।
द्वै कौड़ी के चपरासी हु के कर जोरै रिरियाय ॥३॥अपने०
पढ़िबौ-लिखबौ बिरथा जानौ—समझावै कोई एक न मानौ ।
दुनिया की कुछ ख़बर तुम्हें ना, अपनो रहे चलाय ॥४॥अपने०

दोहा

किसान पीछे अक़ल के लिए फिरत हैं लट्ठ ।
हानि-लाभ सोचे नहीं करें मरन के ठट्ठ ॥

गज़ल

भोले-भाले अक़ल के बुद्धू 'किसान' सब कुछ भुला रहे हो ।
सोके ग़फ़लत की नींद गहरी हा! मौत अपनी बुला रहे हो ॥१॥
तेरे दर पर लगा के फेरी सुनाते तुझको तेरे भले की ।
सुनने की भी न तुझको फुरसत ऐसी झपकी लगा रहे हो ॥२॥
दिन-दहाड़े खज़ाने लुट करके जा रहे हैं विराने घर को ।
अपने हाथों ही अपने घर को दे के अगनी जला रहे हो ॥३॥
पहनते हो विदेशी मलमल वो छींट, तंजेब, सूती अतलस ।
छोड़ि चरखा स्वदेशी-खद्दर अपनी पूँजी गँवा रहे हो ॥४॥
शोक ! आपस में लड़-झगड़ कर गँवाते पैसा अदालतों में ।
वकील, चपरासी, ऐलमद को बन के नादाँ लुटा रहे हो ॥५॥
सहते आये हो मुद्दतों से जुल्मों सख्ती सितम-सितम पर ।
जालिमों को ये जुल्म करना तुमही बुज़दिल सिखा रहे हो ॥६॥
खूँ-पसीना को एक करते हो तब भी रहते हो भूखे-नंगे ।
लूट ले जाते विलायती उनको मालिक बता रहे हो ॥७॥
तुम ही बोते हो, सींचते हो, तुम ही मालिक, जमी तुम्हारी ।
बन के बुद्धू कमाई अपनी लुटेरों को तुम लुटा रहे हो ॥८॥

इस तरह बरबाद होने का न तुमको ख्याल बिलकुल ।
इस तरह बेहोश होकर हस्ती अपनी अपना मिटा रहे हो ॥९॥
देख दुनिया की दौड़ सरपट कमर को कसलो ए तुमभी 'निर्भय' ।
गरजो इकमिल बहादुरी से तुमहीं शेरे जहाँ रहे हो ॥१०॥

---

(७)

किसानों की भूल

दोहा

सत्य-पन्थ चाल्यो नहीं, अब रोवै दुख पाय ।
जैसो कीनों भोगि तू, काहे को पछिताय ॥

रसिया

अपने कर्मन को फल भोगे मूरख काहे को पछिताय ॥टेक॥
मूरखता में ऐसो भोयो—आपस में लड़ि-लड़ि सब खोयो ।
करि दूसरे की चुगली करि लीनौ नास कराय ॥१॥अपने०
सहि-सहि अत्याचार अघाये—जालिम के बड़े रुतवा बढ़ाये ।
ऐसे दब्बू कायर ह्वै गये, बात कहौ घिघियाय ॥२॥अपने०
दै-दै रिशवत अमला बिगारौ—अपनौ सब अधिकार बिसारौ ।
द्वै कौड़ी के चपरासी हु के कर जोरै रिरियाय ॥३॥अपने०
पढ़िवौ-लिखवौ बिरथा जानौ—समझावै कोई एक न मानौ ।
दुनिया की कुछ खबर तुम्हें ना, अपनो रहे चलाय ॥४॥अपने०

ऐरे गैरेनु खूब खवाओ–'निर्भय' स्वराज्य में पाँउ न बढ़ाओ।
किसान-सभा के हू तुम मेम्बर अब लों बने हत नायँ ॥५॥अपने०

(८)

किसानों की लूट

वैरिनु भारी कुचालि चली,
घर फोरि कें गौरव तोरि दयौ है ।
नींद, कुबुद्धि, प्रमाद, हराम कौ,
भारी नशा नहिं होश रह्यो है ।
चोर, डकैत लगे ही रहे,
धन सौदुन कौ सब छीनि लयौ है ।
बुद्धनु सूझति ना 'निरभै'
इत लाखन को घर खाक भयौ है ॥

दोहा

चढ़े लुटेरे दल सहित, चहूँ दिशा सों टूटि ।
मूरखता की नींद में सब घर लीनों लूटि ॥

भजन

अब जागो रे कृषिकार हो सब घर उजड़ा जाता है ।टेक
कानून गो पटवारी लूटें—अमीन पेशेकारी लूटें ।
पतरौलहु करि ख्वारी लूटें
द ऐलकार हो, यह क्या अन्धेर खाता है ॥१॥अब जागोरे०

जमींदार कारिन्दा लूटें—बौहरे अरु छल-छन्दा लूटें।
थानेदार गरिन्दा लूटें
मुखिया नम्बरदार हो, कोई फ़रेब फैलाता है ॥२॥अब जागोरे०
कर महसूल अति लगान लूटें—टैक्स रसन्ना दुकान लूटें।
कोर्ट फ़ीस बे प्रमान लूटें
चपरासी चौकीदार हो, कोई सिपाही सताता है ॥३॥अब जागोरे०
वकील और बैरिस्टर लूटें—कानूनी मुख़्तार लूटें।
रिशवत-खोर सिकत्तर लूटें
जो अमला मक्कार हो तुम्हें लूट-लूट खाता है ॥४॥अब जागोरे०
साटन, वुक बजारी लूटें—साड़ी सुघर क़िनारी लूटें।
विदेश के व्यापारी लूटें
चटक, मटक रँगदार हो, कोई नई वजै लाता है ॥५॥अब जागोरे०

---

(९)

घूस-खोर पटवारी

दोहा

तू कित में भूलौ फिरै झूठे गर्व गँवार।
तेरे कुकरम ही तुझे कर देंगे बिस्मार॥

रसिया

तेरे कर्मनु को मरोरा काहु दिन लै वैठेगो तोय ॥टेक॥
तू तौ जान मौज उड़ाइ रह्यो स्वारथ में रह्यो भोय ।
अरे अधरमी तू तौ अपनी रह्यो आक़बत खोय ॥१॥तेरे कर्मनु०
काहु शिकमी कौ खातौ बाँधै असली कों दै खोय ।
बिन जोते ही टीप करै जापै झूंठी नालिश होय ॥२॥तेरे कर्मनु०
मिलै तगाई तब तू मांगै फसलानौ हू ढोय ।
छूट मुल्तवी परचन हू पै अंटी लेतु टटोय ॥३॥तेरे कर्मनु०
आपस में तू हमें लड़ावै इत की उत में पोय ।
दोउ ओर ते खाइ हरामी देइ बीज विष बोय ॥४॥तेरे कर्मनु०
अफ़सर को खुश करिवे तेरी 'हाँजू-हाँजू' होय ।
झूंठी पैदावारी लिखि देइ हमकों धरि देइ धोय ॥५॥तेरे कर्मनु०
कलम कसाई होहि पटवारी दुनिया कहि रही रोय ।
नमकहरामी मिलि कैं मारै नैया देइ डुबोय ॥६॥तेरे कर्मनु०
जितनी तेरी देखी करनी उतनी भरि रहीं खोय ।
गरौ काटि कैं तू दीनन कौ हाथ मलैगो रोय ॥७॥तेरे कर्मनु०
पहले से अनजान रहे नहिं सम्हरे 'निर्भय' होय ।
छोड़ि कायरी करें संगठन सींगु दिखाइ दें तोय ॥८॥तेरे कर्मनु०

(१०)

धन की माया

दरिद्रता

कवित्त

छोड़े सुत बन्धु प्यारे हितू और नातेदार
पास नहिं आवैं पास जाए ते दुख्यावते ।
नारी हू विचारी नित रहित दुखारी भारी
होति अति ख्वारी वारे लाल दुख पावते ।
'आलसी, निकाम विन दाम के हरामी' कहैं
'पाजी बेईमान' नर 'मूरख' बतावते ॥
सोचै 'निरभीक' यह जानी मैंने सांची बात
दारिद न होत तो न नाम ये धरावते ॥१॥

चन्दगी

कायर कुरूप होहि कूर औ कुटिल कामी
नामी बदनामी पावै रोगी महा गन्दगी ।
मूरख अजान महा सदा बेईमान रहा
और तो बतावें कहा नाहें शरमिन्दगी ।
एते हू पै होहि धनवान तो सुजान कहें
बुद्धि के निधान !कहें वाह तेरी जिन्दगी ।

कहै 'निरभीक' ठीक छानि यह जानी बात
देखी है जहान बीच 'चन्दगी' की बन्दगी ॥२॥

---

(११)

अत्याचारी बोहरे

दोहा

हम ही से धन लूटि के बने धनी सरदार ।
अब हम ही पर बौहरे करते अत्याचार ॥

भजन

बौहरे करते अत्याचार ।
हम ही से पूँजीपति बनकर करते दुर्व्यवहार ।
हम दीनों की जनम-कमाई जिनके सुख का सार ॥१॥बौहरे०
मनमानी लें व्याज-त्याज अरु लें गेहूँ दे ज्वार ।
लें बढ़ती, दें कम, दीनों को सब विधि करते ख्वार ॥१॥बौहरे०
अपने ऐशोअशरत में वे फूँकें हाल हजार ।
अन्न न मिलै पेट भरि हमको तन ते रहें उघार ॥३॥बौहरे०
बेईमान होंहि सुख भोगी हम रहें दुखी अपार ।
'निर्भय' इन धनिकों से कर दे कृषकों का उद्धार ॥४॥बौहरे०

दोहा

लोभी, लोलुप स्वारथी, दीननु करें तबाह ।
लै लूटा जो देश के सोइ कहावत साह ॥

रसिया

बौहरे है गए देश लुटेरा हम तो दीने गरद मिलाय ।

लैवे जाहिं तो पखवारे लौं घर पै लेतु फिराय ।

तब कहुँ बड़े मिजाजनु ते वे देखें निगाह उठाय ॥१॥बौहरे०

कम दें बढ़तो लेहिं निर्दयी उलटो भाव लगाय ।

सरी-गरी चाहि होहि असैली देहिं एक ही भाय ॥२॥बौहरे०

पांच रुपैया दें पचास कौ कागदु लै लिखवाय ।

मनमानी वे डौढ़ी-दूनी ब्याज लेत लिखवाय ॥३॥बौहरे०

भूखे-नंगे राति दिना करि लेहिं जो फ़सल कमाय ।

जम के से गन गिरैं बौहरे चारौ ओर ते आय ॥४॥बौहरे०

राशि होत ही खरियान ही में सबरी लेतु तुलाय ।

भुस कांकस जे कछू न छोड़ें लै जाहि सबै ढुवाय ॥५॥बौहरे०

पेट बाँधि के बरस दिना ते सब घरु रह्यौ कमाय ।

इतने हू दाने नहिं छोड़े एक दिना लें खाय ॥६॥बौहरे०

फिरि हिसाब करि औने-पौने ब्याज पै ब्याज लगाय ।

इतने जोरें सात जनम हू हम ना सकें चुकाय ॥६॥बौहरे०

लै लूटा तो साह बने हैं 'निरभै' मौज उड़ाय ।

'साम्यवाद' होहि भारत में तब सब मालुम परि जाय ॥८॥बौहरे०

---

(१२)

बैलों की पुकार

दोहा

दें किसान को सर्व सुख महनत करें अपार ।
परि हम हीं को सुख नहीं, रूठि रह्यो करतार ॥

रसिया

सवरे काम करें मालिक के हम पै क्यों रूठे करतार ।
रात-दिना हम लगे रहें तौउ मालिक करे न प्यार ।
बड़े-बड़े दुख देहि निर्दयी कर देहि माटी ख्वार ॥१॥सवरे०
भैंसिनु कूँ तो बाट बनौरे सानी दै दै चार ।
हमें अभागेनु तो भरि-पेट हू सूखो मिलै न न्यार ॥२॥सवरे०
कीच-खाँच में डरे रहत हैं सूखीऊ करैं न सार ।
जाड़ेनु में हम थर-थर काँपै सीरी घुसि जाइ ब्यारि ॥३॥सवरे०
दुबले है जाहिं मारि-मारि के तोरि देत पसवारि ।
जेठ मास में घर हू न बांधैं बाहर देत निकारि ॥४॥सवरे०
बूढ़े दुर्बल होहिं काम में जब हम जाते हार ।
बेचि कसाइन कों देहि निर्दयी हाल कटावत नारि ॥५॥सवरे०
जो जीवन आधार तुम्हारे तिन्हें ही करो बिस्मार ।
'निर्भय' फेरि कौन से ढंग ते करि लेउगे उद्धार ॥६॥सवरे०

(१३)

सब सुखी किसान दुखी

दोहा

तुम सब ही सुख ते रहो मारि बिराने माल ।
हम पृथिवी-पति फेरि हू रहते हैं कंगाल ।।

रसिया

तुम सब ही रहौ सुखारे—हम ही क्यों रहे दुखारे ।।टेक।।
हैट-बूट और सूट पहनते उड़े फिरौ तुम मोटर में ।
बिस्कुट-चाय-शराब उड़ाते लगाते टोटल होटल में ।।
बाबूजी को चैन पड़े नहिं चैन-घड़ी बिन डारे ।।१।।तुम सब०
जन्डैल, कन्डैल, लाठि, कमिश्नर, जज, वकील बैरिस्टर हो ।
रायबहादुर, सी० आई० ई० शाहन्शाह मिनिस्टिर हो ।।
फूली-फूली खूब मारि रहे, है रहे तुम मतवारे ।।२।।तुम सब०
सेठी-साहूकार बने तुम, बड़े-बड़े घर बना लिये ।
अपने ऐश अरु अशरत में हाय लाख करोडों गँवा दिये ।।
है ग़रूर में चूर मगन हो बैठि मसन्द सहारे ।।३।।तुम सब०
सन्त-महन्त बनि संडे-मुंडे खूब उड़ावें गुल-छर्रे ।
रास-बिहार करें मन्दिर में रचे कमाई के ढर्रे ।।
लीडर मस्त लीडरी में हैं, हम ही लुटें बिचारे ।।४।।तुम सब०

तुम ही भोगो भोग बिराने घर से मालामाल रहे ।
खून पसीना एक करें हम फिर हू हाय, कंगाल रहे ॥
अन्न के दाता सब के हम ही भूखे करें गुजारे ॥५॥तुम सब०
हम किसान हो जो न कमावें हैट-बूट सब धरे रहें ।
बने शाह जज लाठि बहादुर सेठ एक लंग परे रहें ॥
'निर्भय' फाँकत फिरो धूरि सब मरौ भूख के मारे ॥६॥तुम सब०

---

(१४)

पूर्व काल में किसानों की दशा

(हिन्दू-सम्राट चन्द्रगुप्त के राज्य में)

दोहा

था जब भारतवर्ष में चन्द्रगुप्त सम्राट् ।
सदा किसानों को रहा, सुख-आनँद का ठाठ ॥

छन्द

एक यूनानी राजदूत था चन्द्रगुप्त का दरबारी ।
उसने उनके राज्य-काल को लिखी कैफ़ियत है सारी ॥१॥
खेती-निस्बत हाल लिखा है उसने बड़ी बड़ाई का ।
सभी राज्य भर में था काफ़ी बन्दोबस्त सिंचाई का ॥२॥

इस कारण सर्वत्र देश में कभी अकाल न होता था ।
दुख-दारिद्र समन्दर में कोई खाता कभी न गोता था ॥३॥
होते रहते युद्ध सदा ही फौजें आती जाती थीं ।
किन्तु किसानों की खेती में हानि न होने पाती थी ॥४॥
चन्द्रगुप्त के सुखद राज्य का बहुत बड़ा विस्तार रहा ।
न्याय नीति का सुख सुराज था सदा प्रजा पर प्यार रहा ॥५॥

मुग़ल-राज्य में

दोहा

अब से पहले कृषक सब, करते सुख से बास ।
और उठा के देख लो, मुगलों का इतिहास ॥
मुग़लों के साम्राज्य-समय को लोग बुरा बतलाते हैं ।
किन्तु किसानों को कैसा था इसे भूल ही जाते हैं ॥ १ ॥
और ही और कारणों से जो मुग़ल-राज्य बदनाम रहा ।
उसी राज्य में कृषि-कारों को सब ही सुख-आराम रहा ॥ २ ॥
अब से लाख गुने सुख में थे सब इतिहास बताते हैं ।
उसी ज़माने की कुछ बातें तुम को आज सुनाते हैं ॥ ३ ॥
अन्न, वस्त्र, घी, दूध सभी का सबको सदा सुकाल रहा ।
हिन्दू और मुग़ल-शासन में भारत मालो-माल रहा ॥ ४ ॥

तीस सेर का घी मिलता था खिलजीशाह-जमाने में।
साढ़े सात सेर थी मिश्री आती सोलह आने में॥ ५॥
औरंगजेबी में चावल रुपये के आठ मन आते थे।
लिखा आईन अकबरी में है गेहूँ चारि मन पाते थे॥ ६॥
क्योंकि नेकनीयत रहती थी बादशाह दीवानों की।
सदा सोचते रहते थे वे उन्नति, वृद्धि किसानों की॥ ७॥
खूब जानते थे कि प्रजा ही आश्रय राज धनी का है।
यही एक स्थायी जरिया शाही आमदनी का है॥ ८॥

गज़ल

यह प्रान है हमारी प्यारी प्रजा हमारी।
सुत के समान पालैं यह तो हैं जां हमारी॥ १॥
ये ही है राज्य की जड़ आमद का खास जरिया
खुशहाल यह रहें तो पूरी नफ़ा हमारी॥ २॥
पाते हैं ऐशोअशरत रियाया ही की बदोलत
इसके ही बल पै रहती शौक़त जहाँ हमारी॥ ३॥
पावे न यह मुसीबत यह फ़र्ज़ है हमारा
'निर्भय' सुखी रियाया रखना खुदा हमारी॥ ४॥

दोहा

इसीलिए निज प्रजा की, करते थे परवाह।
सभी नौकरों पर सदा रखते कड़ी निगाह॥

छन्द

जबकि नया दीवान मुक़र्रर हो सूबे में आता था।
बादशाह की सख्त हिदायत लिखी सनद में पाता था ॥ ९ ॥
सबसे मुख्य तरक़्क़ी करना तुम खेती के कामों में।
प्रजा किसानों की आबादी खूब बढ़ाना गाँवों में ॥ १० ॥
करो हर तरह मदद और उत्साहित प्रजा हमारी को।
सच्चे दिल से करैं तरक़्क़ी अपनी खेती-बारी को ॥ ११ ॥
कोई किसान न कष्ट उठावे जुल्म अनीति मरोरों पर।
अत्याचार न करने पावे जोराबर कमज़ोरों पर ॥ १२ ॥
सख्ती और तंगी न करो तुम कभी लगान वसूली में।
काबिल सज़ा गिने जाओगे थोड़ी हुक्मअदूली में ॥ १३ ॥
अगर पुराना लगान बाक़ी किसानों पर रह जाता था।
शाहंशाह के हुक्म-मुताबिक तंगी कोई न पाता था ॥ १४ ॥
आसानी से वसूल करना रखकर ख्याल रियाया का।
यानी पाँच फ़ी सदी लेना तुम हर फ़सल बक़ाया का ॥ १५ ॥
रुपये-पैसों में न मुक़र्रर था लगान कृषिकारों का।
किन्तु लगान लिया जाता था हिस्सा पैदावारी का ॥ १६ ॥
ऐसी सूरत में सरकारी सब लगान चुक जाता था।
कृषिकारों पर प्रायः बक़ाया कभी न रहने पाता था ॥ १७ ॥
अगर किसान न भी दे सकता था लगान जो सरकारी।
किया बेदखल नहीं जाता था, था क़ानून ऐसा जारी ॥ १८ ॥

सुखी किसान सदा रहते थे खूब मुनाफा पाते थे।
अब के से भेज वसूली में वे तंग न किये जाते थे ॥ १९ ॥
अगर कभी गांवों में हो कर शाही फौज गुजरती थी।
नुकसान किसानों के खेतों का रस्ते में जो करती थी ॥ २० ॥
उसका तखमीना ठीक लगा उतना लगान कम लेते थे।
या हरजे की उसी वक्त ही रकम अदा कर देते थे ॥ २१ ॥

दोहा

कहते औरंगजेब को जालिम अरु बद टेक।
किन्तु किसानों के लिए, था वह कैसा नेक ॥

छन्द

*सन् तिहत्तर में औरंगजेब ने इक फरमान निकाला था।
जिसमें चौअन चीजों पर महसूल माफ कर डाला था ॥ २२ ॥
यह भी थी ताकीद उसी में शाही नौकर पेशों को।
सूबेदार, जमीदारों को नाजिम करद-नरेशों को ॥ २३ ॥
कृषिकारों से किसी किस्म की जबरन कभी न की जावे।
भेट, घूस, बेगार नाजायज रकम न कोई ली जावे ॥ २४ ॥
फौजदार तहसीलदारों को था हुक्म ये थानेदारों को।
किसी तरह का कष्ट न होने पावे काश्तकारों को ॥ २५ ॥

---

*सन् १६७६ ई०

सख्ती, तंगी, जबरन की जो किसी ने आ दरख्वास्त दिया ।
सुनी शिकायत जिस नौकर की फ़ौरन ही बरखास्त किया ॥ २६ ॥
इसी समय की मुग़ल-राज्य की घटना एक सुनते हैं ।
शाहंशाह थे शाहजहाँ जब तब का हाल बताते हैं ॥ २७ ॥
एक दिन शाहंशाह ने सारे कागज़ात थे मँगवाये ।
माल मुतल्लिक क़ाग़ज़ात को अपनी जाँच में वह लाये ॥ २८ ॥
एक गाँव की वसूलयाबी शाही जाँच में जब आई ।
पिछली मालगुज़ारी से वो कई हज़ार ज्यादा पाई ॥ २९ ॥

दोहा

लेकिन लालच ने नहीं, कीना वहाँ मुकाम ।
अब जैसे दीवान को दीना नहीं इनाम ॥

छन्द

वहीं रुक गये बादशाह चहरे का रंग निराला था ।
तलब किया सहदुल्लाखाँ को जो दीवानेआला था ॥ ३० ॥
पूछा बादशाह ने उससे, "हुआ हुकम कब जारी ये ।
अब के इतनी किस कारण से बढ़ गई मालगुज़ारी ये" ॥ ३१ ॥
इस साल गाँव के दरिया ने पीछे हट रकबा छोड़ दिया ।
ज्यादा हुआ वसूल इसीसे सादुल्ला ने अर्ज़ किया ॥ ३२ ॥
"साक़ी के पास की यह ज़मीन थी"—यह जाना तब चिल्लाकर ।
शाहंशाह सादुल्लाखाँ से बोला रिस में झल्ला कर ॥३३॥

इस जमीन के पास अगर है वह जमीन जो माफी है ।
फिर तो इसका लगान लेना बिल्कुल बे इन्साफी है ॥ ३४ ॥
वहाँ की विधवाओं और अनाथ दीनों की आहोजारी पर।
इस जमीन का पानी सूखा था उनकी लाचारी पर ॥ ३५ ॥
यह थी उनको देन खुदा की इससे था उनका जीना ।
गुनहगार हो राज्य के लिए तुमने उसको क्यों छीना ॥ ३६ ॥

गज़ल

दीनों पै रहम करने ही इन्सान याँ हुआ ।
तुम ने भुलाया फर्ज को इन्साफ क्या हुआ ॥१॥
जुल्मो-जबर का करना ये शैतान का है काम ।
वह ही तुम्हारी अक़्ल पर परदा पड़ा हुआ ॥२॥
किया खुदा के गज़ब का भी खौफ कुछ नहीं ।
दिल गुनाहों में तेरा ऐसा फँसा हुआ ॥३॥
ताकीद थी न जुल्म हो हरगिज़ ग़रीब पर ।
अफ़सोस तेरी अक़्ल को क्या जाने क्या हुआ ॥४॥

छन्द

अगर खुदा के बन्दों के हित मुझमें दया नहीं होती ।
तो उस ज़ालिम फ़ौजदार को फाँसी आज यहीं होती ॥ ३७ ॥
अब केवल बरखास्त ही करना काफ़ी उसे सज़ा होगी ।
दूसरों को आगाही आयन्दा न कज़ा होगी ॥ ३८ ॥

जितना ज्यादा लगान आया वह हिसाब सब समझा दो ।
जिन-जिन से वसूल हुआ है फौरन उसको लौटा दो ॥ ३९ ॥
"निर्भय" कैसे थे इन्साफी पूर्व काल के शासक ये ।
अब का अजब रवैया कैसा है किसान का नाशक ये ॥ ४० ॥

दोहा

मुहर रुपे के फर्क हैं तब और अब के राज ।
तब किसान सुख भोगते, अब दुख रहे बिराज ॥

---

(१५)

किसान पन्थ

सवैया

धंधे सबै विस्मार किये,
"निरभै" दुख दै धन धाम हमारे ।
लै गई ढोय विलायत ही सब
भारत लूटि खजानो भर्यो रे ॥
तंग तबाह की आह भरैं हम
बोधे रवैया ने नाश कर्यो रे ॥
स्वारथ-अन्ध अनीति करैं नित
चाहें किसान तो भार पर्यो रे ॥

दोहा

स्वारथ में अंधे हुए अब के नौकर शाह ।
चाहे हम भूखे मरें इनको क्या परवाह ॥१॥
भूखे नंगे रहि सहें अत्याचार महान ।
आज-काल में सब तरह, रहते दुखी किसान ॥२॥

छन्द

उनको रुपये से मतलब है, चाहे नित काल-दुकाल परें ।
नहीं किसानों की परवा है भूखे चाहे बिन काल मरें ॥ १
लूट-लूट कर माल हमारा और सभी ले जाते हैं ।
हम निशि-दिन की मिहनत पर भी सदा दुःख ही पाते हैं ॥ २
हम बरबाद हो गये जब से अजब रवैया आया है ।
सभी तरह से हमें लूटने पूरा जाल बिछाया है ॥ ३
बरबादी से बचना चाहो जोर-जुलम अन्धेरों से ।
जानो माल की चाहो हिफ़ाजत अपना अगर लुटेरों से ॥ ४

दोहा

अरु चाहो आनन्द सुख, हो दुख का अवसान ।
करो यतन इस देश में, चाले पन्थ-किसान ॥

छन्द

पन्थों के इस मुल्क हिन्द में किसान-पन्थ भी चल जावे ।
हो संगठन किसानों का वो जिससे दुनियाँ हिल जावे ॥ ५ ।

गाँव-गाँव में बास करे इस पन्थ का होहि पुजारी जो ।
"बाबा किसान-दास" कहलावे सब का सेवाकारी जो ॥ ६ ॥

हर गाँव में एक किसान-कुटी हो प्रचारक शुद्ध सचाई की ।
उसमें मन्दिर, तहँ मूर्ति रहे धरती-माँ, भारत-माई की ॥ ७ ॥

पूजा करे पुजारी नित प्रति पूजनीय जग-त्राता की ।
श्रद्धा, भक्ति समेत उतारे दिव्य आरती माता की ॥ ८ ॥

उसी कुटी में किसान सेवक रहकर मगन निवास करें ।
टुकड़े माँगि करैं नित भोजन और न कोई आस करें ॥ ९ ॥

निस्स्वार्थ निर्वैर सभी से राग-द्वेष का त्याग करें ।
लगे रहें कर्त्तव्य-कर्म में फल से सदा विराग करें ॥१०॥

अपना सर्वस प्रिय जीवन तक उनके हेतु निसार करें ।
सदा ईश से यही विनय हो—कृषकों का उद्धार करें ॥११॥

रात-दिना बस बाबा उनकी सोचैं बात भलाई की ।
उन्हें पढ़ावें शिक्षा दें सिखलावें रहन सफाई की ॥१२॥

उनका दृढ़ संगठन करें अरु मिल कर रहना सिखलावें ।
खद्दर की महिमा समझा कर घर-घर चरखा चलवावें ॥१३॥

पूरी करें जरूरत उनकी रहैं तयार हिमायत को ।
पूरी कोशिश कर के उनकी कर दें दूर शिकायत को ॥१४॥

दोहा

पुलिस, अदालत, ओहदे, मुखिया, नम्बरदार ।
करने कोई पावै नहीं उन पर अत्याचार ॥

छन्द

सुखकारी इस किसान-पन्थ का नियमित एक कर्म होवे ।
गाँव-गाँव में किसान-सभा का होता मुख्य धर्म होवे ॥१५॥
हर किसान हो मैम्बर उसका फर्ज ये वृद्ध जवानों का ।
सभा की आज्ञा पालन करना हो यह धर्म किसानों को ॥१६॥
जो किसान मैम्बर न बने जो गाँव सभा नहीं बनवावे ।
वह किसान और वही गाँव बस धर्म-विमुख समझा जावे ॥१७॥
किसान-पन्थ के धर्म-मुताबिक सभा गाँव प्रति बन जावे ।
गाँव-गाँव में कथा बचे कर्त्तव्य किसानन सिखलावे ॥१८॥

किसानों का कर्त्तव्य

कभी न पहनो वस्त्र विदेशी देकर आग जलाओ तुम ।
घरू शुद्ध खद्दर ही पहनो चरखा-चक्र चलाओ तुम ॥१९॥
ब्याह-काज में फिजूल-खर्ची बिल्कुल बन्द कराओ तुम ।
कभी न झूठी देहु गवाही सत्य पन्थ अपनाओ तुम ॥२०॥
घर-घर में और गाँव-गाँव में किसान-पन्थ गुन गाओ तुम ।
वैर-भाव और फूट-कुमति ये सब को दूर भगाओ तुम ॥२१॥

आपस में कर मेल सुमति से दृढ़ संगठन दिखाओ तुम ।
गाँव-गाँव में निर्भय होकर किसान-सभायें बनाओ तुम ॥२२॥
अपने अनजान भाइयों को नित हित की बात बताओ तुम ।
किसान-सभा के मैम्बर बनकर अपने दुःख मिटाओ तुम ॥२३॥
सहो कभी ना जुल्म किसी के, रिश्वत नहीं खिलाओ तुम ।
कायरता, दब्बूपन छोड़ो 'वीर-किसान' कहाओ तुम ॥२४॥
इस प्रकार से किसान-बाबा निज कर्त्तव्य निभा लेवें ।
भूमि और नभ-मंडल तक में अपनी धूम मचा देवें ॥२५॥

भविष्य

गांव-गांव में गूँज उठे तब—"बाबा दास अनूठे हैं—
सच्चा पन्थ किसानों का है और पन्थ सब झूठे हैं" ॥२६॥
जिस दिन "निर्भय" इसी तरह दृढ़ काम किसानों का होगा।
निश्चय है बस उसी दिवस उद्धार किसानों का होगा ॥२७॥
साम्यवाद गूँजे, आपस में प्यार किसानों का होगा ।
पड़ा दुःख सागर में बेड़ा पार किसानों का होगा ॥२८॥
चलेगा पन्थ किसानों का शुभ भाग्य किसानों का होगा ।
अवतार किसान-दास होगा उद्धार किसानों का होगा ॥२९॥
अपने अन्न-कमाई पर अधिकार किसानों का होगा ।
है किसान ही पृथ्वी-पति गुंजार किसानों का होगा ॥३०॥

फिर भारत-भू-मंडल पर साम्राज्य किसानों का होगा ।
अधिकार किसानों का होगा, संसार किसानों का होगा ॥३१॥

---

(१६)

किसान-पन्थ का परिणाम

दोहा

हरे-भरे सब दिन रहो,—सुख-सम्पत्ति की खान ।
मान लिया यदि आपने, सुख-प्रद पन्थ-किसान ॥

भजन

तुमने मानलिया, यदि सुखप्रद पन्थ-किसान ॥टेक॥
गलकर बीज वृक्ष होता है जानत सभी किसान ।
इसी भाँति भारत-माता-हित कर दो निज बलिदान ॥
सुपथ पहिचान लिया ॥ तुमने मान० ॥१॥
जो तुम पर निशि-दिन करते हैं अत्याचार महान ।
पूंजीपति, नौकरशाही का मिटि जाइ नाम-निशान ॥
सुदृढ़ प्रण ठान लिया ॥ तुमने मान० ॥२॥
ऊँच-नीच का भेद मिटे सब बहे प्रेम की धार ।
साम्यवाद गूँजे भारत में सब के सम अधिकार ॥
रहेंगे जान लिया ॥ तुमने मान० ॥३॥

उत्साही साहसी बनोगे "निर्भय" तुम बलवान ।
'काले कुली गँवार' रहो ना करे विश्व सम्मान ॥
तत्व यह छान लिया ॥ तुमने मान० ॥४॥

---

(१७)

फूट का दुष्परिणाम

दोहा

बने बिगाड़े कुमति ने, देखे सब इतिहास ।
घर में वैर बसाइके, अपना किया विनास ॥

भजन

दुःख कहु किसने नहिं पाया, भाई कर आपस में वैर ॥टेक॥
रावण ने मत बुरा बिचारा—भ्रात विभीषण को फटकारा ।
बना बनाया खेल बिगारा ।
लंक गढ़ अपना जलवाया—और रही न कुल की खैर ॥दु०॥१
बाली ने सुग्रीव निकारा—गया राम के शर से मारा ।
महाभारत भी खूब निहारा ।
नाश दुर्योधन करवाया—गई घर में जंग की ठैर ॥दु०॥२
जयचँद कैसी नमक हरामी—परदेशिन की करी सलामी ।
भारत के सिर दई गुलामी ।
दुष्ट ने कैसा गजब ढाया—जाने घर में घुसाइ लिये गैर ॥दु०॥३

रही-सही जो बात हमारी—मानसिंह ने गैन बिगारी।
सभी तरह करवाई ख्वारी।
बुरे दिन भारत पर लाया—जाने दे दिया सब को जहैर ॥दु०॥४
सोच-समझ लो किसान भाई—फूट कुमति दे नाश कराई।
और न कछु जा ते दुखदाई।
धूलि में मिलि जइहै काया—भाई सुमती किये बगैर ॥दु०॥५

---

(१८)

सुमति

दोहा

शत्रु-शालिनी विजयिनी बाधा विघन हटाइ।
वीरों को सुखदायिनी सुमती दई बनाइ॥

भजन

वीरों को सुखदा सुमति बताई है।
असफलता का रोग भगाती अजब दवाई है ॥टेक॥
जहाँ सुमति तहँ सम्पति नाना तुलसिदास ने बतलाया।
वेद, पुरान, धर्म-ग्रन्थों में सब में यही पता पाया॥

छान-बीन कर जितनी देखी ईश्वर की विस्तृत माया।
चार पदारथ देनेवाली देखा अपनी ही काया ॥
पूर्वजों के इतिहास देख लिये सब में यही पता पाया।
राजनीति सामाजिक देखी यहाँ भी वही नज़र आया ॥
रात-दिना की वस्तु बरतनी सब में यही पता पाया।
सब के अन्दर देखा-भाला सब में मिली एक छाया ॥
सब के सुक्ख सफलता-साधन-सुमति-सचाई है ॥ वीरों को० ॥१॥

प्रथम ईश की माया पर हो सोचैं सज्जन ध्यान धरैं।
ब्रह्म, प्रकृती, जीव जगत के रचने का सामान करैं ॥
पाँच तत्व गुन तीनि प्रेम सों सब ही एक मिलान करैं।
रचै जगत औ चले नियम से सब सुमती का गान करैं ॥
अपना-अपना काम सुमति से सदा चन्द्र और भान करैं।
देखो अद्भुत खेल सुमति के विजयी का सब मान करैं ॥
ईश्वर की रचना-रचना में सुमति समाई है ॥ वीरों को० ॥२॥

अपनी इस काया को देखो जिसमें सब आराम करैं।
हाथ-पाँव इन्द्री सब पुरजा सदा सुमति से काम करैं ॥
कोई भी जो कुमति कमावै आलस और हराम करैं।
उसी वक्त हो शरीर रोगी औरों को बदनाम करैं ॥
फिर भी एक सूत में होकर बन्दोवस्त तमाम कर
सब शरीर हो सुखी आतमा मुक्ती धाम मुकाम करैं ॥

सब विधि कर दे अचल ये सो दृढ़ताई है ॥ वीरों को ॥३॥
इतिहासों पर नजर करो अब पहले से अब तक भाई ॥
रामचन्द्र थे चार भ्रात तुम देखो उनकी एकताई ।
राज त्यागि वन में दोउ भाइनु जीता रावन बलदाई ॥
पांडव पांच सुमति के संगी चक्रवर्ती हुए सुखदाई ।
चार करोड़ ही अंग्रेजों की उदय-अस्त फिरती दुहाई ॥
कछुक सुमति गांधी ने साधी गया शोर जग में छाई ।
नीचे से ऊंचा हो चमके ये प्रभुताई है ॥ वीरों को० ॥४॥

अपने-अपने काम रोज़ के ही पर गौर करो, प्यारे ।
एक सुमति स्वर के बिन होते बिगड़ जात गाने सारे ॥
निरी ईंट की भींति न बनती विना लगे सुमती गारे ।
नरांहुली सुमती के बिन ही हल-जूआ रहते न्यारे ॥
सुमति गड़ैरो बुद्धि गरीली निधरक पैर चले प्यारे ।
सींक-सींक बँधि सुमति डोर से शुद्ध करे घर सुखकारे ॥
तृण-तृण से हो रस्सा सुमति का बँध जाते गज मतवारे ।
मिले सुमति से विजय शत्रु पर बजैं जीत के नक्कारे ॥
निर्धन होकर बिचरैं जिनने ये अपनाई है ॥ वीरों को० ॥५॥
ये सब बातें सोच समझ लो मेरे तुम किसान भाई ।
फूट कुमति सब दूर भगादो सुमति गहो अति सुखदाई ॥
दृढ़ संगठन करो तुम मिलकर यही मन्त्र है बलदाई ।

दुख, दारिद्र, अनीतों पर तुम निश्चय लेहु विजय पाई ॥
निज अधिकारों के अधिकारी होहु, भीरुता मिटि जाई ।
'निर्भय' कहे स्वराज्य मिलेगा करो भरोसा दृढ़ताई ॥
असम्भव को सम्भव कर देती सो फलदाई है ॥ वीरो को० ॥६॥

---

(१९)

किसानों का इरादा

गजल

किसानों को हक़ पै फ़िदा देख लेना ।
आज़ादी के सारे समाँ देख लेना ॥ १ ॥
खड़े होंगे अपने ही पैरों के बल पर ।
रहेंगे न जेरे जहाँ देख लेना ॥ २ ॥
करके दिखा देंगे अपनी तरक्क़ी ।
कि पहले जहाँ थे वहाँ देख लेना ॥ ३ ॥
हुआ कांग्रेस का मुखिया 'जवाहर' ।
किसानों की अबके अदा देख लेना ॥ ४ ॥
कमाई न देंगे विदेशों को अपनी ।
जो ज़ालिम के तीरो कमाँ देख लेना ॥ ५ ॥

जलाकर विदेशी को पहनेंगे खद्दर।
मैन्चैस्टर के उजड़े मकाँ देख लेना ॥ ६ ॥

रही फूलती और फलती जो हमसे।
विलायत में अब के खिजाँ देख लेना ॥ ७ ॥

करें संगठन हम बढ़ावेंगे जुर्रत।
तो जल्दी ये होंगे विदा देख लेना ॥ ८ ॥

'निर्भय' किसानो के दिल का इरादा।
गुलामी से हमको रिहा देख लेना ॥ ९ ॥

---

(२०)

किसानों का निश्चय

गज़ल

हम हैं ज़मी पर तुम रहना फ़लक़ पर।
आख़िर हमीं होंगे रोशन ख़लक़ पर ॥ १ ॥

हरगिज़ रुकेंगे न रोके किसी के।
मशीनें लगादो हमारे हलक़ पर ॥ २ ॥

गुनाहों की खेती है जुल्मों का सहना।
सीखा है मरना किसानों ने हक़ पर ॥ ३ ॥

बेकार होंगे ये तोपो-तमंचा ।
हमें तो भरोसा है अपने सबक़ पर ॥ ४ ॥
ज़ालिम समझ ले है पलटा ज़माना ।
ग़लती न खाना तू उलटी बहक पर ॥ ५ ॥
'निर्भय' ये ज़ालिम मिटेंगे जहाँ से ।
हमीं हों ज़मीं पर हमीं हों फलक़ पर ॥ ६ ॥

---

(२१)

ना समझ सजनी

दोहा

प्रीतम के प्रतिकूल चलि, करती हो अपघात ।
क्यों सजनी बौरी भई, करे अनहोनी बात ॥

तज गारी

क्यों करै अन होनी बात, समझि नेंक हरे-हरे समझि नेंक एरी सजनी ॥ टेक ॥
तुम्हरे प्रीतम नाज कमावैं मिहनत करें अपार ।
करौ पीसनौ तक हू तुमना पीसति चून चमार ॥
आलसी निकम्मीं बनी ॥ क्यों करै० ॥ १ ॥

बड़ी मुसीबत ते पिउ तेरे पैदा करें कपास।
तुम चरखा तक हू नहिं कातौ करति बिरानी आस॥
अक़ल की हो ऐसी धनी॥ क्यों करै०॥ २॥
पिया तुम्हारे खद्दर पहनें मोटी घरू बुनाइ।
ठेठि विलायत की तुम झीनी साड़ी लेति मँगाइ॥
शरम सब खोई अपनी॥ क्यों करै०॥ ३॥
देश-भक्त सब के हितकारी प्रीतम पूज्य तुम्हार।
ऐसे साजन छोड़ि निगोड़ी पूजति मियाँ-मदार॥
कुमति तेरे ऐसी ठनी॥ क्यों करै०॥ ४॥
पति के हित में हितु है तेरौ डारि कुमति पै धूरि।
'निर्भय' पति अनुकूल चलौ तो सब दुख है जाहिं दूरि॥
सदा रहो सुमति सनी॥ क्यों करै०॥ ५॥

---

(२२)

समझदार सजनी

रसिया

मैं तो करूँगी स्वदेशी सों प्यार सजन मोहि खादी की चुदरिया
लाइ दीजो॥ टेक॥
विदेशी ना पहरूँ—इनहुँ कों देहुँ पजार॥ सजन०॥ १॥

घरू बनौरे खेत में—बइ देउ बीघाचार ॥ सजन० ॥ २ ॥
चरखा कातूँ प्रेम सों—काढूँगी नहनौ तार ॥ सजन० ॥ ३ ॥
हम-तुम पहनें खद्दरा—घर ही में करें बुनार ॥ सजन० ॥ ४ ॥
देश गुलामी सों छूटै—'निर्भय' होहि उद्धार ॥ सजन० ॥ ५ ॥

(२३)

रसिया

पहनौं पहनौंगी स्वदेशी चीर, ननद मेरे अँगना में करघा
लगाइ दीजो ॥ टेक ॥

करघा की शोभा तब रहै—बुनें आप तेरे वीर ॥ ननद० ॥ १ ॥
दिनभरि चरखा कातौंगी—गाऊँगी स्वदेशी गीत ॥ ननद० ॥ २ ॥
सुनि चरखा की रागिनी—उठेगी विदेशी के पीर ॥ ननद० ॥ ३ ॥
लंकाशायर सिरधुनै—लेहिं न विदेशी की चीर ॥ ननद० ॥ ४ ॥
चरखा यन्त्र स्वराज कौ—'निर्भय' मिटि जाइ भीर ॥ ननद० ॥ ५ ॥

---

(२६)

वीर युवती

रसिया

छुड़ाओ दुख-बन्धन ते पिया—अपनो भारत देश ॥ टेक ॥

जब तक भारत अपनो न होगो—बाँधूं न सिर के केश ।।छुड़ाओ०।।१।।

भारत पर दीवाने है जाउ—धरि योगी को वेश ।।छुड़ाओ०।।२।।

जेल होहि चाहिं फाँसी है जाउ—कितने हु सहो कलेश।।छुड़ाओ०।।३।।

हम-तुम 'निरभै' मरैं देश पै—कीरति रहे हमेश ।।छुड़ाओ०।।४।।

---

(२७)

(२८)

राजा--प्रजा

दोहा

दूध न्हाइ फूलैं फलैं, सुखते रहैं किसान ।
सच्चा वही स्वराज्य हो, दुख का हो न निशान ॥

भजन जिकड़ी

छन्द

राज-नीति का धर्म यही है नीति-शास्त्र यह बतलाता ।
राजा-परजा रहे प्रेम से जैसे पुत्र-पिता-माता ॥
जैसे भानु महीतल से जब जल-समूह को ले जाता ।
बादल बना-बनाकर उसको सबके हित को बरसाता ॥
इसी तरह से द्रव्य प्रजा का प्रजा के हित ही में लाता ।
'निर्भय' कहे वही है भूपति प्रजा का जो सब विधि त्राता ॥

गाथौ

जुग-जुग की यह रीति और सब वेद बखानैं ।
प्रजा-पुत्र-सम कही पिता भूपति को मानैं ॥
यही राजन की नीति, अपने सुतते हू अधिक, करें प्रजा पर प्रीति ।
करें प्रजा पर प्रीति, धर्म की नीति, रहै नहिं देश दुखारौ ॥

(२६)

वीर युवती

रसिया

छुड़ाओ दुख-बन्धन ते पिया—अपनो भारत देश ॥ टेक ॥

जब तक भारत अपनो न होगो—बाँधू न सिर के केश ॥छुड़ाओ०॥१॥

भारत पर दीवाने है जाउ—धरि योगी को वेश ॥छुड़ाओ०॥२॥

जेल होहि चाहिं फाँसी है जाउ—कितने हु सहौ कलेश॥छुड़ाओ०॥३॥

हम-तुम 'निरभै' मरैं देश पै—कीरति रहे हमेश ॥छुड़ाओ०॥४॥

---

(२७)

किसान-पन्थ का महत्व

रसिया

और सब झूठो है—पिया सांचो हैं पन्थ किसान ॥ टेक ॥

अब हमरी मिट जाइ गरीबी—सुख ते करें गुजरान ॥और सब०॥१॥

खून के प्यासे बजमारेनु के—मिटि जाहिं नाम-निशान॥और सब०॥२॥

वेगि सभा के मैम्बर है जाउ—जो सब सुख की खानि॥और सब०॥३॥

करि संगठन किसान भले में—करि देउ अर्पण प्रान॥और सब०॥४॥

'निर्भय' करतब पै मरि मिटियो—तब ही रहेगी शान॥और सब०॥५॥

राजा--प्रजा

दोहा

दूध न्हाइ फूलैं फलैं. सुखते रहैं किसान।
सच्चा वही स्वराज्य हो, दुख का हो न निशान ॥

भजन जिकड़ी

छन्द

राज-नीति का धर्म यही है नीति-शास्त्र यह बतलाता।
राजा-परजा रहे प्रेम से जैसे पुत्र-पिता-माता ॥
जैसे भानु महीतल से जब जल-समूह को ले जाता।
बादल बना-बनाकर उसको सबके हित को बरसाता ॥
इसी तरह से द्रव्य प्रजा का प्रजा के हित ही में लाता।
'निर्भय' कहे वही है भूपति प्रजा का जो सब विधि त्राता ॥

गाथौ

जुग-जुग की यह रीति और सब वेद बखानैं।
प्रजा-पुत्र-सम कही पिता भूपति को मानैं ॥
यही राजन की नीति, अपने सुतते हू अधिक, करें प्रजा पर प्रीति।
करें प्रजा पर प्रीति, धर्म की नीति, रहै नहिं देश दुखारो ॥

आप दुक्ख सहि लेइ, प्रजे नहिं देइ, वेद की बात विचारौ।
पावै प्रजा कलेश, जाके खोटे राज में, भोगे नरक नरेश॥
भारत देश दुखी भयौ भारी अंग्रेजी शासन हत्यारो।

(२९)

भारत भयो देश दुखारौ

करि-करि याद पिछारी रोवैं।

हरिश्चन्द्र ने धर्म राखिवे दारा, तात तजी धरनी।
रामचन्द्र ध्वज के कहिवे पै घर ते काढ़ि दई वरनी॥
धर्म कौ पूत युधिष्ठिर राजा करि रह्यौ स्वर्ग उजारो।
भारत भयौ० ॥ १ ॥ अब के भूप न धर्म विचारैं॥
कृष्ण-दुलारी माखनवारी ।काटत गऊ हजारन को।
इन ही के पूत कमाइ के पालैं सूझति नाहिं मतवारेन को॥
सुक्ख हमारे की जड़ काटें इनते को हत्यारौ।
भारत भयौ० ॥ २ ॥ करि दयौ देश दुखी इन भारी॥
शीत न घाम गिनैं चौमासे भूखे-प्यासे काम करैं।
चली कमाई सब विदेश कौ कैसे दुखिया धीर धरैं॥
रोवैं लाल गोद बिरहुलि की कैसे करें गुजारौ।
भारत भयौ० ॥ ३ ॥ तीस कोटि जनता भारत की॥
सात करोड़ रहे नित भूखे दुखिया भारत के वासी।
अगिनि सहारे रात बितावैं अब तो सोचो अविनासी॥

अब नहीं सहे जात दुख स्वामी तेरौ लयौ सहारौ।
भारत भयौ० ॥ ४ ॥ करि करुणा अब वेगि निहारौ ॥
हरिवे दुख दीननु के भेजे गांधी करि करुणा भारी।
लेहिं स्वराज्य किसान सुखी होहिं ऐसी करि मंगलकारी ॥
"निर्भय" सुखी स्वतंत्र वेगि ही है जाहि देश हमारौ।
भारत भयौ देश दुखारौ ॥ ५ ॥

---

(३०)

किसान-प्रार्थना

दोहा

दीनवन्धु करुणानिधे कृषकों के भगवान।
'निर्भय' शीघ्र ही मुक्त हों, दुख से सभी किसान॥

छन्द

दीन-कृपकों के हे भगवान।
मुक्त हो दुख से सभी किसान ॥
शरण हम तुम्हारी हैं सर्वेश–मिटाने होंगे सर्व कलेश।
देहु दृढ़ साहस जगदाधार–सहैं न किसी के अत्याचार ॥

सुमति का हममें हो संचार–करें संगठन फूट को जार।
हृदय में हो अदम्य उत्साह–देश-हित मर-मिटने की चाह॥
सिखा दो हमें आत्म-बलिदान।
दीनों कृषकों के हे भगवान॥१॥

सिखादो प्रभुवर! ऐसा मन्त्र–रहें हम कभी नहीं परतन्त्र।
सुना दो हम को गीता-ज्ञान–होहिं निज करतव पर बलिदान॥
गूँज यह जावे हे विश्वेश–किसानों का है भारत-देश।
किसानों ही का है संसार–'निर्भय' हो स्वतन्त्रता-जयकार॥
और हो हम सब का कल्यान।
दीन कृषकों के हे भगवान॥२॥



(३१)

भारतमाता की आरती

आरति श्री भारत-जननी की।
कीरति कलित ललित प्रिय-ही की॥

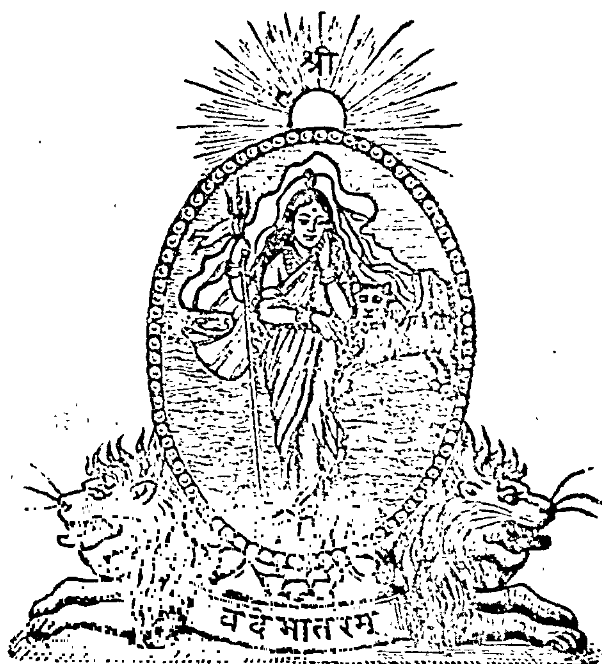
अन्न-पूर्णा मातु हमारी।
सुख दायिनि शुचि मंगलकारी॥
विश्व-भरणि दुख-नाशन-हारी—शुभ्र-ज्योतिमय जीवन जी की।
आरति श्री भारत-जननी की ॥२॥

गंग, यमुन बहे पावन धारा।
हिमगिरि विशद विभव विस्तारा॥
रत्नाकर वर सिन्धु तुम्हारा—सुफल मनोरथ खानि अमी की।
आरति श्री भारत जननी की ॥२॥

तीस कोटि सुत तेरे त्राता।
कौन कहे तोहि अबला माता॥
भारत तुम पर वलि-वलि जाता—सर्वस प्राण किसानन ही की।
आरति श्री भारत जननी की ॥३॥

जय दुर्गे, जय शक्ति भवानी।
रिपु-दल-दलनि जयति रुद्रानी॥

'निर्भय' नमामि वीर-वरदानी—जय-जय विजय-आशा जगती की।
आरति श्री भारत जननी की ॥
कीरति कलित ललित प्रिय ही की ॥४॥



सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर में मुद्रित।

फाँसी !

[क्रांतिकारी लेखक विक्टर यूगो लिखित]

४७

भारतवर्ष की सब से सस्ती

और

राष्ट्रीय

जीवन, जागृति, बल और बलिदान की पत्रिका

'त्यागभूमि'

संपादक

श्री हरिभाऊ उपाध्याय

तथा

सस्ता-मण्डल

का

बलप्रद, शिक्षाप्रद, ज्ञान-वर्धक

और

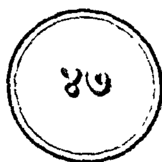
क्रान्तिकारी साहित्य पढ़िए।

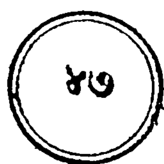
सस्ता-साहित्य-मण्डल अजमेर।

मुद्रक जीतमल लूणिया सस्ता-साहित्य प्रेस, अजमेर।

फाँसी !

[क्रांतिकारी लेखक विक्टर यूगो लिखित]




৮৩

फाँसी !

[फ्रांस के क्रांतिकारी लेखक विक्टर ह्यूगो लिखित 'Sentence to Death' का अनुवाद]

अनुवादक

श्री कृष्णकुमार मुखोपाध्याय

प्रकाशक,

सस्ता-साहित्य-मण्डल,

अजमेर।

प्रथमवार, १०००

सन् १९३०

मूल्य ॥)

जीतमल लूणिया द्वारा
सस्ता-साहित्य-प्रेस, अजमेर में
मुद्रित ।

१)

भेजकर आप मण्डल के स्थाई ग्राहक बनें—

और

१—नरमेघ !

२—दुखी दुनिया

३—शैतान की लकड़ी

४—हमारे ज़माने की गुलामी

५—जब अंग्रेज़ आये

६—स्वाधीनता के सिद्धान्त

आदि क्रांतिकारी और सस्ती पुस्तकें

मण्डल से पौने मूल्य में लेकर पढ़ें !

व्यवस्थापक,

सस्ता-साहित्य-मण्डल,

अजमेर ।

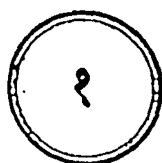
दो शब्द

फ्रांस के प्रसिद्ध क्रांतिकारी लेखक श्री विक्टर ह्यूगो की चमत्कारपूर्ण लेखनी से लिखी गई यह पुस्तिका हम भरे हुए हृदय से पाठकों को अर्पण करते हैं।

फाँसी की सजा पाये हुए एक युवक के विचारों की यह लड़ी वे लोग पढ़ेंगे जिनके हाथ, न जाने कितने निरपराध नव युवकों को फाँसी देने के कारण, लाल हो गये हैं ?

प्रकाशक

फाँसी !



फाँसी !

पाँच हफ्ते से केवल यही चिंता कर रहा हूँ। दिन रात मैं अकेला रहता हूँ। अकेला ही मृत्यु का ठंडा स्पर्श अनुभव कर रहा हूँ। मेरे गले को मानों किसी ने रस्सी से बाँध रक्खा है !

लेकिन हमेशा से मैं ऐसा नहीं था। अभी बहुत दिन न हुए होंगे मैं भी एक साधारण मनुष्य की भांति ही था। प्रति दिन, प्रति घण्टे, प्रति मुहूर्त मैं स्वाधीन रहता था। मेरा मन भी ऐसा ही स्वाधीन था। मेरा तरुण निर्मल मन एक नशे में विभोर रहता था। नियमहीन शृंखलाहीन, बाधाहीन जीवन की कल्पना मुझे उन्मत्त बना देती थी।

सुन्दरी किशोरियाँ, जय-पराजय, आनंद और उज्वल रंग-शालायें, संध्या की छाया में सुकुमारियों के बाहु-बंधन में स्वप्नमय परिक्रमण—ऐसे ही सुख के साथ मेरे दिन कटते थे। चिंता की गति थी स्वाधीन और स्वयं तो स्वाधीन था ही।

परन्तु आज? आज मैं क़ैदी हूँ। सांकलों में जकड़ा हुआ, क़ैदख़ाने का रहनेवाला क़ैदी हूँ। मनके भीतर भी वैसाही अन्धकार है जैसा कि इस क़ैदख़ाने के अंदर। एक भीषण, निष्ठुर हत्या कलंक की कालिमा मुझको घेरे हुए है। अब और कोई चिंता मन में नहीं उठती। केवल एक चिंता दिन-रात मन में जाग रही है—फाँसी की रस्सी से मेरा प्राण दण्ड!

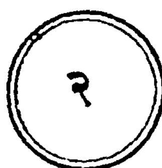
अशरीरी छाया की भांति यही चिंता मुझे घेरे हुए है। और किसी बात को सोचने का अवसर ही कहाँ? मैं तो चाहता हूँ कि मैं भूल जाऊँ, परन्तु, हाय, सब व्यर्थ है। उसके कठिन स्पर्श से एक मिनट को निस्तार नहीं मिलता।

लाल आँखें निकाल कर मानों दिन-रात वह मेरी ही ओर देख रही है। मेरे चारों ओर न जाने कौन विषाद-रागिनी गाता रहता है और कभी-कभी किसी की तीव्र

फाँसी

हँसी बिजली की भाँति मेरी आँखों के सामने खिल उठती है। कारागृह की खिड़की के उधर,—ऐं……! वह किसकी आँखें हैं? मौत की! प्रेत की भांति वह मेरे चारों ओर घूम रही है! हाथ में रस्सी…! नः, मैं पागल हो जाऊँगा।

अकस्मात नींद टूट गई—मालूम हुआ है किसी ने अभी-अभी मेरे मुख पर से अपनी दृष्टि हटाली। क्या यह स्वप्न है? जेलखाने के कठिन पत्थरों पर, दीप की क्षीण शिखा में, पहरेदारों की नीरव मूर्ति में, खिड़की के किनारे-किनारे—न जाने कौन घूमता रहता है। उसकी ज़बान पर केवल वही एक शब्द—फाँसी!



अगस्त का महीना है। निर्मल, स्निग्ध और सुन्दर प्रभात है। आज तीन दिन हुए मेरा विचार शुरू हुआ है। इन्हीं तीन दिन के अन्दर मेरा नाम चारों ओर सुविख्यात हो गया है। आलसियों का दल–जिन्हें काम से एक मिनट की फ़ुर्सत नहीं मिलती—वे आज मुझे देखने के लिए अदालत के आँगन में भीड़ किये खड़े हैं। मृत देह के चारों ओर जिस प्रकार गिद्ध लोलुप दृष्टि से डटे रहते हैं, उसी प्रकार यह भी मेरे लिए आज चंचल और अधीर हो रहे हैं।

पहरेवालों का यह वीर-दर्प और दर्शकों की इस प्रकार की निरीह मूर्ति, ओह, यह मुझे असहनीय मालूम होता है।

पहली दो रात तो मुझे नींद ही नहीं आई। हृदय में

एक व्याकुल आर्तनाद का अनुभव होता रहा। यह गम्भीर आशंका काहे की थी? तीसरी रात को क्लान्त होकर निद्रा का मोह-स्पर्श पहले-पहल अनुभव किया। आवेशमयी निद्रा आह,—वह सब व्यथा को भुला देती है। पहरेदार की आवाज़ से नींद खुल गई। पैर में भारी जूता, हाथ में चाबियों का गुच्छा, ऐसा लगता था मानों यमदूत हो!

मैंने आँखों को मसलकर चारों ओर देखा! कारागार की मज़बूत काली दीवार! छत के नीचे हवादान में से आसमान का कुछ हिस्सा नज़र आया। सूर्य का प्रकाश उस आसमान पर खिल रहा था। सचमुच मैं इस प्रकाश को अत्यन्त प्यार करता हूँ।

मैंने कहा, "वाह, कैसा सुन्दर दिन है?"

पहरेदार चुप रहा। मेरी बात का उत्तर देना शायद उसने ज़रूरी न समझा। फिर अकस्मात् न जाने क्या सोचकर उसने उत्तर दिया, "हाँ, बड़ा सुन्दर दिन है।" पत्थर की भाँति मैं निश्चल, निष्पंद हो गया चेतना लुप्त हो गई मैं उसी हवादान की ओर देखता रहा। फिर कहा—"वाह, बड़ा सुन्दर प्रभात है!"

उसने कहा,—"हाँ! लेकिन बाहर तुम्हारा सब इन्तज़ार कर रहे हैं।"

उसका यह उत्तर! मकड़ी की जाल की भांति इस उत्तर ने मुझे फिर पुरानी चिन्ता के जाल में घेर लिया। इसी समय मेरी आँख के सामने खड़ा हो गया—वह निर्मम, हृदयहीन, रक्त का प्यासा विचारक, उसका अप्रसन्न गम्भीर मुख, और लोभी गवाहों का दल, काले गाउन में मण्डित वकीलगण, चित्र की भांति सज्जित पहरेदार तथा चपरासियान और साथ ही आवारा दर्शकों का समूह!

मेरी सारी देह में आग लग गई। बदन काँपने लगा। पैर भी टल रहा था। पहरेदार मुझे पकड़कर बाहर खींच लाया। बाहर की हवा से बहुत-कुछ शांति मिली और दुश्चिंता मिट गई। सिर के ऊपर विस्तृत नीला आकाश—ठण्डी धूप का मधुर स्पर्श, चारों ओर पक्षियों का कलरव, दूर पर पेड़ों की छाया—आहा! यह संसार इतना सुन्दर है, यह आज ही मालूम हुआ।

उसके बाद फिर विचार-गृह की बद्ध वायु। जीवन के बाद मृत्यु,—वह भी शायद ऐसी ही भीषण होगी। मुझे देखते ही चारों ओर कुछ शोर-सा होने लगा। काना-

फूँसी, कागज़ों का खसखस, जूतों की चरमराहट, ये सब मिलकर एक अजीब ही तरह की मिश्र-रागिणी की सृष्टि हो गई। मुझे देखने के लिए अब तक सब धीर भाव से प्रतीक्षा कर रहे थे। मेरे आते ही उनको भी कुछ आराम मिला। कैसी निर्लज्ज हृदयहीनता! एक आदमी की फ़ाँसी का हुक्म सुनने के लिए इन पशुओं को कैसा कौतूहल!

चारों ओर शान्त निस्तब्ध! आँधी आने के पहले प्रकृति जिस प्रकार शान्त हो जाती है, ठीक उसी भांति! अभी आँधी आयगी! एक भयानक आँधी आयगी! मेरी हड्डियों को पीसकर नस-नस को चबाकर, जीवन को सहस्र खण्ड में विदीर्ण कर तब यह आँधी ठहरेगी। आज मेरे अपराध का दण्ड-विधान होगा।

दण्ड! कौन किसको दण्ड देगा? कौन किसके अपराध का विचार करेगा? मैं चुपचाप खड़ा हुआ इन्तज़ार कर रहा था। हृदय रह-रहकर काँप उठता था। क्या गम्भीर विराट् स्पन्दन था। उसका धक्-धक् शब्द बन्दूक के शब्द से भी शायद अधिक भयानक था।

मेरे मन में उस समय कोई भय नहीं था! कमरे की खिड़की खुली हुई थी। मैं अकाश की ओर देख रहा था।

वहाँ असंख्य छोटे-छोटे पक्षी उड़ रहे थे। एक शांत और मधुर हवा माता की भाँति ही मेरे ललाट पर अपना शीतल हाथ फेर रही थी। जज की आँखें मानों नींद से भरी हुई थीं। उस ओर नज़र पड़ते ही मैं सोचता था, "यह अभिनय क्यों?"

बाहर दूकानदार लोग हँस रहे थे। उन्हें मेरा ख़याल ही नहीं। वे अपनी ही हँसी और बातों में मग्न हैं। हँसी और बातों से उन्हें कभी फ़ुर्सत नहीं मिलती। कैसे निर्बोध हैं यह दूकानदार लोग! मूर्ख हैं।

चारों तरफ़ इतना आनंद! इतनी शोभा! इस समय मृत्यु की बात सोचना निष्ठुरता है—पाप है! यह स्निग्ध वायु, ऐसी दिव्य उज्वल प्रसन्न सूर्य-किरण। इस समय मृत्यु की चिंता—कैसी अशोभनीय बात! सूर्य-किरण की भाँति आशा की घटा कभी-कभी निराश हृदय में प्रकाश डाल रही थी—आहा! यदि आज मैं मुक्त हो जाऊँ।

मेरे वकील ने कहा, "उम्मीद ।"

कुछ हँस कर मैंने उत्तर दिया—"अच्छी बात है।"

वकील ने कहा, "मैंने सिद्ध कर दिया है कि घटना

अकस्मात हो गई—फाँसी तो हो ही नहीं सकती, हाँ, आजन्म कारावास—ख़ैर, देखें क्या होता है।"

मैंने कहा—"क्या, कारागार में आजन्म के लिए बन्दी नहीं, उससे तो मौत ही अच्छी है।"

हां, मौत भी अच्छी है। मैंने बाहर की ओर देखा! एक पक्षी डाल पर बैठ कर एक फल को ठुकरा रहा था। कितना आनन्दी जीव है वह! मैं यदि वैसा ही एक पक्षी होता! वैसा ही मुक्त और स्वाधीन होता!

जज उस समय अपनी राय पढ़ रहे थे। मेरा ध्यान उस ओर नहीं था। जीवन और मृत्यु की बात तो मैं उस समय भूल ही गया था। सहसा कान में आवाज़ आई—'फाँसी'। सिर में पसीना आ गया। आँखों के सामने काला पर्दा गिर पड़ा। मैं उस कठघरे से टिक कर खड़ा हो गया। शायद जज को कुछ दया आई उसने पूछा, "तुम्हें कुछ कहना है!"

कहने को तो बहुत कुछ था। परन्तु बात बढ़ाकर फ़ायदा ही क्या था? और ज़बान पर मानों ताले पड़ गये थे। दोनों हाथों से मैंने अपने मुँह को ढाँप लिया। लोग शोर करते हुए विचार-गृह के बाहर जा रहे थे। उनके पैरों

का शब्द सुनाई दे रहा था। ओफ़ अब उनको कुछ चैन मिली है। काम-काज, विलास-विश्राम सब छोड़ कर जो मेरे लिए इतनी दूर आने का कष्ट उठाते थे, मैंने उनको छुट्टी दे दी! वे खुश होकर चले गये।

बहुत देर बाद मेरे मुँह से बात निकली। मैंने कहा—"हुजूर केवल इतनी दया करें कि फांसी जल्दी हो जाय, बस और कुछ नहीं।"

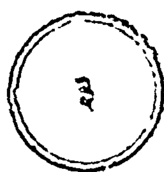
सारे संसार पर मुझे क्रोध आ गया। वह सदा की भांति ही हँसता रहेगा, आनन्द करता रहेगा। मैं उसको खाली कर जाऊँगा, परन्तु वह इसका अभाव अनुभव नहीं करेगा। हाय, ऐसी सुन्दर पृथ्वी, परन्तु कैसी निर्दय है! किसी के लिए उसके हृदय में, स्नेह नहीं, ममता नहीं, मानों निस्पन्द और कठोर एक जड़-पिण्ड है। यही संसार है, और इसी संसार में किसी प्रकार टिक रहने का नाम जीवन है। इससे मृत्यु, हाँ, वह क्या इससे अधिक कठोर है?

पहरेदार मुझे बाहर ले आये। बाहर दर्शकों का दल उस समय भी मुझे देखने के लिए उन्मत्त था। अरे, इन सब हृदयहीन पशुओं के सिर पर बिजली नहीं गिरती? कैसे प्रेत हैं! पिशाच हैं!

बाहर आकर देखा कैसा परिवर्तन है। जब इधर से होकर विचार-गृह की ओर आया था, उस समय मैं भी और सबों की तरह जीवित था और अब? अब तो मानों मेरी मृत देह को कोई खींचे ले जा रहा है। अब मानों मैं इस संसार का कोई नहीं हूँ। पक्षियों का गान, सूर्य की किरणें—ये आज मेरे नहीं हैं। नदी का स्निग्ध जल, नीला आसमान, और सबों के लिए तो ठीक वैसा ही है, केवल मैं ही इनमें से चला गया हूँ। वे छोटे-छोटे फूल, पेड़ की वह छाया,—हाय, वे मेरे लिए नहीं हैं। इन सब पर आज मेरा कोई अधिकार नहीं है।

काले रंग की गाड़ी मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। मैं जब गाड़ी में चढ़ने लगा तो दूर पर कोई कह रहा था "उसको फाँसी का हुक्म हो गया।" मैंने उसकी ओर फिर कर देखा। एक व्यर्थ आक्रोश हृदय में धधक उठा।

गाड़ी चली! उसके भीतर के एक छोटे से छेद में से बाहर के संसार को देखता जा रहा था, सड़क पर आदमी चले जा रहे हैं—ख़ासी चहल-पहल मची हुई है। उसमें कुछ भी फ़र्क नहीं आया है। मेरी मृत्यु से इनकी कोई हानि नहीं है, कोई सहानुभूति नहीं है। हायरे मनुष्य!



मृत्यु !

किंतु हानि भी क्या है? मनुष्य हमेशा तो जीवित नहीं रहता। एक दिन तो मरेगा ही। वह दिन और वह क्षण ही उसको अज्ञात है। बस केवल इतना ही तो फ़र्क है। फिर क्यों मैं व्यर्थ ही घबड़ा रहा हूँ?

आज से लेकर फाँसी के दिन तक कितने ही आदमी संसार छोड़ जायँगे! मेरी फाँसी देखने के लिए जो लोग दिन गिन रहे हैं, उनमें से भी कितने ही चल बसेंगे। फिर मैं अपने जीवन पर इतनी ममता क्यों कर रहा हूँ?

प्रकाश और हवा से न्यारा यह जेलखाना, कदर्य अहार, निःसंग जीवन, अपमान-पीड़ित हृदय, असभ्य और

निष्ठुर पहरेदार—हाय इस जीवन से लाभ ही क्या! संसार में मेरे लिए करुणा की एक बूँद आँसू भी नहीं है। मैं रिक्त हूँ, भिखारी हूँ! मेरे नाव की पतवार टूट गई। इस जीवन से क्या लाभ।

काले रंग की बन्द गाड़ी मुझे जेलखाने में ले आई।

पहले जब जेलखाने को देखता था तो यह भारी मकान कुछ ऐसा बुरा मालूम होता था। न जाने कितने बार उसी जेलखाने के सामनेवाले मैदान पर बैठ कर गीत गाये होंगे। मित्रों से गप्प लड़ाई होंगी। किशोर जीवन के उन्मत्त उल्लास, और आनन्द की स्फुर्ति के साथ चन्द्रालोक में बैठकर इसी मैदान में मैं अपने भविष्य-जीवन के मंसूबे बांधता था। कितनी उद्दाम कल्पनायें करता था! देखने में राज-प्रासाद-सा बृहत् यह मकान, पास ही छोटी सी नदी बह रही है, मानों एक सुन्दर चित्र है। लेकिन आज इसको देखने से भी हृदय घृणा से संकुचित हो उठता है।

मेरा कमरा! उसमें खिड़की नहीं हैं, केवल लोहे की छड़ें हैं। बड़ा भारी लोहे का दरवाज़ा है, और चारों ओर पत्थर की दीवारें हैं। कहीं भी सौंदर्य का चिन्ह नहीं है। और स्नेह? वह तो यहाँ से कोसों दूर है।

आह, बेचारे सचमुच ही अभागे हैं। जो साधु हैं उनका स्तोत्र तो सब ही गाते हैं। जो धनी हैं, भाग्यवान हैं, उनके मुख से एक वाणी सुनने के लिए तो सब ही आतुर रहते हैं परंतु जो इन अभागों को भाई कहकर छाती से लगा सकते हैं, न मालूम वे किस श्रेणी के मनुष्य हैं। उनका स्थान स्वर्ग के कितने ऊपर और कहाँ है? वे सचमुच ही उदार हैं।

और ये जो पहरेवाले हैं—ये भी सहानुभूति दिखाने आते थे। परन्तु उनकी सहानुभूति मानों परिहास था। दुर्दशा के पंजे में पड़ कर ही आज मैं मनुष्य-प्रकृति को समझने लगा हूँ। यह घृणित कैदियों का दल—इनकी सहानुभूति व्यथित दृष्टि—वह कितना पवित्र है!—ये मुझे घृणा नहीं करते!—मेरे अपराध का परिमाण निर्णय नहीं करते—आलसी दर्शकों की भाँति गिद्ध-दृष्टि से मेरी ओर नहीं ताकते।

सोच रहा हूँ कि यदि इन बातों को लिख जाऊँ तो बुरा क्या है? बातें करने के लिए जब कोई साथी नहीं मिलेगा तब ये कागज़-कलम ही तो मेरे प्यारे साथी बन सकते हैं! परन्तु लिखूँगा क्या? मेरी इन व्यर्थ चिंताओं के ढेर को कागज़ पर सजाने से फ़ायदा ही क्या है? चारों

ओर दीवारों की वेष्टनी में निर्जीव शृंखलित जीवन के सुख-दुख की माला मैं किसके लिए गूथूँ—मेरी यह माला कौन पहनेगा ? मैं तो आज इस संसार का मनुष्य नहीं हूँ।—इस लोक और परलोक के बीचों-बीच एक स्थान पर खड़ा हूँ। मैं किसका आश्रय मांगूँ ? मेरा अब कौन है ?

फिर भी मैं अपनी व्यथाओं को वेदना की डोर में गूथूँगा। मैं अपने व्यथित भावों को लिख जाऊँगा। देखकर लोग घृणा करेंगे ? करने दो। लोगों ने मुझे घृणा के सिवा और दिया ही क्या है ? मेरे दुःख में उनके हृदय में सहानुभूति जगी ही कब थी ? फिर मैं उनका भय क्यों करूँ ? उनकी घृणा से मेरा अब क्या आता-जाता है ?

दिल के अन्दर एक आँधी चल रही है ! एक भीषण संग्राम हो रहा है ! यह लड़ाई है कठिन और कठोर मौत के साथ !

जिसके जीवन के दिन बिलकुल गिन दिये गये हैं,—उसकी—अवस्था ओह ! प्रकाश शीघ्र ही बुझा दिया जायगा ! जीवन का प्रकाश भी बुझ जायगा। हाँ, शीघ्र ही !

पल-पल में जिस भीषण यन्त्रणा का सामना मैं कर रहा हूँ—तुच्छ फाँसी की रस्सी—उसकी यन्त्रणा क्या

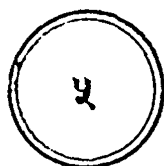
इससे भी अधिक है ? वह तो एक विराट मुक्ति का पथ दिखायगी। इस बन्द वायु और रुद्ध करुणा के ऊपर से विराट संकीर्णता का पत्थर तो एक वही हटा देगी। उसके बाद ?—आह, आशा और प्रकाश का अपूर्व राज्य—परन्तु यह सुन्दर संसार—ओह !

अच्छा ये लोग—जिन्होंने क़ानून बनाया है, क्या इन्होंने कभी यह भी सोचा है कि मनुष्य को फाँसी पर लटका देने का अधिकार मनुष्य को किसने दिया ? उसमें भी प्राण हैं, चेतना है, बुद्धि है, ज्ञान है ! एक पतली-सी रस्सी के सहारे पल भर में इन सब को नष्ट कर देना—साथ ही उसकी सब साध, उसकी सब आशा, उसका सारा प्रेम, विराट हृदय—सबको भस्मीभूत कर देना—यह कैसा नृशंस, कैसा अमानुषिक अनुष्ठान है ? परन्तु उनकी समझ में ये बातें नहीं। वे इन बातों को नहीं सोचते। उनकी आँखों के सामने नाचती है—केवल एक रस्सी और एक गर्दन-बस और कुछ नहीं। मूर्ख, प्रतिशोध को ही उन्होंने सर्वोच्च समझ रक्खा है !

इसीलिए तो मैं लिख रखूँगा ! अपनी इस वेदना को खिलाऊँगा ! सफ़ेद कागज़ों पर, इस कलम के सहारे ! मन

के भीतर जो द्वन्द्व चल रहा है, कोई उसे नहीं देखेगा, नहीं समझेगा ? तुच्छ शरीर की वेदना ! वह, दम घुट रहा है !

क्या कभी कोई इन कागज़ों को नहीं पढ़ेगा कि क्या-क्या कष्ट सहकर एक आदमी ने प्राण दिया है । ईश्वर जानता है । शायद इन्हें कोई भी न पढ़े । शायद किसी दिन आँधी की हवा में उड़कर ये कागज़ बिखर जायँगे । सड़कों के किनारे और मोरियों में पड़े रहेंगे या कोई पंसारी इनसे पुड़िया बाँधेगा । स्याही की शेष रेखा भी मेरे ही जीवन की शेष-साँस की भांति नीरव और निर्जन में ही विलुप्त हो जायगी।



या शायद कभी किसी की दृष्टि इन कागज़ों पर पड़ेगी—तब ऐसा आन्दोलन शुरू होगा कि फाँसी की प्रथा ही उठ जायगी। कितने ही निर्दोषों को, कितने ही अभागों को दुर्दशा के हाथ से छुट्टी मिल जायगी! परन्तु उससे मेरा क्या लाभ होगा? मेरा जीवन तो उसके बहुत पहले ही फाँसी की वेदी पर चढ़ा दिया जायगा!

प्राण निकल जायगा! मृत्यु हो जायगी! सूर्य का यह प्रकाश, वसंत की यह स्निग्ध हवा, फल-फूलों से भरा हुआ यह विचित्र सँसार, रंगीला आसमान, सारा चराचर, हाय, मैं इन सबके बाहर चला जाऊँगा।

नहीं, मुझे अपनी रक्षा करनी ही होगी! अपने जीवन को बचाना होगा!

क्या किसी प्रकार भी इस मृत्यु की गति को मैं रोक नहीं सकता ? आह, इच्छा होती है कि कारागृह के इस कठिन दीवार पर अपना सर फोड़ लूँ ! निराशा और क्षोभ से फाँसी देनेवाले हाहाकार कर उठेंगे और तब मुझे बड़ा आनन्द आयगा !

अच्छा एक बार अपनी अवस्था पर शुरू से विचार कर लूँ । आज तीन दिन हुए मेरा विचार ख़तम हो गया है। वक़ील कहता है, अपील करना चाहिए ! अन्तिम चेष्टा !

आठ दिन तक दरख्वास्त इस कमरे से उस कमरे में घूमती रहेगी । पन्द्रह दिन बाद कोर्ट में पहुँचेगी उसके बाद नम्बर उलेगा, रजिस्ट्री होगी । फिर उस पर विचार होगा, अपील करने की इजाज़त भी मिले या नहीं संन्देह है ।

फिर पन्द्रह दिन तक इन्तज़ार करना होगा । अधीर भाव से, प्रतीक्षा करनी होगी । फिर वही विचार का अभिनय ! सरकारी वकील समझावेगा कि इस क़ैदी का अपराध यह है और वह है।अपील करना इसकी धृष्टता है, अपराध साबित हो गया है ।

इस तरह छः हफ्ते बीत जायेंगे ।

सोच रहा हूँ, एक 'उइल' (वसियतनामा) लिखूँ ! सोच

तो रहा हूँ, लेकिन व्यर्थ है। मुक़दमे के ख़र्च में मेरा सारा धन तबाह हो गया। जो कुछ रह भी गया है उसका वसियतनामा लिखाने से शायद कोर्ट और भी कुछ दण्ड ले लेगा!

संसार में मेरी एक तो बूढ़ी माता है, किशोरी स्त्री है, और एक छोटी कन्या है। तीन वर्ष की छोटी सी लड़की है वह! उसके लाल चपल ओठों पर हँसी तो हमेशा लगी ही रहती है। उज्वल और नीली आँखें, घुँवराले केशों के गुच्छे, दो-चार मुक्त केश उसके मुख और आँखों पर उड़ा करते हैं। मानों फूलों पर लताओं का झालर झूलता हो। मैंने उसको छः महीने हो गये नहीं देखा! ओह छः महीने हो गये!

मेरी मृत्यु से संसार में तीन नारी अनाथ हो जायँगी! पुत्रहीन, पतिहीन, पितृहीन—तीन अभागिनी! क़ानून के एक इशारे से तीनों का आश्रय टूट जायगा!

मुझको जो दण्ड मिल रहा है, यदि यह ठीक भी हो तो भी इन असहायाओं ने तो कोई अपराध नहीं किया। इनपर यह आघात क्यों? सरकार इसका क्या जवाब दे सकती है?

लोगों की घृणा इनके जीवन की जो क्षति करेगी, उसके लिए तो सरकार ने कोई व्यवस्था नहीं की। फिर भी इसी

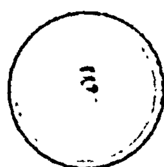
का नाम विचार है। यही विचार की सुव्यवस्था है! मुझे हँसी आती है!

बूढ़ी माता के लिए मैं कातर नहीं हूँ। उनकी जीर्ण देह को विदीर्ण करने के लिए यह धक्का काफ़ी है।

स्त्री के लिए भी चिन्ता नहीं है। वह तो वैसे ही बिस्तर पर पड़ी हुई है। चिर-रुग्ण है। रोग से उसका जीवन-दीप बुझने ही को है।—इस संवाद से उसके जीवन की अन्तिम रश्मि संसार से विलीन हो जायगी। हाँ, यदि वह पागल न हो जाय।

सुनता हूँ पागलों का जीवन दीर्घ होता है। होने दो दीर्घ! फिर भी मृत्यु ही की भांति उसमें विराम है। शान्ति है।

परन्तु मेरी कन्या—वह शान्त शिशु, आदर की कन्या मेरी—हँसी, खेल और गीतों में जो सब भूली हुई है! आहा, अभागिनी नहीं जानती कि उसके सिर पर भी कोई आफ़त लटक रही है। वज्र की शिखा की भांति उसका जीवन भी पिस जायगा, दलित हो जायगा! ओह, यही चिंता मेरी नस-नस को जला रही है।



अभी रात बाकी है ! आँखों में नींद नहीं ! अंधकार-पूर्ण कारागार ! एक शब्द भी कहीं सुनाई नहीं देता ! अब समय कैसे बिताऊँ ! समय बिताने का साधन यहाँ कहाँ से आये ?

कमरे के एक कोने में लेम्प जल रहा था ! उसी को लेकर दीवार के चारों तरफ़ देखने लगा । कहीं कुछ ज़रा-सा छेद नहीं है ? बाहर की ठंडी हवा भीतर आने का कोई छोटा-सा रास्ता ? नहीं ।

दीवार में कितनी ही तरह की मूर्तियाँ अंकित हैं । कितनी ही भाषाओं में, कितनी ही बातें लिखी हुई हैं, कहीं खड़िया से तो कहीं कोयले से । हाय, मेरे ही जैसे अभागे मन की व्यथा को इस पत्थर की दीवार पर लिख गये हैं ! उनके मर्म

का सारा बंधन टूट गया है ! फिर भी इस पत्थर की दीवार ने सहानुभूति का एक शब्द भी उनसे नहीं कहा । एक क्षीण प्रतिध्वनि भी नहीं की ! मूक, नीरव पाषाण इसी प्रकार निर्विकार खड़ा रहा ! उनके व्याकुल कण्ठ का आर्तनाद पत्थर के शरीर पर लगकर चूर्ण हो गया !

मैं उनकी व्यथा की बातें दीवार पर देखने लगा । एक साधन मिल गया । उनकी वेदना की माला को मैं ही आज आँसू भर कर पहन लूं ! मृत्यु की बात फिर भी थोड़ी देर को भूल जाऊंगा !

ठीक मेरी शय्या के पास दीवार पर —दो हृदयों को एक तीर से गूंधा है । यह एक चित्र है, शायद चित्रकार ने अपने हृदय के शोणित से ही उसपर लिख रक्खा था, "कलेजे की मुहब्बत !" हाय, बेचारे ने यहाँ बैठकर दिन-रात केवल मुहब्बत की बात ही सोची होगी । पास ही कोयले से किसी ने लिखा है, "सम्राट् की जय हो ।" कितनी आशा, आकांक्षा और आश्वासन इन अक्षरों में भरा है !

एक तरफ़ किसी ने लिखा है, "मैं माथिया को प्यार करता हूँ !" और एक ओर केवल "ए" अक्षर और केवल सफ़ेद खड़िया की एक रेखा ! अंधकार में भी चाँदी के अक्षर

की भाँति ही वह चमक रहा है !—"ए" शायद उसकी प्रियतमा हो ! शायद उसका नाम "एमा" या "एडिथ" था ! हाय, इस एक अक्षर में एक व्यथा-कातर जीवन की कितनी बड़ी लंबी साँस मिली हुई है !

मैं बैठकर सोचने लगा। मेरे इस निःसंग और निर्जन मुहूर्त में पत्थर की दीवार मानों करुणा से जाग उठी। उसने अपनी पत्थर की छाती में इतनी मर्म-व्यथा, इतनी गोपन-वेदना छिपा रक्खी थी ! आज कहाँ है वह अभागों का दल ! कहाँ हैं उनकी साथिया, एमा, एडिथ ! किस गुलशन की आड़ में, किस खिड़की के पास बैठकर वे आसमान की ओर देख रही हैं ! उनकी ठंडी साँस उनकी विरह-व्यथा, उनका प्रिय-वियोग क्या समाप्त होगया ? कौन कहेगा !

लेम्प उठाकर मैं देखने लगा ! दीवार के एक कोने पर, यह क्या ! यह तो फाँसी का चित्र है ! किसने यह चित्र बनाया ! किस मूर्ख ने इस प्रकार मृत्यु का आवाहन किया ! यह पृथ्वी, यह जीवन, क्या उसके लिए सचमुच ही असार हो गया था ! दो लकड़ी सीधी-सीधी खड़ी हैं। ऊपर दोनों के सिरे से एक और लकड़ी बँधी है। बीच में रस्सी झूल रही है—मैं ध्यान से उसे देखने लगा। सिर में चक्कर-सा आने लगा। लैंप

हाथ से गिर पड़ा। कमरा अँधेरा हो गया। ओह, कैसा भयानक और तीव्र अंधकार था! अवसन्न होकर मैं ज़मीन पर बैठ गया!

फिर टटोल कर मैं अपनी शय्या पर आकर लेट गया। मन अस्थिर हो रहा था—इस पत्थर की दीवार पर लिखे हुए प्रत्येक चिन्ह और प्रत्येक शब्द को देखने की एक व्याकुल प्यास जग रही थी।

अंधकार में दीवार टटोलने लगा। मकड़ी के जाल में हाथ लिपट गया। जाल से हाथ को मुक्त कर फिर बिछौने पर बैठ गया। नींद आने लगी। मैं सो गया। जब आँखें खुलीं तो कमरे में कुछ अस्पष्ट प्रकाश आ रहा था। फिर खड़ा होकर दीवार को देखने लगा। दीवार पर एक जगह चार नाम लिखे हुए थे,—दाँतों १८१५, पूलें १८१८; जिन मार्टिन १८२१; कास्तेगँ १८१२। पढ़ने के साथ ही एक भीषण स्मृति मन में जाग उठी।

दाँतो ने भाई की हत्या की थी। पिशाच पूँलें ने अपनी माँ की हत्या की थी, जिन मार्टिन ने बन्दूक की गोली से अपने पिता का सर उड़ा दिया था। और कास्तेगँ,—डाक्टर कास्तेगँ ने अपने मित्र को ज़हर दे दिया था!

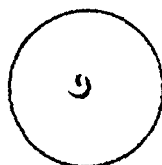
मैं काँप उठा। उनकी आख़िरी मौत अभी तक मानों इस कमरे की हवा के साथ मिल रही है। इसी शय्या पर वे अपने खूनी-जिगर की आख़री बातें, आख़री चितायें उँडेल गये हैं। इसी कमरे में वे भी चलते-फिरते थे। आज भी उनकी साँस से यह कमरा गरम है।

उसके बाद मैं भी उनके पीछे यहाँ आया हूँ! वे मानों चारों ओर से हाथ का इशारा कर मुझे बुला रहे हैं!—वह उनके गले की आवाज़ भी तो सुनाई दे रही है न? मैंने आँखें बन्द कर लीं। उनकी मूर्ति मानों और भी स्पष्ट हो उठी!

यह क्या सत्य है, अथवा स्वप्न है या मति-भ्रम?—पैर में कुछ पानी का स्पर्श मालूम हो रहा है!—यह क्या।—मकड़ी—!—एक बड़ी मकड़ी को मैंने पैर से दबा कर मार डाला है!—इसी का जाल मेरे हाथ से फट गया था!—मुझे चेतना आई—अबतक मानों मूर्छित था! छाया-मूर्ति मेरी चारों ओर घूम रही है!

नहीं-नहीं, मन को स्वस्थ और सबल करना होगा! पल-पल पर मृत्यु की यंत्रणा! इसके कवल से उद्धार पाना ही होगा! दाँतों और पूँछें के दल कब्र के नीचे सो रहे हैं। वे यहाँ नहीं आसकते।—नहीं कभी नहीं आ सकते! मैं क्यों

व्यर्थ ही उनसे डरा जा रहा हूँ ? इस कारागृह से बाहर भागना तो फिर भी संभव है परन्तु कब्र के नीचे से बाहर निकलना बिलकुल असंभव है। तो फिर क्यों व्यर्थ ही मैं मरा जा रहा हूँ !



दिन का उज्ज्वल प्रकाश ! चारों ओर एक कोलाहल की ध्वनि ! बड़े-बड़े दरवाज़ों के खुलने और बंद होने का शब्द, चाबियों की खनखनाहट ! मानों यह कारागृह का उल्लास-संगीत हो ! सभी आनंद में मग्न हैं, सजीव हैं ! फिर मैं क्यों निरानंद और उदास हूं ?

दरवाज़े के पास से एक पहरेदार जा रहा था। उसको बुलाकर मैंने पूछा "इतना शोर क्यों हो रहा है? इतना आनंद क्यों मनाया जा रहा है ?"

उसने उत्तर दिया—"नये क़ैदियों का एक दल आया है, उनके पैरों में बेड़ी पड़ेगी ! तुम देखोगे नहीं ?"

सन्यासी की भाँति यह वैचित्र्यहीन, अप्रसन्न, निःसंग

जीवन से मैं उकता गया था। देखने का लोभ मैं संवरण नहीं कर सका।

बहुत सावधानी के साथ पहरेदार मुझे एक कमरे में ले चला। बैठने के लिए वहाँ एक कुर्सी भी नहीं थी। हाँ, एक बड़ी खिड़की ज़रूर थी। खुली हुई खिड़की। गरादों के भीतर से आज कई दिन बाद आसमान का एक बड़ा हिस्सा नज़र आया। अहा 'आसमान कैसा सुन्दर है ?'

पहरेदार ने कहा—"यहाँ से मजे में देखो राजा की भाँति आराम से देख पाओगे। कोई पास आकर भीड़ नहीं करेगा।"

कहकर दरवाज़े को बन्द करता हुआ वह बाहर चला गया। ताले में चाबी लगाने का शब्द भी कान में आया। खिड़की से कारागार का बड़ा आँगन साफ़ दिखाई दे रहा था। आँगन के चारों ओर ऊँची दीवार थी। एक लम्बा दालान भी था जिसमें असंख्य सिर ही सिर नज़र आ रहे थे। सभी तमाशा देखने खड़े थे। आँख और मुख पर एक आग्रह का चिन्ह था—कौतूहल की एक विराट रेखा थी। नरक के प्रेत मानों आज मतवाले होकर नाच रहे हैं ! सब की आँखें आँगन की ओर थीं।

बारह बजे। आँगन का फाटक खुला। असंख्य नई मूर्तियाँ भीतर आईं। साथ ही एक बुरा कोलाहल होने लगा। मानों पल भर में एक नई जान कारागार में भर गई। अट्टहास और चीत्कार से सारा स्थान गूँजने लगा।

क़ैदियों की नत-दृष्टि और पहरेवालों का वीर-दर्प! यह सृष्टि ही अजीब थी!

क़ैदियों का नाम पुकारा जाने लगा। उनका अपराध क्या है, दण्ड का परिमाण क्या है, पूछा जाने लगा। जिनके दण्ड का परिमाण अधिक है, उनके नाम के साथ जय-ध्वनि होने लगी। दर्शकों के हृदय में कुछ अजीब ही आनन्द था। मानों क़ैदियों का दल एक विजयी सेना है, जो अभी युद्ध जय करके लौट रही है। इसीलिए तो यह आनन्द का आयोजन है और इसी कारण तो यह ताण्डव-नृत्य हो रहा है। दो-एक दर्शक तो आनन्द के मारे गुलाटें तक खाने लगे।

उसके बाद कैदियों के दल में आपस की जान-पहिचान है या नहीं, इसकी तलाश होने लगी। जिनमें जान-पहचान है उनको अलग कमरे में रखना चाहिए। कहीं उनको कुछ शांति न मिल जाय। दण्ड की कठोरता कहीं कम न हो जाय!

चारों ओर का विचित्र कोलाहल एक अखण्ड रागिनी की झंकार की सृष्टि कर रहा था। मुझे ऐसा मालूम हो रहा था कि यह किसी माया-लोक की संगीत-ध्वनि है। परंतु अत्यंत ही अर्थहीन, लक्ष्यहीन, उद्देश्यहीन रागिनी थी वह। धीमी हवा मेरे मस्तक को स्पर्श कर रही थी। एक छोटी-सी आशा की किरण भी मेरे मन में न जाने क्यों जगने लगी। वह मीठी धूप, मुक्त हवा, उदार आकाश—वही तो जीवन है!—इन सब से दूर रहना—ओह, वह मृत्यु है!

अकस्मात् हवा की भाँति धूप हट गई। किसी ने मानों एक काला परदा उस पर डाल दिया। हलके बादल ने आकर पृथ्वी और धूप के बीच एक व्यवधान की सृष्टि की। स्वप्न के कुहक-जाल की भाँति ही एक छाया ने आकर धूप की गति रोक दी। सहसा पानी बरसने लगा। आँगन से दर्शकों का दल हट गया। केवल घोंसले के खोये हुए पक्षियों की भाँति ही क़ैदियों का दल असहाय-भाव से भीगने लगा। दो-एक शख्स काँप रहे थे। परंतु इससे क्या? कारण वे क़ैदी हैं। आराम के साथ उनका कोई रिश्ता नहीं है।

जब पानी बन्द हो गया तब सब फिर सांकलों में जकड़

दिये गये। पैरों में बेड़ियाँ डाली गईं। कोई रोने लगा और कोई ज़मीन पर लोट गया। एक आर्तनाद का स्वर! परंतु मारे कोड़ों के सब सीधे कर दिये गये। ओह, कैसे पिशाच हैं ये? निश्चल पत्थर की भाँति कठोर होकर मैं यह सब देखने लगा।

बादल हट गया। सूर्य का प्रकाश फिर निकल कर मुस्कराने लगा। मानों काले पर्दे को दोनों हाथों से हटाकर वह बाहर निकल आया हो। यह तमाशा देखने के लिए। भीतर से कैदियों का दल फिर निकल आया। कोई सीटी बजा रहा था और कोई गा रहा था।

अब भोजन की पारी है। भोजन की सामग्री आई। बड़ी-बड़ी बालटियाँ—उसमें फीका-सा कोरे जल का पदार्थ, स्वाद नहीं गंध नहीं! भुक्त-भोगी को ही उसका ज़ायका मालूम है।

फिर भी वे—बेचारे भूखे—तृप्ति के साथ उसे खाने के लिए व्यस्त हो उठे। उसीमें उनको कम आनन्द नहीं था।

आग्रह के साथ मैं सब देख रहा था। अपना ख़्याल मैं भूल गया। चित्त में करुणा भर गई। आँखों में आँसू आ गये।

सहसा एक आवाज़ आई, "उठो-चलो।" क़ैदियों में

शोर-गुल मच गया। वे सब खड़े हो गये। क़तार बँध गई। सब चलने लगे

मेरी खिड़की के पास से ही वे जा रहे थे। मुझे देख-कर वे एक बार खड़े हो गये। मेरी छाती धड़क उठी। क्या मैं अजायब-घर का कोई जानवर हूँ, जो इस प्रकार वे मेरी ओर ताक रहे हैं।

एक ने कहा,—"फाँसी का आसामी देख लो। इसको फाँसी दी जायगी।" चारों ओर एक हँसी की धूम मच गई। असभ्य पशु!

मेरे सिर में चक्कर-सा आने लगा। मानों मैं शून्य में लटक रहा हूँ!

इन्होंने कैसे जान लिया कि मुझे फाँसी का हुक्म मिल गया है?

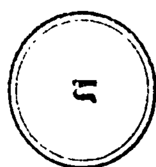
"अच्छा, आख़री सलाम. दोस्त।" निर्लज्ज की तरह वे चिल्ला उठे। एक ने कहा, "हमसे तो अच्छे ही हो, शीघ्र छुट्टी मिल जायगी। मुझे तो अभी चौदह वर्ष यहाँ भुगतना है।"

मेरी चेतना लुप्त-सी हो गई थी। हिलने तक की शक्ति

नहीं थी। आँखों के सामने नदी के स्रोत की भाँति कैदियों का दल चला गया।

सहसा होश आया। मैं सिहर उठा। सोचा, इस खिड़की के बाहर कितना प्रकाश, कितना आनन्द है—और भीतर वायु, प्रकाश और प्राण सब रुद्ध हैं। यदि ये सीख़चे न रहते—सीख़चों को पकड़ कर जी-जान से एक बार हिलाने की चेष्टा की! वह ज़रा भी न हिलीं। मुझे चोट आ गई। मैं क्रोध से गरज उठा। मेरा अन्तर विदीर्ण हो रहा था।

दूर से शोर-गुल की एक अस्पष्ट ध्वनि कान में आ रही थी। मैं वहीं अवसन्न-भाव से बैठ गया। दूर का कोलाहल धीरे-धीरे क्षीण हो गया। मेरे जीवन पर मानों कोई एक काला पर्दा धीरे-धीरे डाल रहा था। मैं मूर्छित हो कर गिर पड़ा।



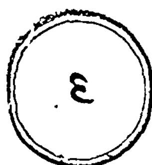
आँखें जब खोलीं उस समय रात हो गई थी। मैं निवार की खाट पर सो रहा था। बत्ती जल रही थी। कमरा बहुत बड़ा था और खाटों की कतारें लगी हुईं थीं। मैं समझ गया कि मैं अस्पताल में हूँ। चारों ओर बिलकुल निस्तब्ध शांति !

कुछ देर तक तो मुझे कुछ याद ही नहीं आया। जाग तो रहा था परंतु चेतना नहीं थी।

पहले जेलखाने की इन अस्पतालों को मैं कितनी घृणा करता था, परन्तु आज मैं वह मनुष्य नहीं रहा। एक मैली सी चादर ! रोगों की एक तीव्र दुर्गन्ध ! चारों ओर परिपूर्ण अशान्ति ! एक मूर्तिमान विभीषिका ! मैंने आँखें

बन्द कर लीं—निद्रा के शीतल स्पर्श से सब यंत्रणायों को भूल गया।

अचानक नींद खुल गई। देखा, दिन निकल आया है। बाहर से शोर-गुल की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। मेरी खाट बिलकुल खिड़की के पास लगी हुई थी। खिड़की से मैंने बाहर की ओर देखा, क़ैदी लोग काम पर जाने की तैयारी कर रहे हैं। उनकी बेड़ियों का झनाझन शब्द अच्छी तरह सुनाई दे रहा है। सुना, सबेरे ही एक व्यक्ति को फाँसी लग चुकी है—उत्सुक दर्शकों का दल वही देख कर हल्ला करता हुआ लौट रहा था। निर्लज्जों को हल्ला करने में शर्म नहीं मालूम होती। एक आदमी की जान ही चली गई और ये आनन्द से चिल्ला रहे हैं। इनके सिर पर गिरने के लिए आकाश में क्या वज्र का अभाव हो गया है?



मैं शीघ्र ही स्वस्थ हो गया। मेरा भाग्य ही ऐसा बुरा है। मुझे अस्पताल छोड़ना पड़ा। फिर कारागृह का वह बन्द कमरा, मेरी ही लंबी साँस की गरम हवा से भरा हुआ, चारों ओर निराशा और विषाद का निरानंद और विमर्ष-भाव—इसी कमरे में जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिननी पड़ेंगीं।

कोई भी बीमारी नहीं! यह तरुण, स्वस्थ और सबल देह—रोग के ग्रास से वह जीर्ण क्यों होने लगा? नसों के भीतर से गरम ख़ून तेज़ी से चल रहा है, ऐसी बुद्धि, ऐसा स्वास्थ्य—मन फिर क्यों पल-पल में विचलित हो रहा है? क्यों वह जला जा रहा है?

अस्पताल से लौटने के बाद केवल एक बात कभी-कभी सोचने लगता हूँ। वहाँ से भाग जाने का अच्छा मौका था, वह मौका मैंने क्यों मूर्ख की भाँति छोड़ दिया ? क्या अच्छा और आसान मौका था वह ! रात के निस्तब्ध अन्धकार में चुपचाप निकल सकने पर—क्या ही मुक्त स्वाधीनता के उदार राज्य में मैं पहुँच जाता ! सिर के भीतर नसें धिक-धिक करने लगीं। आँखों के आगे चारों ओर हरे गोले तैरने लगे।

यदि भाग जाता ? अहा ! उसमें इनका क्या नुकसान था। अपील से यदि छूट जाऊँ ? परन्तु उसकी संभावना कहाँ है ? गवाहों ने सौगंध खाई है—विचार काफ़ी तौर से हो गया है। अब अपील से क्या फल होगा ? कुछ नहीं। हाय, सब व्यर्थ है, फाँसी की रस्सी ही मेरे भाग्य में बदी है। अपील की क्षीण आशा ? वह अत्यन्त कमज़ोर है।

यदि आज क्षमा मिल जाय ! क्षमा ? परन्तु क्यों मिलेगी ? ये असंख्य अभागे—बोझा ढोकर, बेड़ी खींचकर, जेल में सड़ रहे हैं—सड़ा हुआ भोजन खाकर पेट की ज्वाला को बुझा रहे हैं। इनका परिवार, कुटुंब, मित्र कहाँ हैं ? इनके घरकी दशा क्या है ? ये इस यंत्रणा को समान

भाव से भोगते रहेंगे और मुझे क्षमा मिल जायगी, मैं आनंद के साथ घर लौट जाऊंगा ! क्यों, मुझे किस कारण वे क्षमा करेंगे ? देश के लोग इस अन्यायपूर्ण क्षमा को देखकर क्या कहेंगे ! नहीं क्षमा नहीं ! फाँसी ही मेरी मुक्ति का एक एकमात्र उपाय है !

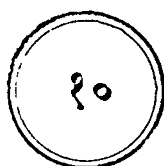
हाँ, यदि भाग जाता ! हरे-हरे खेतों पर से, छोटी-छोटी पहाड़ियों पर-से, नदी-वन अतिक्रम कर किसी अनजान देश की ओर चलता रहता ! किसी की ओर नहीं देखता, किसी के दरवाज़े पर नहीं ठहरता ! कहीं भी भीख नहीं माँगता ! पेड़ के फलों से क्षुधा की निवृत्ति, नदी के जल से तृष्णा का निवारण, पक्षियों के गीत में विश्राम, तरु-तल पर निद्रा ! लोकालय में ? नहीं—यदि कोई संदेह करे ? यदि पकड़े ? मैं भागता थोड़े ही ! —उससे तो उनका शक बढ़ जाता ! धीरे-धीरे निश्चिंत-भाव से कितने ही शहर कस्बे गाँव पार कर जाता। एक गुप्त-वेश कहीं से जुटा लेता। मेरे गाँव के पास वह जो झाड़ी है, वहाँ जाकर पहले विश्राम करता उस झाड़ी में मैंने कितनी ही रातें जगकर बिताई हैं, कितने दिन वहाँ खेलकर काटे हैं ! बचपन में हमजोलियों के वहाँ वह आँखमिचौनी का खेल ! हंसी, दिल्लगी,

अहा, कैसे सुंदर दिन थे वे ! उस अतीत का एक पल भी कहीं आज मुझे मिल जाय !

हाँ, फिर जब अँधेरा हो जाता तब सड़क पर निकलता, भिन्सेन जाता ! नहीं भिन्सेन कैसे जा सकता था ? रास्ते में बहुत बड़ी नदी है, पार होना कठिन है। तो आपजिन जाता! नहीं, शायद जर्मनी जाना ही ठीक होता—वहाँ से हेभर, हेभर से इंग्लैण्ड ! परंतु यदि उस समय पुलिस पकड़ लेती पासपोर्ट माँगती तो ? बड़ी आफ़त होती ?

हाय, अभागा हूँ, मैं यह क्या सोच रहा हूँ ? स्वप्न-भ्रांत जीव, तीन फुट मोटी इस दीवार को लाँघना सम्भव कहाँ ? हाय-हाय, कोई उपाय नहीं है—नहीं है ! मृत्यु ही अब मेरी साथिन बनेगी !

उस बचपन की याद आ रही है जब मैं बालक था। इसी जेल में फाँसी देखने के लिए आता था। ओफ्, कितनी भीड़ जमती थी ! और आज ?



लेम्प बुझने वाला था। अभी सवेरा हो जायगा! गिर्जे की बड़ी घड़ी में टन् टन् कर छै बज गये।

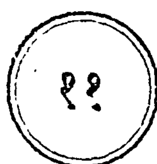
पहरेदार ने आकर टोपी खोलकर सलाम किया। नम्र-कण्ठ से पूछा, मेरी कुछ खाने की इच्छा है या नहीं। आश्चर्य, ऐसा विनय-नम्र व्यवहार! मेरा सारा अंग काँप उठा! तो क्या आज ही?

हाँ आज! काराध्यक्ष स्वयं आये थे! मुझे क्या चाहिए, इसी की जाँच करने। और भी उन्होंने पूछा मेरे प्रति कोई बुरा व्यवहार तो नहीं करता? मेरे सम्मान की हानि तो कोई नहीं करता है न? मेरा स्वास्थ्य कैसा है। रात को नींद तो अच्छी आती होगी? हर-एक बात के साथ महाशय कह कर वह संबोधन कर रहे थे! कोई भी संदेह न रहा! आज,

तब आज ही, वह स्मरणीय दिन है! जिस दिन की बात एक पल के लिए भी मैं नहीं भूला था!

काराध्यक्ष अथवा उनके कर्मचारीगण, कोई त्रुटि कैसे कर सकता है! मेरे प्रति ख़राब व्यवहार कैसे कर सकता है, हँसी की बात है! वे केवल कर्तव्य की पूर्ति कर रहे हैं! सतर्क भाव से मेरी निगरानी कर रहे हैं! मेरे प्रति किसी ने कोई बुरा आचरण नहीं किया। मुझे इसी से संतोष करना चाहिए।

और यह काराध्यक्ष—यह भला आदमी कैसी मीठी-मीठी बातें करता है, मधुर दृष्टि से देखता है,—हाः-हाः-हाः, दीर्घ बलिष्ट बाहु! कारागृह का यही एक प्रतिबिम्ब है! मालूम होता है यही जीवित पत्थर का एक जेलख़ाना है! यहाँ की सब वस्तुयें जेलख़ाने का ही रूपांतर हैं! पहरेदार, लोहे की गरादें, पत्थर की दीवार—सब! चाबी और ताले तक जीवित मालूम होते हैं—सब मिलकर मुझे पहरा दे रहे हैं! और यह कारागृह—निष्ठुर कारागार, आधा पत्थर और आधा मानव-देह विशिष्ट—मुझको मानों इसने जकड़कर बाँध रक्खा है! लोहे का हृदय लेकर मुझसे आलिंगन करने आ रहा है। दरिद्र अभागा हूँ मैं! मुझसे यह दिल्लगी क्यों करते हैं?



चित्त शांत है। कुछ भी फ़िक्र नहीं है। द्विधा भी नहीं है। जेल के अध्यक्ष आकर देख गये हैं। उनसे मिलने के बाद मैं अच्छा ही हूँ। पहले मन में जो थोड़ी-बहुत आशा थी भी, वह मैंने अब छोड़ दी है, यह केवल उन्हीं के कहने से।

साढ़े छै या पौने सात बजे होंगे। अकस्मात् मेरे कमरे का दरवाज़ा खुल गया। बाल सफ़ेद हो गये हैं, ऐसे एक आदमी ने मेरे कमरे में प्रवेश किया। आते ही उन्होंने अपना भारी काला कोट खोल डाला और बैठ गये। कपड़ों से मैं समझा कि यह महाशय आचार्य हैं।

मेरे सामने ही वह बैठे थे; सिर हिलाकर उन्होंने आकाश

की ओर देखा। इस दृष्टि का अर्थ मैं समझ गया। उन्होंने कहा,–"क्या तुम प्रस्तुत हो गये हो बच्चे?"

शांत स्वर से मैंने उत्तर दिया,–"नहीं, प्रस्तुत तो ठीक नहीं हूँ,–परंतु हाँ; अभी उठने को तैयार हूँ।"

मेरी दृष्टि क्षीण हो रही थी। ललाट पर पसीना आ रहा था। प्रस्तुत—एकदम प्रस्तुत,—परन्तु किसलिए? मेरी छाती काँप उठी! प्राणों के भीतर एक विकट शब्द ध्वनित होने लगा!

आचार्य बहुत-कुछ कह रहे थे—उनके ओठ हिल रहे थे, हाथ-पैर और गर्दन भी साथ ही साथ हिल रहे थे। वे क्या कह रहे थे यह मुझे नहीं मालूम, कारण कोई भी बात मेरे कान के भीतर तक पहुँचती नहीं थी।

फिर दरवाज़ा खुला। अब जेल के अध्यक्ष स्वयम् उपस्थित हुए। शरीर पर एक लंबा काला कोट, हाथ में कागज़ों का पुलिन्दा—सूरत पर एक दुःख का भाव लाने की चेष्टा वह कर रहे थे।

काराध्यक्ष ने कहा,–"अदालत से ख़बर आई है।" एक बिजली मेरे सारे शरीर में से दौड़ गई।

मैंने पूछा,–"क्या? अदालत मेरा सर अभी मांगती

है ? वह तो मेरे लिए गौरव की बात है। मेरे इस सर पर सरकारी वकील को कुछ विशेष लोभ है—यह मैं खूब जानता हूँ। हाँ, मैं बिलकुल प्रस्तुत हूँ।" वह पुलिन्दा खोल कर कागज़ों को पढ़ने लगे,—वही अदालत की जटिल भाषा—विकट और दीर्घ शब्दों की झंकार—जिनका अर्थ कहीं मुश्किल से कोई समझ सकता है। आध घण्टे तक कागजों को खस-खस करने के बाद उसका अर्थ समझ में यह आया—मेरी अपील मंजूर नहीं हुई है। अच्छी बात है !

कागज़ों पर से आँखों को न उठा कर ही उन्होंने कहा—"प्लेर्दा ग्रीव्ह में फाँसी होगी। साढ़े सात बजे हम लोग काँसियारजारी जेल की ओर रवाना होंगे। कृपया आप भी हमारे साथ चलें।"

कुछ देर तक मैं चुप रहा, किसी की बात का उत्तर नहीं दिया, जेल के अध्यक्ष और आचार्य में खूब बातें हो रही थीं। देश की मामूली चर्चा हो रही थी, वे उसी चर्चा में तन्मय थे।

ठीक इसी समय दरवाज़ा खोल कर चार हथियारबन्द पहरेदार कमरे में घुस आये। देखने में वे यमदूत से मालूम होते थे। सलाम करके उन्होंने कहा, "समय हो गया है।"

मैंने कहा—"मैं तैयार हूँ—चलो"। उन्होंने कहा—"आध घण्टे के भीतर ही रवाना होना पड़ेगा।" कहकर वे कमरे से बाहर चले गये। एक बार अंतिम चेष्टा ! भगवान, सचमुच ही क्या कोई आशा नहीं है ?

भाग जाऊँ, हाँ, जैसे भी हो भागना पड़ेगा ! दरवाज़ा, खिड़की, छत सब को पार कर जैसे भी हो भागना पड़ेगा ! यदि देह के माँस को भी रख जाना पड़े वह भी स्वीकार है। केवल हड्डियों को लेकर ही भागूंगा !

यदि कहीं से कोई यंत्र या अस्त्र मिल जाय ! राक्षस की भाँति बल से मैं सबका उच्छेद कर जैसे भी हो—परंतु मेरे हाथ में एक कील भी तो नहीं है—अभागा हूँ—आशा नहीं है !



मैं कॉंसियारजारी-जेल में आ गया! अपनी इच्छा से नहीं, सरकारी हुक्म से—सरकारी दूतों की कड़ी निगरानी में! पथ की बात भी सुन लो!

साढ़े सात बजे पहरेदार ने आकर मुझे अभिवादन करते हुए कहा—"मेरे साथ आइए महाशय!"

अदब और कायदे में कोई भी त्रुटि नहीं थी! मैं उठकर उसके पीछे हो लिया! सिर भारी हो रहा था—पैर ऐसे दुर्बल थे कि चलना मुश्किल हो रहा था, फिर भी चला! बाहर से एक बार मैंने अपने निर्जन कमरे की ओर देखा! इतने दिनों का आश्रय! कुछ ममता हो रही थी! आज इस कमरे को मैं सूना कर चला! परंतु अधिक देर

होकर मैं कहीं जा रहा होऊँ—किसी निरुद्देश देश की ओर, किसी स्वप्नलोक की ओर, शायद किसी देवकन्या की खोज में !

गाड़ी के भीतर दरवाजे में जो छेद था, उसीमें से मैं बाहर की ओर देख रहा था। एक जगह बड़े-बड़े अक्षरों में लिखा था—"बूढ़े आदमियों के लिए अस्पताल"—इस संसार में आदमियों को बूढ़ा होने की भी फुरसत मिलती है ? आश्चर्य की बात है। मेरी यह तरुण अवस्था ! ख़ैर, जाने दो उन बातों को—

गाड़ी घूमी। दूर पर नोटरडम का गुंबज दीख रहा है। पेरिस के कोहरे को भेदकर गगनस्पर्शी गुम्बज उठा हुआ है। मैंने सोचा,—"वाह ऊपर से चारों ओर एक बार देख लेता तो अच्छा था।"

आचार्य ने बातचीत शुरू की। वह खूब बकते जा रहे थे। रोकने वाला तो कोई था ही नहीं। आचार्य की आवाज़ से घोड़ों की नालों की आवाज में कुछ अधिक मीठापन था। मुझे उनकी ओर ध्यान देने की फुर्सत नहीं थी। रास्ते पर खूब कोलाहल हो रहा था।

सब शब्द कान में आ रहे थे। परन्तु स्वतंत्र भाव से

नहीं—एक अजीब मिश्र रागिनी के स्वर में, अथवा मानों झरने से झर-झर कल-कल शब्द से पानी गिर रहा हो !

अचानक सुना, आचार्य कह रहे हैं—" क्या बुरी गाड़ी है यह, एक बात भी सुनाई नहीं देती ।"

उनका कहना सच था—बिलकुल ठीक था ।

आचार्य ने कहा—"तुम्हें शायद मेरी बात सुनाई नहीं देती होगी ।—हाँ, क्या कह रहा था ? आज पेरिस में क्यों इतना शोर मचा हुआ है, मालूम है ?"

मैं चौंक उठा, क्या कोई नया संवाद भी है ? शायद मेरी फाँसी का हुक्म सुनकर ही यहाँ हल्ला मचा होगा ।

आचार्य कहने लगे—"संध्या के पहले अख़बार पढ़ने की फ़ुर्सत भी नहीं मिलेगी । संध्या के समय मैं रोज़ अखबार पढ़ा करता हूँ, उससे दिन के ढलने तक का सब समाचार मिल जाता है, एक भी बाकी नहीं छूटता ।"

अब तक पहरेदारों का मुखिया चुप बैठा था, वह बोल उठा—"ऐसी मजेदार ख़बर, और आपको अभी तक मालूम ही नहीं है ?"

मैंने कहा—"मुझे तो शायद मालूम है ।"

उसने कहा—"आपको मालूम है ? ताज्जुब की बात है । कहिए तो सही !"

"क्या तुम सुनने को बहुत व्याकुल हो ?"

उसने कहा—"हाँ अवश्य ही। राज्य के मामले में हर एक को बोलने का अधिकार है—चाहे वह कोई भी हो। आप कैदी हैं तो क्या हुआ ? मैं राष्ट्रीय सेना में था; बचपन में मैं उसका कप्तान था। वह दिन भी बड़े प्यारे थे।"

मैंने टोककर कहा—"नहीं महाशय, मैंने कोई और ही बात सोची थी।"

उसने कहा—"और ही बात ? क्या कहते हैं आप ? आपको कैसे मालूम हुआ ? किसने कहा आपको ? कहिए तो सही क्या खबर है, सुनूँ ज़रा।"

आचार्य ने पूछा—"तुमने क्या सोचा था ?"

मैंने कहा—"शाम के बाद मुझे सोचने के लिए कुछ न मिलेगा, बस इतना ही मैं सोच रहा था।"

आचार्य ने कहा—"चच् चच् ! बड़े दुःख की बात है, तुम्हें अत्यन्त चिन्ता हो रही है। परंतु जी को ढाढ़स दो। मन को मज़बूत करो।"

मुखिया पहरेदार बोला—"आप बहुत रंजीदा मालूम होते हैं ? कास्तेगाँ को जब हम यहाँ लाये थे तो वह सारे रास्ते हँसाता-हँसाता आया था।"

फिर वह अपने अनुभव की बातें करने लगा, पापामां को भी वही लाया था। सारा रास्ता वह चुरुट पीता आया था और रुत्रले के वे विद्रोही लड़के ऐसे चिल्लाते-हँसते आये थे कि कुछ न पूछिए।

आचार्य ने कहा—"कष्ट और दुःख पाना तो पागलपन है; बुद्धि का दोष है। परन्तु महाशय आप बहुत ही विमर्ष मालूम होते हैं। आपकी इतनी कम उम्र !"

स्वर को यथासाध्य तीव्र कर मैंने कहा—"कम उम्र ! क्या कहते हैं आप ? आपसे मेरी उम्र अधिक है। मेरी उम्र प्रति घण्टा १० वर्ष बढ़ रही है।"

आचार्य ने हँसकर कहा—"क्यों मज़ाक करते हो, मेरी उम्र तुम्हारे परदादा के बराबर होगी।"

मैंने गंभीर भाव से कहा—"नहीं मजाक आप करते होंगे, मैं ठीक कह रहा हूँ।"

आचार्य ने हुलास की डिबिया निकाली। उसको खोलते-खोलते मेरी ओर देखकर कहने लगे,—"नाराज़ न होना भाई—"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, नाराज़ होने की कौन सी बात है।"

"क्या तुम सुनने को बहुत व्याकुल हो?"

उसने कहा—"हाँ अवश्य ही। राज्य के मामले में हर एक को बोलने का अधिकार है—चाहे वह कोई भी हो। आप कैदी हैं तो क्या हुआ? मैं राष्ट्रीय सेना में था; बचपन में मैं उसका कप्तान था। वह दिन भी बड़े प्यारे थे।"

मैंने टोककर कहा—"नहीं महाशय, मैंने कोई और ही बात सोची थी।"

उसने कहा—"और ही बात? क्या कहते हैं आप? आपको कैसे मालूम हुआ? किसने कहा आपको? कहिए तो सही क्या खबर है, सुनूँ ज़रा।"

आचार्य ने पूछा—"तुमने क्या सोचा था?"

मैंने कहा—"शाम के बाद मुझे सोचने के लिए कुछ न मिलेगा, बस इतना ही मैं सोच रहा था।"

आचार्य ने कहा—"चच् चच्! बड़े दुःख की बात है, तुम्हें अत्यन्त चिन्ता हो रही है। परंतु जी को ढाढ़स दो। मन को मज़बूत करो।"

मुखिया पहरेदार बोला—"आप बहुत रंजीदा मालूम होते हैं? कास्तेगाँ को जब हम यहाँ लाये थे तो वह सारे रास्ते हँसाता-हँसाता आया था।"

फिर वह अपने अनुभव की बातें करने लगा, पापामां को भी वही लाया था। सारा रास्ता वह चुरुट पीता आया था और रुवले के वे विद्रोही लड़के ऐसे चिल्लाते-हँसते आये थे कि कुछ न पूछिए।

आचार्य ने कहा—"कष्ट और दुःख पाना तो पागलपन है; बुद्धि का दोष है। परन्तु महाशय आप बहुत ही विमर्ष मालूम होते हैं। आपकी इतनी कम उम्र!"

स्वर को यथासाध्य तीव्र कर मैंने कहा—"कम उम्र! क्या कहते हैं आप? आपसे मेरी उम्र अधिक है। मेरी उम्र प्रति घण्टा १० वर्ष बढ़ रही है।"

आचार्य ने हँसकर कहा—"क्यों मज़ाक करते हो, मेरी उम्र तुम्हारे परदादा के बराबर होगी।"

मैंने गंभीर भाव से कहा—"नहीं मज़ाक आप करते होंगे, मैं ठीक कह रहा हूँ।"

आचार्य ने हुलास की डिबिया निकाली। उसको खोलते-खोलते मेरी ओर देखकर कहने लगे,—"नाराज़ न होना भाई—"

मैंने कहा—"नहीं-नहीं, नाराज़ होने की कौन सी बात है।"

इसी समय एक धक्का लगा और उनकी हुलास की डिबिया उलटकर गिर पड़ी—सब हुलास गिर गया। घबड़ा-कर खाली डिबिया को उठाते हुए आचार्यजी बोले—"राम राम ! सब हुलास गिर, गया अब क्या करूँ ?"

मैंने कहा—"क्या करेंगे, दुःख भी क्या है ? आराम-सुख सब तुच्छ है। मेरी ओर देखने में आपको शान्ति मिलेगी।"

आचार्यजी गरज उठे—"रहने दो अपने मज़ाक़ को, बड़े तुच्छ करने वाले आये !—तुम्हें दुःख भी क्या है ? मैं ठहरा बूढ़ा एक आदमी—बिना हुलास के इतना रस्ता कटना—हाय हाय !"

देखा न आचार्य की बात। मेरे कष्ट से उनका कष्ट अधिक है, कारण उनका हुलास गिर पड़ा है। कैसे स्वार्थान्ध हैं ये पुरोहितगण।

हुलास के दुःख से आचार्य महाशय चुप और गुम हो-कर बैठ गये। उनकी बकवास बन्द हो गई। गाड़ी के भीतर फिर एक सन्नाटा छा गया। घर-घर घर-घर करती हुई गाड़ी उसी गति से चलती रही।

आख़िर गाड़ी शहर के भीतर, चुंगीघर के सामने,

आकर ठहर गई। वहाँ से कर्मचारीगण आकर गाड़ी के भीतर परीक्षा कर गये। यदि हम भेड़ या बकरे होते तो यहाँ कुछ दक्षिणा देनी पड़ती, परन्तु अफ़सोस कि हम मनुष्य थे, बिना महसूल दिये ही छुटकारा पा गये।

उसके बाद गाड़ी कई छोटी-बड़ी टेढ़ी-मेढ़ी सड़कों पर से घूमती हुई उस चौड़ी सड़क पर आ पहुँची, जो सीधी काँसियारजारी को ले जाती थी। सड़कों पर लोग अवाक् होकर गाड़ी की ओर देख रहे थे। अख़बार बेचनेवाले इधर-उधर दौड़ रहे थे।

साढ़े आठ बजे हम काँसियारजारी आ पहुँचे। सामने ही विराट् जेलखाना। उसका बड़ा भारी लोहे का फाटक। देखकर मेरा खून ठंढा हो गया। गाड़ी ठहर गई। मुझे ऐसा मालूम हुआ कि शायद मेरे हृदय की क्रिया भी ठहर गई।

किसी प्रकार साहस को इकट्ठा कर मैं उतरने को तैयार हुआ। दरवाज़ा भी उसी समय खुल गया। गाड़ी के अंधेरे कमरे में से मैं कूदकर नीचे उतर पड़ा। दो पहरेदारों ने आकर दोनों तरफ़ से मेरे हाथ पकड़ लिये। दोनों ओर कतार बाँधकर सेना खड़ी थी। बीच में मैं चला। बाहर हमें देखने के लिए एक खासी भीड़ जमा थी।

कब तक बैठ रहा, यह ठीक याद नहीं। अकस्मात् अट्टहास के शब्द से, मैंने पीछे की ओर देखा। यह क्या एक और आदमी! उम्र उसकी कोई पचास से ज्यादा ही होगी—पीठ झुक रही थी, बाल पक गये थे, फिर भी यह खूब मज़बूत मालूम हो रहा था; आँख और मुख पर एक विकट भाव था; उसकी ओर देखने से कुछ भय भी मालूम हुआ।

मैंने पहले उसे देखा नहीं था, परन्तु वह इसी कमरे में बैठा हुआ था।

आश्चर्य! यही क्या मृत्यु है—आज ऐसा भेष बनाकर मुझे तैयार करने के लिए आई है?

उसने कहा, "अजी किस चिंता में निमग्न हो? मैं कब से बैठा हूँ और मेरी ओर देखा तक नहीं! क्या नाम है तुम्हारा?"

मैंने उत्तर नहीं दिया। केवल उसकी ओर आँखें फाड़-कर देखने लगा।

उसने कहा—"मेरी ओर क्या देख रहे हो! मैं एक लगेज हूँ—स्टेशन की मुहर मेरे ऊपर लग चुकी है, अब केवल रेल आने तक की देर है।"

वह कुछ रसिक मालूम पड़ा। मैंने पूछा—"इसका अर्थ ?"

बड़ी ज़ोर से कहकहा मारकर वह हँस पड़ा। मैं डर गया। वह कहने लगा—"क्या इसका अर्थ भी नहीं समझे ? मामूली बात है ! छः हफ्ते बाद मुझे इस दुनिया के पार भेज दिया जायगा। इसीलिए अभी से मेरे ऊपर चालान की मुहर लग चुकी है। मतलब यह है कि छः घंटे बाद तुम्हारी जो दशा होगी, छः हफ्ते बाद मेरी भी वही दशा होगी। अब तो समझ गये न—मैं तुम्हारा कितना बड़ा मित्र हूँ।"

मेरी नसें सिकुड़ने लगीं।

वह कहता गया—"चुपचाप सोचने से कोई फल नहीं होगा मित्र ! इससे सुनो, मैं तुम्हें अपनी कहानी सुनाऊँ ? वक्त भी कट जायगा—और, कहानी है भी मज़ेदार।"

उसने कहना शुरू किया—"चोरी-डकैती तो हमारा पीढ़ी-दरपीढ़ी से पेशा हो रहा है। परन्तु फाँसी केवल मैं ही चढ़ाया जा रहा हूँ, तक़दीर की बात है !

"छः वर्ष की अवस्था जब मेरी हुई तब माँ-बाप मुझे छोड़कर उस लोक के यात्री बन गये, जिसका रहस्य अभी

तक किसी को नहीं मालूम। जेब काटकर और बेवकूफों को और भी बेवकूफ बनाकर मैं मजे से अपना पेट भरने लगा। आखिर मेरा पुश्तैनी पेशा जो ठहरा।

"जाड़े के मौसिम में जब चारों ओर बरफ़ से रास्ते और गलियाँ भर जाती हैं, उस बरफ़ पर से भी मैं नंगे पर चला करता था। स्टेशन, होटल, ट्रेन हर जगह मैं जेब काटता फिरता था।

"पन्द्रह वर्ष की अवस्था में मैं पहले-पहल पकड़ा गया। पीठ पर कई कोड़े पड़े और दो-चार दिन की सज़ा हो गई। जब मैं जेल से लौटा तो मेरी क़द्र बढ़ गई और मैं दल का मुखिया बन गया।

"उसके बाद बड़े-बड़े कामों में हाथ डालने लगा। शहर के मशहूर जौहरी की दूकान पर मय अपने दल के उपस्थित हुआ सारी दूकान लूट ली, दो दरबानों को जान से मार डाला। हिम्मत भी बढ़ने लगी। लेकिन, विभीषणों का अभाव कहीं नहीं है। दल के एक विश्वासघाती ने हम लोगों को पकड़वा दिया। सात वर्ष तक जेलखाने की हवा खानी पड़ी। फिर बाहर निकला। कुछ विशेष प्रमाण नहीं था, नहीं तो कभी जेल के बाहर पैर रखने की नौबत ही

नहीं आती। उस अभागे स्वार्थी विश्वासघाती पर बड़ा क्रोध आया।

"जब मुक़दमा ख़त्म हुआ, उस समय, वह अदालत के बाहर खड़ा था। मैं उसकी ओर एक तीव्र-दृष्टि डालता गया। उस दृष्टि में आग बरस रही थी, वह उसकी हड्डी-हड्डी में घुस गई। डर से उसका मुँह सूख गया। ख़ैर, सात वर्ष बाद मैं फिर बाहर निकला।

"दो दिन इधर-उधर घूमते बीत गये। एक दाना तक पेट में नहीं पड़ा। प्रतिहिंसा के लिए भारी आग जलने लगी थी।

"रात को खिड़की तोड़कर एक होटल में घुसा। वहाँ ख़ूब पेट भरकर खाया। चुपचाप—किसीको कुछ मालूम तक न हुआ!

"सात-आठ दिन बाद दल के दो-चार लोगों से मुलाक़ात हुई। उन्होंने चोरी छोड़ दी थी। कोई नौकरी करने लगा था, और कोई खेती। सब कायर थे।

"नया दल बनाया। चुन-चुनकर जवान और हठीले आदमी भर्ती किये।

"इसके बाद ख़ूब समारोह से काम चलने लगा। रोज़

लूट, रोज़ जीत, रोज़ नये-नये मज़े। आनन्द का फ़व्वारा छूटने लगा!—किंतु, फिर भाग्य पलटा। दल के लोग पकड़े जाने लगे। दल टूट गया। काम बन्द हो गया। क्रोध से मैं उन्मत्त हो गया।

"उसके बाद, एक दिन वह पुराना विश्वासघाती सड़क पर मिल गया। मुझे देखकर वह काँपने लगा। मैंने उसके बालों को अपनी मुट्ठी में पकड़ लिया। कहा—'क्यों? आज?'

"वह गिड़गिड़ाकर कहने लगा—'माफ़ करो सरदार!'

"मैंने कहा, 'विश्वासघाती को मैं माफ़ नहीं कर सकता।'

"उसने कहा, 'मैं तुम्हारा ग़ुलाम हूँ।'

'विश्वासघाती ग़ुलाम को मैं ऐसी ही शिक्षा देता हूँ।' कहकर मैंने उसकी पीठ पर एक ज़ोर की लात मारी। वह पाँच हाथ दूर जा गिरा। मुँह से ख़ून उगलने लगा। मैंने कहा—'उठ, चल!'

"उसे मैं ले चला। मैं तब—ओह, एक राक्षस की तरह हो गया था। मेरा ऐसा सुन्दर गिरोह, पुराने साथियों का दल—केवल इसी विभीषण के कारण टूट गया! शैतान!

"मैंने जेब से छुरी निकाली। उसके दोनों कान काट दिये। वह बेहोश होकर गिर पड़ा। मेरे सिर में आग-सी जल रही थी। मैं वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

"उसके बाद पुलिस में जाकर उसने इज़हार दिया। एक दिन अस्पताल में वह मर गया। मैं भी पकड़ा गया। मेरी फाँसी का हुक्म हो गया है। ठीक ही तो हुआ है। क्या कहते हो? एक तरह से मैंने ही उसकी जान ली है। ख़ैर, फाँसी के लिए मुझे चिन्ता नहीं है। चोरी करते-करते जी भी कुछ ऊब गया था। मामूली चोरी में मुझे कभी आनन्द नहीं मिलता। काफ़ी अक़्ल ख़र्च करता था। वैसे अक़्लमंद और हिम्मतवाले साथी भी अब कहाँ मिलते हैं? इसीलिए अब जीवन में कोई विशेष आकर्षण नहीं है। मरने के पहले विश्वासघाती को अपने हाथ से दण्ड दे दिया, यह भी कुछ कम आनन्द की बात नहीं है। और भी दो-एक चोरी के क़िस्से सुनाता हूँ। समझ जाओगे कि मैं कितना अक़्लमंद था। मेरी ऐसी अक़्ल को फाँसी की रस्सी में झूलना पड़ेगा, यह एक अफ़सोस की बात ज़रूर है। पर, ख़ैर, देश का दुर्भाग्य!"

उसकी बातें सुनकर मुझे रोमांच हो रहा था। इस पिशाच का, इस राक्षस का साथ न जाने कब छूटेगा?

उसने कहा—"तुम बड़े सीधे आदमी मालूम होते हो। राम-राम, फाँसी पर जा रहे हो। अब भी तुम्हें अफ़सोस हो रहा है। इसीमें तो मज़ा है, यह नहीं मालूम? मौज करो, आनंद करो, लोग जानेंगे कि हाँ, फाँसी पर भी यह आदमी डरता नहीं है। मृत्यु इसके लिए खेल है। देखकर सब अवाक् और स्तंभित हो जायँगे। बहादुर कहेंगे। मुझे देखो न? कैसे मज़े में हूँ! आख़िर अफ़सोस करने से कुछ नतीजा तो हासिल होगा ही नहीं!"

मैंने कहा—"आप सचमुच महाशय हैं!"

क़हक़हा मारकर वह फिर हँस उठा। उस हँसी के विकट शब्द से सारा कमरा गूँज उठा। उसने कहा—"ओहो 'महाशय'—आप लोग सफ़ेदपोश हैं, 'महाशय' हैं, यह तो मुझे याद ही नहीं था! लेकिन महाशयों को फाँसी दी जाती है—यह बड़े अचम्भे की बात है!"

उसकी बातों में काफ़ी व्यंग था। मैं चुप रहा। वह कहने लगा—"क्या आपको केवल आचार्य के आने तक का विलम्ब है! अच्छा, आप तो ज़मींदार हैं। फाँसी पर चढ़ने जा रहे हैं। अपना यह सुंदर कोट क्यों व्यर्थ ही ख़राब

करेंगे? मुझे दे दीजिए! कुछ जाड़ा भी कटेगा, और नहीं तो बेच-बाचकर चुरुट मँगाने की तदबीर करूँगा।"

मैंने कोट खोल दिया! ठंड से शरीर काँपने लगा। उसने कहा—"आप अमीर आदमी हैं। यह जाड़ा आप बरदाश्त नहीं कर सकेंगे। रहने दीजिए, आप पहन लीजिए अपने कोट को।"

उसने कोट को मेरी ओर बढ़ा दिया। मैंने कहा—"नहीं, मैं बरदाश्त कर लूँगा. कोट आप ले लीजिए।"

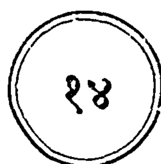
खिड़की के पास आकर वह कोट को अच्छी तरह देखने लगा—कुछ देर तक उलट-पलटकर उसे देखता रहा, फिर बोला, "यह तो बिल्कुल नया मालूम होता है। खैर, ठीक है, आपकी कृपा से छः हफ्ते तक चुरुट और तम्बाकू का अभाव नहीं होगा। धन्यवाद, महाशय! कुछ बुरा न मानना, हम ग़रीब ठहरे। बातें करना तो आता ही नहीं।"

इसी समय अध्यक्ष भीतर आये! मुझको एक पहरेदार के ज़िम्मे कर दिया और उसको दो पहरेदारों के हाथ में देकर बाहर चले गये।

हम लोग भी बाहर आये। बाहर आकर उसने कहा—

"भूलना नहीं महाशय, यहाँ यही आख़िरी मुलाक़ात है। फिर छः हफ्ते बाद मिलेंगे! वहाँ आप मेरा इंतज़ार करना।"

उसकी बातों को सुनकर मेरा हृदय काँप उठा। क्या कहता है यह? पागल है या बेवकूफ़? कौन है यह?



वह था बड़ा मज़े का आदमी। मेरा कोट लेकर साफ़ चलता बना।

क्या मैंने दान कर दिया ?—नहीं, ठीक दान तो नहीं किया। मैंने सोचा, वह मज़ाक़ कर रहा होगा, फिर मुरव्वत के ख़याल से वापस न ले सका।

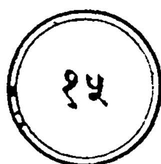
पक्का और पुराना चोर है ! पैरों से जिसको दल सकता हूँ, वह मुझे मित्र के नाम से संबोधन कर गया।

मेरा हृदय क्रोध से क्षुब्ध हो गया। मृत्यु मेरे सिरहाने खड़ी है। अभी निर्दयी की भाँति वह मुझे पीस डालेगी। अभी तक धनी-सम्प्रदाय का अहंकार मेरी हड्डियों में भरा है ! मूर्ख हूँ मैं ! बेवक़ूफ़ हूँ !

फाँसी की डोर धनी और निर्धन का विचार न करेगी।

जिस राज्य में जा रहा हूँ, वहाँ धनी और निर्धन का विचार न होगा।

जो डोर उसके गले में पड़ेगी, वही डोर मुझे भी पार पहुँचायगी! मुक्ति देगी! हाँ, वह मेरा मित्र ही तो है! परम-मित्र है!

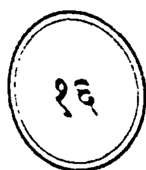


वायुहीन रुद्ध एक छोटे-से कमरे में, फिर मैं बन्दी हूँ। बन्दी हो गया हूँ, इसलिए क्या प्रकाश और हवा पर मेरा कोई अधिकार नहीं है? विचार के नाम पर मनुष्य, मनुष्य के प्रति. यह अन्याय क्यों करता है? यदि सज़ा देना ही उनका उद्देश्य हो, तो इससे भी कम ख़र्च में और भी सरल उपाय का तो अभाव नहीं था। वही पुराने युग में जो होता था—एक थैली के भीतर बन्द कर नदी में डुबा देने से ही तो बहुत शीघ्र काम तमाम हो जाता। इतनी ज़बर्दस्त तैयारी और कड़े पहरे की बहुत-सी मिहनत बच जाती।

कमरे में बिस्तर नहीं था। मैंने चौकीदार को बुलाकर बिस्तर लाने के लिए कहा। वह अवाक् होकर मेरी

ओर देखता रहा—मानों आसमान से गिरा है। शायद उसे आश्चर्य हो रहा था कि जो शख्स छः घण्टे बाद फाँसी पर चढ़ा दिया जायगा, उसे बिस्तर की क्या ज़रूरत ?

जो हो, उसी समय कमरे में जेल के अध्यक्ष ने बिस्तर लगवा दिया। वह बड़े दयालु हैं। मरते समय कम से कम उनकी दया की बात तो सोचता हुआ मरूँगा। कमरे के दरवाज़े पर एक पहरेदार खड़ा रहा, जिससे बिस्तर की चादर से मैं अपनी फाँसी अपने आप न लगा लूँ—सरकार के ज़ल्लाद को कहीं धोखा न दे बैठूँ !



ठीक दस बजे हैं।

मुझे मेरी की याद आ रही है। अभागिनी कन्या मेरी! कल इसके बाद मैं कहाँ रहूँगा और यह पृथ्वी कहाँ रहेगी? अस्पताल की मेज़ पर मेरा प्राणहीन शरीर पड़ा रहेगा। देह की चीरा-फाड़ी कर फिर वे साँस लेंगे। मेरी बोटी-बोटी काटी जायगी। हाय, मेरी, तुम्हारे पिता के जीवन का यह परिणाम है!

फिर भी आज इनके व्यवहार से यह नहीं कहा जा सकता कि ये मुझसे घृणा करते हैं। करुणा से सबका मन भरा हुआ है। मेरी सेवा में कुछ भी त्रुटि नहीं हो रही है। फिर भी ये मुझे जीने नहीं देंगे! करुणा—परन्तु कैसी

निर्मम करुणा है यह! मेरी हत्या ये अवश्य करेंगे। किसी प्रकार भी नहीं रुक सकते।

बेचारी मेरी! अभागिनी बेटी! पिता के आदर से तुम घिरी हुई थीं। पिता से एक चुम्बन पाकर तुम तृप्त हो जाती थीं। जब तुम्हारे केश के गुच्छों को लेकर मैं आदर से मरोड़ा करता था, तो तुम्हारे नरम और लाल होठों के भीतर से हँसी का फ़ब्वारा निकल पड़ता था। आनन्द की हँसी सारे गृह में एक संगीत की मूर्च्छना भर देती थी। उसके बाद रात को सोने के पहले अपने पिता के साथ तुम हाथ जोड़कर बैठ जाती थीं। तुम्हारा वन्दना-गान सारे दिन के परिश्रम और श्रांति को हलका कर देता था। अहा, तुम्हारी आराधना कैसी आवेगपूर्ण थी! ऐसा सुख का साम्राज्य मेरा! हाय! आज वह सब स्वप्न में परिणत हो गया। हाय, प्यारी बेटी! उस प्रकार तुम्हें छाती से लगाकर कौन तुम्हारे मुख को असंख्य चुम्बनों से भर देगा?—उस तरह कौन तुम्हारा आदर करेगा? सबके छोटे-छोटे बच्चे अपने-अपने पिता की स्नेह-पूर्ण गोद में बैठकर किसी मेले और तमाशे में हँसते हुए जायँगे, उस समय तुम्हारी आँखों में वेदना के आँसू डबडबायँगे—एक हृदय-भेदी वेदना तुम्हारे सुन्दर मुख

को म्लान कर देगी। व्यथित आँखें इधर-उधर अर्थहीन दृष्टि दौड़ायेंगी। नव-वर्षारंभ और अपने जन्म-दिन तुम कोई उपहार न पाओगी, किसी का आदर तुम्हारे हृदय का स्पर्श न करेगा। हाय री मेरी अभागिनी कन्या, तुम्हारे फूल के समान प्राण को क्या कोई भी तृप्त न करेगा? पितृहीन अनाथिनी मेरी!

यदि वे जूरी एक बार मेरी को देख लेते, तो शायद यह मृत्यु-दण्ड देने के पहले उन्हें उसका भी ख़याल होता। उसके म्लान नेत्रों की ओर देखकर उनका कठोर चित्त अवश्य चंचल हो जाता, इसमें कोई संदेह नहीं है—नहीं, कोई संदेह नहीं है! मेरी के लिए मेरा प्राण भी शायद बच जाता।

मेरी! जब वह बड़ी होगी, जब होश सम्हालेगी, सब बातें समझने लगेगी, तब मैं कहाँ रहूँगा? उस समय तो मेरा नाम पेरिस की कलंक-स्मृति में लिखा होगा। मेरा नाम सुनकर क्या उसका प्राण काँप न उठेगा? मेरा नाम सुनते ही लज्जा से उसका अन्तःकरण फटने लगेगा। लोगों की घृणा उसको भी हमेशा जलाती रहेगी। मेरी! मेरी प्यारी कन्या मेरी! पिता के नाम पर सहानुभूति के

निर्मम करुणा है यह ! मेरी हत्या ये अवश्य करेंगे। किसी प्रकार भी नहीं रुक सकते।

बेचारी मेरी ! अभागिनी बेटी ! पिता के आदर से तुम घिरी हुई थीं। पिता से एक चुम्बन पाकर तुम तृप्त हो जाती थीं। जब तुम्हारे केश के गुच्छों को लेकर मैं आदर से मरोड़ा करता था, तो तुम्हारे नरम और लाल होठों के भीतर से हँसी का फ़व्वारा निकल पड़ता था। आनन्द की हँसी सारे गृह में एक संगीत की मूर्च्छना भर देती थी। उसके बाद रात को सोने के पहले अपने पिता के साथ तुम हाथ जोड़कर बैठ जाती थीं। तुम्हारा वन्दना-गान सारे दिन के परिश्रम और श्रांति को हलका कर देता था। अहा, तुम्हारी आराधना कैसी आवेगपूर्ण थी ! ऐसा सुख का साम्राज्य मेरा ! हाय ! आज वह सब स्वप्न में परिणत हो गया। हाय, प्यारी बेटी ! उस प्रकार तुम्हें छाती से लगाकर कौन तुम्हारे मुख को असंख्य चुम्बनों से भर देगा ?—उस तरह कौन तुम्हारा आदर करेगा ? सबके छोटे-छोटे बच्चे अपने-अपने पिता की स्नेह-पूर्ण गोद में बैठकर किसी मेले और तमाशे में हँसते हुए जायँगे, उस समय तुम्हारी आँखों में वेदना के आँसू डबडबायँगे —एक हृदय-भेदी वेदना तुम्हारे सुन्दर मुख

को म्लान कर देगी। व्यथित आँखें इधर-उधर अर्थहीन दृष्टि दौड़ायँगी। नव-वर्षारंभ और अपने जन्म-दिन तुम कोई उपहार न पाओगी, किसी का आदर तुम्हारे हृदय का स्पर्श न करेगा। हाय री मेरी अभागिनी कन्या, तुम्हारे फूल के समान प्राण को क्या कोई भी तृप्त न करेगा? पितृहीन अनाथिनी मेरी!

यदि वे जूरी एक बार मेरी को देख लेते, तो शायद यह मृत्यु-दण्ड देने के पहले उन्हें उसका भी ख़याल होता। उसके म्लान नेत्रों की ओर देखकर उनका कठोर चित्त अवश्य चंचल हो जाता, इसमें कोई संदेह नहीं है—नहीं, कोई संदेह नहीं है! मेरी के लिए मेरा प्राण भी शायद बच जाता।

मेरी! जब वह बड़ी होगी, जब होश सम्हालेगी, सब बातें समझने लगेगी, तब मैं कहाँ रहूँगा? उस समय तो मेरा नाम पेरिस की कलंक-स्मृति में लिखा होगा। मेरा नाम सुनकर क्या उसका प्राण काँप न उठेगा? मेरा नाम सुनते ही लज्जा से उसका अन्तःकरण फटने लगेगा। लोगों की घृणा उसको भी हमेशा जलाती रहेगी। मेरी! मेरी प्यारी कन्या मेरी! पिता के नाम पर सहानुभूति के

दो बूँद आँसू क्या तुम न डालोगी—अथवा घृणा की आग तुम मेरे नाम पर बरसाओगी ? नहीं, नहीं, मेरी ! तुम दो बूँद आँसू से मेरा तर्पण करना, मैं तृप्त हो जाऊँगा—केवल दो बूँद आँसू ! हाय भगवान् , ऐसा कौन-सा अपराध मैंने किया है, ऐसा कौन-सा महापाप मैंने किया है, कि समाज इस प्रकार निर्मम और निष्ठुर भाव से मुझे पीस डालना चाहता है ?

आज का सूर्य जब अस्त हो जायगा, तब मैं कहाँ रहूँगा ! इस पृथ्वी का सारा अस्तित्व मेरे लिए उस समय लोप हो जायगा। आज मेरे जीवन का अन्तिम दिन है। क्या यह सच है—अथवा यह स्वप्न है ?

बाहर वह काहेका कोलाहल हो रहा है ? शायद मेरी मृत्यु देखने के लिए लोग दौड़े आ रहे हैं। कुतूहली दर्शक, स्पर्धित प्रहरी, सज्जित आचार्य—मुझे देखने के लिए सब-का आग्रह एकसाथ जग उठा है। मृत्यु ! तुम सचमुच आज मुझे ग्रहण करोगी ? मुझको ?—जो मैं इस समय बैठा हुआ हूँ, साँस ले रहा हूँ, बातें सुन रहा हूँ, वायु का स्पर्श अनुभव कर रहा हूँ, वही मैं ! मर जाऊँगा ?



ये बातें क्या मैं नहीं जानता ? हाँ, जानता हूँ ! प्ले-दी-ग्रीभ के पास से जा रहा था—वह बहुत दिनों की बात है। उस समय दिन के ग्यारह बजे थे। अचानक मेरी गाड़ी रुक गई !

रास्ते पर हज़ारों की भीड़ इकट्ठी थी ! गाड़ी में से मैंने सिर निकालकर देखा, जवान-बूढ़ों से सारा रास्ता खचाखच भरा है ! चारों ओर अनगिनती खोपड़ियाँ नज़र आती थीं। दीवारों पर, छत पर, पेड़ों की डालियों पर—कोई भी जगह ख़ाली न थी। दूर पर फाँसी का तख्ता भी नज़र आता था। फाँसी का सब सामान तैयार था।

आज भी वही दिन है ! परन्तु आज मैं दर्शक नहीं हूँ। आज लोगों की भीड़ मुझे देखने को इकट्ठी हुई है ! वैसी ही भीड़ जमेगी।

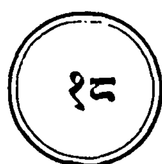
केवल एक डोरी को अवलम्बन बनाऊँगा—साथ ही पलक

मारते-न-मारते एक अतल-स्पर्श अंधकार के भीतर घुस जाऊँगा—विराट अंधकार; उसके बाद ?—

एक पत्थर भी यदि मिल जाता तो अपने सिर को यहीं फोड़ लेता !

माफ़ी ! अरे मुझे माफ़ी दे दो, मुझे क्षमा करो !—शायद माफ़ी मिल भी जाय ! राजा को दया आ जाय तो—शायद माफ़ी की ख़बर लेकर दूत आता होगा ! आओ दूत ! जल्दी आओ ! यह सारा अंधकार अचानक ग़ायब हो जायगा । —एक तीव्र दीप्त मुक्त-प्रकाश के राज्य में मैं प्रवेश करूँगा ! जय के उल्लास से मेरा सारा मन प्रफुल्ल हो जायगा ।

मुझे प्राणों की भिक्षा दे दो ! स्नेह और ममता में भरी हुई यह सुन्दर पृथ्वी, मेरा प्राण इसे छोड़ना नहीं चाहता ! मेरी रक्षा करो । गर्म लोहे से मेरे शरीर पर छाप लगा दो, मुझे कहीं जाने मत दो—बीस वर्ष, पचीस वर्ष तक मुझे जेल में बन्द कर रक्खो । केवल इस आसमान, हवा और सूर्य के प्रकाश से मुझे वंचित मत करो । क़ैदी—वह भी चलता है, सोचता है, बातें करता है; वह भी सुखी है । केवल इस प्राण को न लो, भीख दे दो । बस, और कुछ नहीं चाहता ।



आचार्य लौट आये। सफ़ेद बाल, नम्र प्रकृति और मीठी-मीठी बातें! देखने से श्रद्धा होती है।

आज सवेरे भी मैंने उन्हें क़ैदियों में ज्ञान वितरण करते देखा है। परन्तु उससे मेरा क्या लाभ? उनकी बातों में मेरा जी नहीं लगता। पानी जैसे काँच पर से फिसल जाता है, उनकी बातें भी मेरे मन से उसी प्रकार फिसल जाती थीं।

फिर भी उनको देखकर कुछ धीरज मिला। चारों ओर के इस वीभत्स दृश्य के भीतर उनमें कुछ कोमलता मालूम पड़ी।

हम दोनों बैठ गये—वह कुर्सी पर और मैं अपनी जीर्ण शय्या पर।

उन्होंने कहा,—"भाई !"

उनके संबोधन ने मेरे प्राण को शीतल कर दिया।

उन्होंने पूछा—"क्या ईश्वर पर तुम्हें विश्वास है ?"

मैंने कहा, "है।"

"यह उदार कैथलिक धर्म—क्या इस पर तुम्हारी श्रद्धा है ?"

मैंने उत्तर दिया,—"अवश्य।"

"तो सुनो," आचार्य कहने लगे। क्या कहने लगे, यह मुझे याद नहीं, कब तक कहते रहे, यह भी मैं नहीं जानता। अकस्मात् उन्होंने कहा, 'क्या ?' मैं दूसरी ओर देख रहा था—चौंक उठा। मैं उठ खड़ा हुआ, और बोला, "कृपया मुझे एकांत में रहने दीजिए। मुझे कुछ अच्छा नहीं लग रहा है।"

"तो अब मैं कब आऊँ कहो ?"

"मैं कहला भेजूँगा।"

वह उठ खड़े हुए, मृदु कण्ठ से उन्होंने उच्चारण किया "नास्तिक !"

नास्तिक !—नहीं, चाहे मैं कितना ही नीच क्यों न होऊँ परन्तु नास्तिक नहीं हूँ। भगवान जानते हैं, उनके प्रति मेरा विश्वास कितना गम्भीर है। परन्तु यह आचार्य नई बात

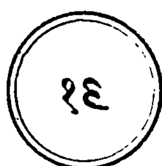
क्या सुनायेगा ! मेरी दुःखी आत्मा को तृप्त करने की क्षमता इसमें कहाँ है ? इसकी सामर्थ्य ही कितनी है ? तनख्वाह लेकर दो-चार रटे हुए शब्दों के उच्चारण से कहीं किसी को शान्ति मिल सकती है ?

खूनी और डाकुओं के सामने रटे हुए वाक्यों को बक जाना जिसका पेशा है, क्षुब्ध आत्मा को शान्त करने की चेष्टा उसके लिए धृष्टता नहीं तो क्या है ! भगवान के नाम पर यह कैसी धोखेबाज़ी है ? विधाता के नाम पर यह कैसा परिहास है ? फिर भी राज-धर्म-द्वारा अनुमोदित होकर यह प्रथा कितने दिनों से प्रचलित हो रही है ? अफ़सोस !!

परन्तु यह बूढ़ा आचार्य ! इसका भी दोष क्या है ? इसकी शिक्षा ही क्या है—ज्ञान भी कितना-सा है ? तुच्छ इने-गिने रुपयों के लोभ में वह यह काम कर रहा है ! यही इसकी जीविका का अवलंबन है। नहीं तो यह पेट कैसे भरेगा ? मुझे इस प्रकार की अश्रद्धा दिखानी न चाहिए ! परन्तु उपाय भी क्या है ? मेरी साँस के स्पर्श से चारों दिशायें जली जा रही हैं। मुख से विष निकल रहा है। मैं क्या करूँ भवितव्य कठिन है।

पहरेदार मेरे लिए नाना प्रकार के भोजन ले आया। यही मेरे इस जीवन में आखरी खाना होगा।

खूब तो खा चुका। ऐसी तुच्छ घृणा, ऐसी हीनता! नहीं, यह मेरे गले के नीचे नहीं उतरेगा।



सिर पर टोपी ओढ़े एक आदमी अकस्मात् आकर खड़ा हो गया। कुछ व्यस्त भाव, किसी ओर भी लक्ष्य नहीं है! हाथ में गज़ का फीता और बग़ल में काग़ज़ों का बंडल! आते ही वह दीवार नापने लगा 'अच्छा पाँच फुट। यहाँ बदलना पड़ेगा' इत्यादि बातें वह एक पहरेदार से करने लगा। और भी न जाने क्या-क्या बकने लगा!

पहरेवाले के मुँह से सुना, वह एक ठेकेदार है! जेलखाने का नया संस्कार होगा, वह इसी का नाप ले रहा है!

काम ख़तम करके उसने मुझसे कहा,—"आपको क्या आज फाँसी होगी?"

मैंने कुछ उत्तर नहीं दिया! वह एकटक मेरी ओर देखता रहा!

उसने कहा—"छः महीने के बाद इस जेल को पहचानना मुश्किल हो जायगा ! सब रद्दोबदल हो जायगा, तब देखने में बहुत सुन्दर हो जायगा।"

अर्थात् उसके कहने का सारांश यह था—"मैं बड़ा ही अभागा हूँ कि नई जेल देखना मेरे भाग्य में लिखा नहीं है—!"

उसके मुख पर एक सूखी हँसी भी दिखाई दी। पहरेवाले ने उससे कहा,—"यहाँ खड़े होने का हुक्म नहीं है ! आपका काम हो गया हो तो बाहर चलिए !"

वह चला गया और मैं—जिस पत्थर की दीवार को वह फ़ीते से नाप रहा था, उसी पत्थर की दीवार की भांति निःशब्द बैठा रहा।

इस समय एक और मज़ेदार बात हुई।

पहरा बदला। नया पहरेवाला आया। उसका चेहरा भयानक, स्वर तीव्र, मानों यमदूत ही हो।

पहरेवाले ने कहा, "क्योंजी तुम्हारे मन में कुछ दया-माया भी है या नहीं ?"

मैंने कहा "नहीं।"

मेरे स्वर में एक तीक्ष्णता थी !—फिर भी वह हटने

वाला थोड़े ही था ! उसने कहा, "एक बात कहता हूँ, सुनो !"

मैंने कहा, "मैं अधिक रसिकता सह नहीं सकता !"

उसने कहा, "मैं अत्यंत दुःखी आदमी हूँ भाई, बड़ा ही अभागा हूँ । यदि तुम मुझ पर कुछ कृपा करो तो सदा के लिए तुम्हारा कृतज्ञ रहूँगा ।"

सदा के लिए ! 'सदा' तो मेरा सूर्यास्त के पहले ही ख़तम हो जायगा । मैंने कहा, "क्या तुम पागल हो ? देखते नहीं, मैं मरने जा रहा हूँ । इस समय मैं किसी का क्या कर सकता हूँ !"

फिर भी वह छोड़नेवाला कब था—बोला, "अजी सुनो भी तो !" उसके बाद चारों ओर देखकर धीरे-धीरे उसने कहा, "देखो भय्या, मेरा सारा सुख तुम्हारे ही हाथों में समझ लो । बड़ा ही ग़रीब हूँ मैं—यह काम बड़ी मेह-नत का है—और तनख्वाह भी कम है,—उस पर अपने पास एक घोड़ा भी रखना पड़ता है ! नौकरी में सुख तो ऐसा ही है । इसीलिए भाई साहब, कभी-कभी मैं लाटरी का टिकट ख़रीद लेता हूँ ! आख़िर जीवन में कुछ करना तो चाहिए न ! परन्तु देखो न, सात-आठ वर्ष में लाटरी के टिकटों

में इतना रुपया ख़र्च कर डाला, परंतु एक पैसा भी लाभ न हुआ! अगर ७६ नंबर का टिकट ख़रीदता हूँ, तो ७७ नंबर वाला बाज़ी मार लेता है! और ७७ नंबर ख़रीदा तो ७६ या ७८ नंबरवाले की तक़दीर खुल जाती है! ख़ैर, तो अब मैंने क्या सोचा है, जानते हो?" कहकर उसने मेरी ओर देखा।

मैंने कहा, "क्या सोचा है?"

उसने कहा, "शायद तुम्हारे द्वारा मेरी कुछ सुविधा हो जाय!"

मैंने ताज्जुब से उसकी ओर देखकर कहा,—"मेरे द्वारा सुविधा?"

उसने कहा, "हाँ, सब तुम्हारे ही हाथ में है! देखो मर जाने के बाद मनुष्य भूत, भविष्यत्, वर्तमान सब देख-पाता है! और तुम तो कुछ घण्टे बाद मरोगे ही, इसीलिए तो कह रहा था कि क्या जानते हो, मुझे यदि उस समय ठीक-ठीक टिकट नंबर बतला दो तो उसी नंबर का टिकट खरीदूँ! बस, रातोंरात बड़ा आदमी बन जाऊँ। इस नौकरी को छोड़ दूँ और खूब गुलछर्रें उड़ाऊ!—देखो भूत से मैं डरता नहीं। समझे न? कोई बाधा नहीं है। मेरा नाम

कासॅपायिकर है। बी नंबर बारक, २६ नंबर का पलंग—याद रहेगा न? तो आज ही रात को आकर बतला जाना। हाँ भय्या, यह उपकार तो तुम्हें करना ही पड़ेगा!"

मैं उसकी बात का उत्तर न देता, प्रवृत्ति भी नहीं थी। परन्तु एक उन्मत्त आशा मेरे मन में जग उठी—एक बार आख़री कोशिश! मैंने कहा—"देखो धन चाहते हो?"

"हाँ-हाँ, और कह क्या रहा हूँ?"

मैंने कहा—'अच्छी बात है, मैं तुम्हें बहुत धन दूँगा, यदि एक काम कर सको।"

उसकी आँखें लोभ से चमक उठीं। उसने कहा "कहो अभी करूँगा—चाहे जैसा भी सख्त काम हो, पीछे नहीं हटूँगा।"

मैंने कहा, "केवल हम दोनों को आपस में पोशाक बदलनी होगी।—बस, और कुछ नहीं।"

"बस यही काम! ओह; अभी करता हूँ।" यह कहकर वह अपने कोट के बटन खोलने लगा।

मैं उठ खड़ा हुआ। छाती धड़कने लगी। एक मिनिट का भी विलम्ब नहीं—नहीं तो सब नष्ट हो जायगा। आह भगवान—धन्य हो तुम। पल भर के अन्दर कल्पना-नेत्र के सामने मैंने देखा, मेरे सामने सब दरवाज़े खुले हुए हैं—कहीं

भी बाधा नहीं है—मुक्त आकाश के नीचे मैं खड़ा हूँ—सिर के ऊपर से पक्षियों का दल गीत गाते हुए उड़ रहा है। स्निग्ध शीतल वायु का स्पर्श भी मानों मैंने अनुभव किया। वह—एक जीवन ही नया था !

अकस्मात् पहरेवाला रुक गया कहा,—"ओह, समझ गया तुम्हारा मतलब, भागना चाहते हो ?"

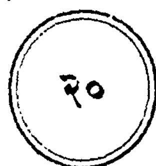
गले को साफ़कर मैंने कहा, "और तुम्हें रुपया काहे का दूँगा ?"

वह फिर अपने कोट के बटन लगाने लगा। मेरे हृदय के भीतर एक बिजली दौड़ गई—सिर का ख़ून गर्म हो गया।

उसने कहा, "नहीं, यह कैसे हो सकता है ? यह काम मैं नहीं कर सकता। यह झंझट है—मर कर ही तुम नम्बर बतला देना, इस प्रकार से भाग कर अरे राम राम !"

मैं बैठ गया। पैर काँप रहे थे। आशा नहीं है, कोई आशा नहीं है ! निराशा की गम्भीर वेदना से साँस तक रुकने लगी।

———



दोनों हाथों से मुँह ढककर मैं बैठा था—अतीत की सारी बातें याद आ रही थीं। स्वप्न की भाँति विचित्र और मधुर किशोरावस्था की बातें! दुर्भावनायें और दुश्चिंताओं का भारी काँटा, साथ ही वे बातें—मानों शुभ्र-सुन्दर फूलों का एक ढेर!

प्रफुल्ल मुख, निश्चिन्त हृदय, उत्साह से भरा हुआ जीवन—वे कैसे मधुर दिन थे! बगीचे में दौड़-धूप, साथियों का निर्मल प्रेम, वह एक सुख का साम्राज्य! उसके बाद किशोरावस्था के स्वप्न-राज्य में नवीन प्रकाश का उन्मेष! निराले कानन में वह मेरी तरुणी बाला!

बड़ी-बड़ी आँखें, लम्बे केश, गौर वर्ण, गुलाबी अधर—अपूर्व रूपवती पेया! बगीचे में हम दोनों खेलते थे—हँसी, गीत, गपशप!

कलह का भी अन्त न था। उसका स्वभाव था शान्त और मधुर! घोंसले से पक्षी चुराकर जब मैं धीरे-धीरे पेड़ पर से उतरता था, तब उसकी म्लान आँखें मेरी ओर देखती रहती थीं। उस दिन उसने कातर भाव से कहा, "क्यों तुम घोंसलों से छोटे-छोटे बच्चे चुराते हो? अहा! तुम बड़े निर्दय हो!"

मैंने ऐसे वीरत्व का कार्य किया! कहाँ तो मेरी प्रशंसा करनी चाहिए और यह कर रही है मेरा तिरस्कार! क्रोध से उस पक्षी को उसी के मुँह पर दे मारा। घर लौटकर जब उसकी माँ ने पूछा, "तेरे मुँह पर यह काहे का दाग़ है?" झट से उसने उत्तर दे दिया, "गिर पड़ी थी।"

उसके बाद कितने ही दिन वह मेरे साथ-साथ नदी किनारे घूमती रही है। गति कभी तो धीरे और कभी द्रुत! तीर पर से नदी की तरंगों को देखते थे—संध्या उतर आती थी, चारों ओर धीरे-धीरे अंधकार से अस्पष्ट होने लगता था। मृदु संगीत की भाँति नदी का जल पछाड़ खाकर किनारे पर आ गिरता था। हमारे कण्ठ का स्वर भी मृदु हो जाता था। कितनी ही बातें थीं—देश की, विदेश की, प्रेम की, प्रणय की। कभी-कभी लज्जा से उसका मुख लाल

हो उठता था—नहीं,. लाल नहीं, शायद गुलाबी !

वह गरमी के दिनों की बात है। शाम के वक्त बगीचे में बादाम के पेड़ के नीचे हम बैठे थे।

अचानक पेया के हाथ से रूमाल गिर पड़ा। मैंने उसे उठाकर उसके हाथ में दिया—स्पर्श से हाथ काँप उठा!

पेया कह उठी, "आओ ज़रा दौड़ें।" वह दौड़ी—केश के गुच्छे झालरों की भाँति झूल रहे थे, नाच रहे थे—गर्दन पर रंग कुछ अजब लाल था ! लाल बादलों पर मानों बिजली की एक रेखा थी !

एक कुँए के पास बैठ गई। ललाट पर मोती की भाँति पसीने की बूँदें ! मैं उसकी बगल में आकर बैठा। वह हाँफ रही थी। साँस कुछ रुक रहा था। मैंने उसकी ओर देखा।

पेया ने कहा, "कुछ पढ़ो ! अभी उजेला है।—तुम्हारे पास किताब हो तो निकालो, जेब में होगी ?"

मेरी जेब में एक उपन्यास था। मैंने उसे निकाला। मेरे कंधे पर सिर रखकर वह उसे पढ़ने लगी। पढ़ने-लिखने में वह बहुत तेज़ थी; उसकी बुद्धि भी अत्यन्त तीव्र थी।

कुछ देर पढ़ने के बाद उसने मेरी ओर देखकर पूछा, "तुम सुन भी रहे हो या नहीं ?" सचमुच मैं केवल उसकी ओर देख रहा था—सुनने की फुर्सत ही कहाँ थी !

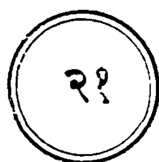
उसके सिर उठाते ही हम दोनों का केशाग्र मिल गया! उसकी साँस का स्पर्श मैंने अपने गालों पर किया। साथ ही हम दोनों के ओंठ भी मिल गये।

उसके बाद फिर जब पुस्तक को खोला, उस समय आसमान पर तारिकाओं का दल हम दोनों को देखकर हँस रहा था।

घर लौटकर वह अपनी माँ से बोली, "माँ, आज हम दोनों बहुत दौड़े हैं।" मुझ से कुछ कहा न गया। उन्होंने पूछा, "तुम चुप क्यों हो ?"

चुप क्यों हूँ ? आनन्द और हर्ष की धारा मेरे हृदय में बह रही थी। उस स्निग्ध-सुन्दर संध्या की बात इस जीवन में कभी भूल नहीं सकता।

यह जीवन—? हाय, अब कितनी देर को है ?



मालूम नहीं क्या वजा है। सिर के अन्दर चिंताओं की राशि कोलाहल कर रही थी।

अपराध की बात सोचते ही काँप उठता हूँ—परन्तु, इस अनुताप से अब क्या लाभ है!

सज़ा के पहले पश्चात्ताप का जो बोझ हृदय को भारी कर रहा था, वह अब कहाँ है? मृत्यु की बात को छोड़कर और सोचने का अवसर भी कहाँ है? अतीत की बात सोचने पर भी फाँसी की रस्सी आँखों के सामने नाचती है। वह सुन्दर शैशव, वह मधुर किशोरावस्था—आह, आज इस तरह फाँसी के तख्ते पर लोट पड़ेंगे? अतीत और वर्तमान के बीच एक रक्त-सागर का व्यवधान रह गया। जो मेरी जीवनी पढ़ेगा, शायद घृणा से नाक-भौं सिकोड़ेगा।

परन्तु सचमुच ही क्या मैं ऐसा ही बुरा हूँ ? नहीं कभी नहीं।

कुछ ही घण्टों में सारी चिंताओं और भावनाओं का अंत हो जायगा फिर भी उन दिनों को बीते अभी बहुत समय नहीं हुआ, जब नदी के किनारे, पेड़ों की छाया में, उपर से झड़े हुए पत्तों को रौंदता हुआ मैं स्वच्छन्द घूमता था !

मेरे इस रुद्ध कमरे के पास ही अनेक घर अभी तरुण-तरुणियों के सुख-गुंजन और शिशुओं के उच्छ्वास से पूर्ण होंगे। आशा-निराशा और सुख-दुःख का भार लेकर अभी भी नर-नारी बाहर थेय पर चल रहे होंगे। फेरीवाला चिल्लाकर फेरी दे रहा होगा। किसी कुंज में युवक अपनी प्रियतमा को आलिंगन में आबद्धकर प्रगाढ़ प्रेम के साथ चुम्बन कर रहा होगा। जीवन का फव्वारा चारों ओर छूट रहा होगा। और मैं ?—

पुरानी बातें ही याद आती है। नौटरडम में घण्टा देखने आये थे। उस समय मैं बालक था। अंधकार में टेढ़ी-मेंड़ी असंख्य सीढ़ियों को पार करते-करते मेरे सिर में चक्कर आ गया था। ऊपर चढ़कर देखा, सारे पेरिस शहर को मानों किसी ने ग़लीचा बनाकर पैरों के तले बिछा दिया है।

उसके बाद घण्टे को देखा। कितना भारी घण्टा था ? मैं शहर देखने में तन्मय था। उस ऊँचे मीनार पर से नीचे सड़क पर चलनेवाले लोग बिलकुल छोटे-छोटे खिलौने माॡम होते थे। यही सब मैं देख रहा था कि भीषण शब्द के साथ वह घन्टा बज उठा। आवाज से मीनार काँप उठा— मेरे हाथ भी काँप उठे। मैं ज़मीन पर बैठ गया। घण्टे की ध्वनि बन्द होने पर भी प्रति-ध्वनि उस वक्त तक गूँज रही थी !

आज भी ठीक वैसा ही मालूम हो रहा है। घंटा-ध्वनि तो नहीं है, परन्तु चारों ओर कोलाहल मच रहा है। एक अस्पष्ट शब्द की झंकार से कान भर रहा है। ललाट की नसें धक-धक कर रही हैं। छाया की भाँति अपने चारों ओर मैं देख रहा हूँ, असंख्य नर-नारी हर्ष और कोलाहल करते हुए चल-फिर रहे हैं। वह ध्वनि उन्हीं की उल्लास-ध्वनि है न ?

भिला-होटल के ऊँचे गुम्बज की घड़ी भी दिखाई पड़ रही है। प्लेदी-ग्रीद्ध के कठोर पत्थर की दीवरों की तरफ ही वह घड़ी देख रही है। कितने दिनों की पुरानी वह दीवार— वह पुरानी घड़ी इसकी प्यारी सखी माॡम होती है।

जिस दिन किसी का जीवन फाँसी की डोर पकड़कर अज्ञात लोक के विराट् अन्धकार में लटक पड़ता है, उस दिन क़ैदी-भीड़ के सब दरवाज़ों के सामने असंख्य पहरेदारों की कुतूहल-दृष्टि जम जाती है। अभागे मृत्यु-पथ के यात्री ही उस व्यग्र-दृष्टि के लक्ष्य होते हैं। उन लुब्ध दृष्टियों की आग में ही वह अपनी सारी कहानी ख़त्म कर देता है—और संध्या की झुरमुट में भी होटल की वह ज्वलन्त घड़ी चन्द्रमा की भाँति हँसती रहती है।

एक बजकर पन्द्रह मिनट!

मेरी इस समय की हालत! सिर में असहनीय यंत्रणा! किसी ने मानों सिर में आग लगा दी है! जब बैठता हूँ या उठ खड़ा होता हूँ तो मालूम होता है कि सिर के अंदर एक रुद्ध नदी का सोता कल-कल करता हुआ बह रहा है। मानों सिर के बांध को तोड़कर अभी बाहर निकल पड़ेगा।

एक आतंक से अंग में रोमांच हो रहा है। अंगुलि से कलम गिरना चाहती है। हाथ में बिजली की तरंग!

आँखों में आँसू डबडबा रहे हैं, मानों मैं धूमाच्छन्न कमरे में बैठा हूँ। शरीर के जोड़ों में एक दर्द! अब केवल

फाँसी

पौने तीन घंटे बाकी हैं—फिर तो बस हमेशा के लिए आराम मिल जायगा। वह एक तीव्र सुख होगा।

लोग कहते हैं—यंत्रणा! वह कुछ भी नहीं है—विज्ञान में ऐसा कौशल है कि मरते वक्त मुझे कुछ भी कष्ट न होगा! क्या सचमुच?

छः घण्टे का यह कष्ट! इससे क्या मृत्यु का कष्ट अधिक होगा? यह जो पल-पल बीत रहा है, मुझे ऐसा मालूम होता है कि वेदना की असंख्य सीढ़ियों को पार करता हुआ मैं मृत्यु की ओर दौड़ रहा हूँ। यह वेदना—यह यंत्रणा—असहनीय है।

फिर भी, यह कुछ नहीं है?

नस-नस से खून मानों चू रहा है। छाती पर एक भारी पत्थर रख दिया गया है—ओह, साँस बन्द हो रही है।

कैसी यन्त्रणा, कौन समझेगा—और, समझायेगा भी कौन? फाँसी के बाद यदि वह धड़-हीन सिर आकर उस वेदना को समझा सकता, तो विज्ञान की सब तारीफ़ ताक पर धरी रह जाती।

आँखों को पलक मारने की भी फुर्सत न होगी—सब

शेष हो जायगा ! एक मुहूर्त के अन्दर इतना बड़ा जीवन ! ये कुतूहली दर्शक; ये अनगिनती राज-सैनिक, ये भला उस यन्त्रणा को क्या समझें ? वह भीषण डोर एक मिनट के अन्दर गले को दाब देगी—शरीर का सारा रक्त स्तम्भित हो कर स्तब्ध हो जायगा ! समुद्र की गति रुद्ध होने पर रोष से वह जैसा फूलने लगता है, बाधा पाकर सारा अन्तर बाहर निकलने के लिए एक विराट् द्वंद्व मचायगा। हाय अभागे ! उस भीषण द्वंद्व में ही सारा खेल खत्म हो जायगा भीतर के साथ बाहर का प्रबल संग्राम—ओह, कैसा भयंकर होगा ?

राजा की बात भी बारबार याद आ जाती है। मन से वह चिंता किसी प्रकार भी दूर नहीं होती। दोनों कानों में मानों कोई कह रहा है, "राजा ? इस समय इसी शहर के एक बड़े भारी महल में सजे सजाये कमरे के अन्दर वह बैठे हैं। मेरी ही भाँति असंख्य पहरेदार उनके दरवाज़े पर खड़े हुए पहरा दे रहे होंगे।" फ़र्क़ क्या है ? वह प्रतिष्ठा के उच्च आसन पर, और मैं बिलकुल नीचे, बस इतना ही फ़र्क़ है। उसके जीवन का प्रति मुहूर्त कैसा गरिमा-पूर्ण महिमा-मण्डित, यश और उल्लास से भरा-पुरा है। चारों

ओर प्रेम, भक्ति, श्रद्धा का निर्झर झर है ? उनके सामने तीव्र स्वर शांत हो जाता है, दर्पित मुण्ड नीचा हो जाता है। उनकी आँखों के सामने स्वर्ण और रौप्य की सामग्री चकाचौंध लगा देती है। सभासद-वेष्ठित राज-सिंहासन पर बैठकर वह आज्ञा दे रहे हैं—ससंभ्रम लोग उसका पालन कर रहे हैं। कभी शिकार, कभी व्यसन, कभी नृत्य और कभी गीत ! केवल मुँह से बात निकालने भर की देरी है कि असंख्य लोग विलास की सामग्री एकत्र करने के लिए तन्मय हो उठेंगे !

राजा ! वह भी मेरी ही भाँति खून और माँस का बना हुआ जीव है—क्षुद्र मनुष्य, यह राजा ! फिर भी उसकी लेखनी के एक इशारे पर मेरी फाँसी की रस्सी रुक सकती है ! जीवन, स्वाधीनता, ऐश्वर्य, गृह—सारे सुखों को पल भर के अन्दर प्राप्त कर सकता हूँ—और यह भी सुना है कि "हमारे राजा दयालु हैं," मगर फिर भी मेरी जान को बचाना उनकी दया का दुरुपयोग होगा ! हाय रे, दया की परिभाषा !!



तब आओ साहस ! मृत्यु के डर को भगा ! काहे का डर ? काहे का आतंक ? आओ मृत्यु, मैं हँसते-हँसते तुम्हारा स्वागत करूँ—खुशी से तुम्हें आलिंगन करूँ। आओ तुम चाहे मित्र हो चाहे शत्रु, बस आजाओ !

आँखों को बन्द करते ही देखूँगा, उज्ज्वल प्रकाश चारों ओर खिल रहा है। मेरी आत्मा उस प्रकाश के हौज़ में स्नान करने को बढ़ रही है ! सिर से ऊपर उल्लास से भरा हुआ अनन्त आकाश और तारे मानों उस शुभ्र प्रकाश के शरीर पर काले तिल ही हों ! मखमल की भाँति कोमल आकाश पर मानों हीरे के टुकड़े बिखरे हुए हैं। उस समय वे ऐसे न रहेंगे !

या शायद, अभागा मैं यह देखूँगा कि उस विराट

अंधकार में मेरा सिर-हीन धड़ पड़ा हुआ है और कब्र के चारों ओर भूतप्रेतों का उपद्रव मचा हुआ है। वह एक फाँसी की हवा से संसार के एक कोने का परदा फट गया है। दानवों का दल बड़े समारोह के साथ उसमें घुस रहा है। चारों ओर कंकाल का पहाड़ लगा हुआ है, नीचे खून की नदी बह रही है। सिर के ऊपर आसमान में भी अंधेरा है। तारे आग के परिंदे बनकर इधर-उधर उड़ रहे हैं।

मेरे पहले जिन्होंने फाँसी के तख्ते पर जान दी है, वे मेरा इन्तज़ार कर रहे हैं; उनकी छाया में अभी भी देख रहा हूँ। रक्त-हीन शीर्ण देह, धँसी हुई आँखें, सूखा हुआ मुँह—क्या ही भयानक है। प्रकाश और अन्धकार के बीच खड़े होकर वे धीरे-धीरे कुछ कह रहे हैं। उनके मुख पर हँसी का नाम तक भी नहीं है। है केवल एक आतंक—एक अधीर उद्वेग! कहीं कुछ नज़र नहीं आता। मीला-होटल की वह निर्मम घड़ी मेरी ओर देखकर अट्टहास करती हुई मुझे अन्तिम समय की याद दिला रही है। संसार में कुछ भी नहीं है—रत्ती भर करुणा तक नहीं!

इसी तरह की बातें हृदय के भीतर द्वंद्व मचा रही है। एक मिनट को भी नहीं छोड़तीं।

हाय, है क्या यह मृत्यु ? कौन है यह ? आत्मा के साथ इसका ऐसा विरोध क्यों है ? एक आघात से वह जब देह को धूल पर लिटा देती है—तब मन की यह चेतना, यह अनुभूति; यह प्रेम, स्नेह, दया यह सर्वव्यापी चित्र इन सबको वह कहाँ उड़ा देती है ? पृथ्वी—कठोर पृथ्वी को क्या इतनी-सी भी ममता नहीं है ? क्या इसमें वह शक्ति नहीं है कि मृत्यु को जय कर अपने हाथ से बनाये हुए जीवों की रक्षा करे ? भगवान् तुम्हारी यह सृष्टि लीला कैसी विचित्र है ! कैसा निष्ठुर है यह रहस्य ! कैसा निर्मम खेल है यह !



एक बार निद्रा-देवी की आराधना करने के लिए बिस्तर पर लेट गया था।

सब खून मानों सिर के ऊपर आकर जम गया। जीवन में यही मेरी अन्तिम निद्रा होगी!

स्वप्न देखा!

स्तब्ध गंभीर रात! दो मित्रों के साथ बैठक में बैठा था। बगलवाले कमरे में स्त्री सो रही है—मेरी उसकी छाती से सटकर पड़ी हुई है!

बहुत धीरे-धीरे बातें कर रहा था—कोई जाग न जाय, डर न जाय। अचानक एक शब्द, चौंक पड़ा! देखने के लिए उठा। अवश्य ही चोर आये हैं!

चारों ओर ढूँढ डाला। कोई नहीं है—किसी का चिन्ह तक नहीं !

चिमनी के पीछे वह क्या है ! कौन ?

एक नारी—रूखे बाल मुँह के चारों ओर बिखरे हुए—मुख पर एक कठिन भाव ! आँखें उसकी बन्द थीं ! मैंने पूछा "तू कौन है ?"

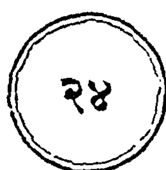
उसने कुछ जवाब न दिया। हम लोगों ने कहा, "जल्दी बतला तू कौन है ?" फिर भी चुप ! आँखें भी वैसे ही बंद ! मित्र ने कहा, "उसके मुँह पर रोशनी डालो।" मैंने बत्ती उठाकर उसके मुँह की ओर की। फिर भी चुप ! मैंने कहा बात क्यों नहीं करती ?" फिर भी अचंचला ! हम लोग परेशान ! राम कैसी आफ़त है यह !

मित्र ने कहा, "रोशनी को और पास लाओ।" मैं बत्ती को बिलकुल आँखों के पास ले गया उसने आखें खोल दीं। ओह, कैसी तीव्र थी उसकी दृष्टि ! मैंने आँखें बन्द कर लीं। साथ ही हाथ में कुछ जलन हुई। आँखें खोलकर देखा तो जेलख़ाना। मेरी शय्या के सामने आचार्य खड़े हैं !

मैंने पूछा "क्या मैं बहुत देर तक सोया हूँ ?" उन्होंने कहा, " हाँ, एक घण्टा सोये हो। तुम्हारी कन्या को मैं

लाया हूँ, मेरी को। देखोगे नहीं? तुम्हारे जगाने की कोशिश उन्होंने की थी। जब तुम नहीं जगे, तब मुझे बुलाया है। तुम्हारी कन्या मेरी—"

मैं चिल्ला उठा, "मेरी! मेरी लड़की मेरी! कहाँ है वह? जल्दी बतलाइए! लाइए, उसे मेरी गोदी में दीजिए, मैं उसे ज़रा छाती से लगा लूँ।"



मेरी! उसका रंग गुलाब के फूल जैसा, अंगूर की तरह नरम उसके ओठ—अहा, मेरी प्यारी मेरी!

काली पोशाक में वह कैसी सुन्दर मालूम हो रही थी। मैंने उसे अपनी गोद में उठा लिया, कपोलों पर हज़ारों बार चुम्बन किया।

विस्मय के साथ वह मेरी ओर देख रही थी। आँखों में वह कैसा भाव! मानों अत्यन्त कातर है! बीच-बीच में वह कमरे के एक कोने में खड़ी हुई आया की ओर देख रही थी। आया रो रही थी।

मेरी को पुचकारकर, मैंने उसे अपनी छाती पर दबा-लिया। रुद्ध स्वर से मैंने कहा, "मेरी, मेरी प्यारी मेरी!"

अत्यन्त मृदु भाव से मुझे एक धक्का देकर उसने

अपना मुँह हटा लिया, और कहा, 'आह ! आप छोड़िए मुझे !"

'आप !'

करीब एक साल बाद यह साक्षात् ! इस एक वर्ष में मेरी मुझको भूल गई। मेरी बातें, मेरा मुख, मेरा आदर-भाव सब उसके मन से कहाँ उड़ गये ! परन्तु इसमें उसका अपराध क्या ?

मेरी ये मूछें, सिर में जटा के से बाल, शीर्ण मुख, क़ैदी की पोशाक़, रुद्ध कण्ठ-स्वर—भला, वह मुझे कैसे पहचानेगी ?

जो मुझे याद रक्खेगी, यह सोचकर मैं कुछ शान्ति पा रहा था, वह भी मुझे भूल बैठी है ! हाय, रे, मेरे भाग्य !!

आज मैं उसका 'बाबू' नहीं हूँ। अपनी बेटी के मुँह से पितृ-सम्बोधन, फूल की पँखडी की भाँति उसके हास्यमय मुख में वह मधुर सम्बोधन 'बाबू'—अहा, आज मैं उससे भी वंचित हूँ !

कैसा दारुण अभिशाप है !

इस समय जीवन के इस शेष-मुहूर्त्त में एक बार, केवल एक बार उस संबोधन के बदले, अपनी बेटी के मुँह से वह आह्वान यदि एक बार पल भर के लिए भी सुन लूँ, तो

चालीस वर्ष का वह सुदीर्घ जीवन मैं हँसते हुए विसर्जन कर दूँ।

"मेरी!—" उसके दोनों हाथों को अपने हाथों से दबाकर मैंने कहा, "मेरी प्यारी बेटी मेरी, क्या मुझे नहीं पहचानती?"

अपनी तेज़ आँखों को उठाकर कुछ गुस्से से उसने कहा, "नहीं!"

मैंने कहा, "देखो, अच्छी तरह देखो, मैं कौन हूँ!!"

उसने कहा, "कौन हैं आप, मैं क्या जानूँ। होंगे कोई भले आदमी!" कैसा अम्लान था उसका कण्ठ-स्वर।

हाय, संसार में जिसकी ज़रासी हँसी देखने के लिए मैं सब-कुछ कर सकता हूँ, उसी के मुँह से यह कैसी बात! उसकी आँखों में यह कैसी दृष्टि!

मैंने पूछा, "मेरी, तुम्हारा बाप है?"

उसने कहा, "हैं! क्यों?"

मैंने कहा, "कहाँ है वह?"

मेरी ओर देख कर उसने कहा, "वह; कहिए!"

हाय, मेरी प्यारी बेटी! हाय रे, दीर्ण पितृ-हृदय की व्याकुलता, मैंने फिर पूछा, "कहाँ है वह?"

मेरी की आँखें सजल हो गईं। उसने रुद्ध कण्ठ से कहा, "स्वर्ग में !"

मैंने कहा "स्वर्ग में ! जानती हो मेरी, वह स्वर्ग कहाँ है ? उस स्वर्ग का अर्थ क्या है ?"

मेरी की आँखों से आँसू टपक रहे थे, मैंने उसे पुचकारा।

मैंने कहा, "मेरी, एक बार ईश्वर का स्मरण करो।"

उसने कहा, "नहीं, महाशय, दिन-दोपहर में बिना काम उनको विरक्त नहीं करना चाहिए। ठीक सन्ध्या के समय मैं प्रार्थना करूँगी।"

मेरा सारा चित्त व्याकुल हो रहा था ! यह लड़की—यह मेरी—मेरी ही कन्या है ! हाय, आज यह मेरी नहीं रही—मैं आज इसके पास से बहुत दूर हट गया हूँ। नहीं-नहीं,—जैसे भी हो, इसे समझाऊँगा कि मैं ही उसका 'बाबू' हूँ। स्वर्ग में नहीं, नरक में नहीं, उसी के सामने, इसी जेल के अन्दर। यह-मैं फाँसी के लिए तैयार बैठा हूँ।

मैंने कहा, " मेरी, तुम पहचानती नहीं, मैं तुम्हारा पिता हूँ।"

मानों कुछ डांटकर उसने उत्तर दिया "नहीं—"

मैंने कहा " प्यारी बेटी, क्यों मुझे भूल गई ! देखो,

अच्छी तरह देखो, वह घर पर गुलाब की क्यारियों के पास बैठकर मैं तुम्हें कहानियाँ सुनाता था—परी की कहानी—सियार की कहानी—"

मेरी के मुख को फिर मैंने छाती से लगा लिया।

मेरी ने कहा "आह! छोड़ दो, लगती है।"

मैंने उसको अपने घुटने पर बैठाकर पूछा, "पढ़ सकती हो?"

"हाँ!"

एक अखबार खोलकर मैंने उसके सामने रक्खा। वह पढ़ने लगी, "प्राण दण्ड का मुलज़िम—"

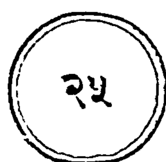
अकस्मात् मैंने कागज़ को छीन लिया। अखबार वह अपने साथ लाई थी! अखबारवालों ने मेरी फाँसी की सूचना बड़े-बड़े अक्षरों में छापी थी, जिससे किसी की नज़र उस पर से चूके नहीं और इतना बड़ा समारोह देखने के लिए दर्शकों का दल टूट पड़े।

अपने मन का भाव मैं स्याही से लिखकर समझाने में असमर्थ हूँ। मेरी यह सूक्ष्म मूर्ति देखकर, भय से मेरी रोने लगी। उसने कहा, "लाओ, मेरा कागज़ लाओ, मैं जहाज़ बनाऊँगी।"

फाँसी

आया के हाथ में अखबार को लौटाकर मैंने कहा, "इसको लेती जाओ, और घर पर कहना······।" इसके आगे कुछ कह न सका। क्या सन्देशा भेजूँ! खिड़की के पास एक कुर्सी पर बैठ गया। आँखों को अपने दोनों हाथों से ढक लिया!—सिर के भीतर रक्त का श्रोत भीषण रूप से नाच रहा था!

कहाँ हैं वे यमलोक के भयानक दूत? आने दो, अब क्या है! संसार में मेरा कोई नहीं है—जीने की अब इच्छा भी नहीं है। जिस सांकल में मैं इस संसार के साथ बँधा हुआ था, ।—वह साँकल टूट गई है! फिर अब यह माया-ममता क्यों?



आचार्य के हृदय में भी दया है, काराध्यक्ष भी पत्थर का आदमी नहीं है। आया जब मेरी को ले जाने लगी, तो उनकी आँखों से भी आँसू की बूंदें टपक पड़ीं।

शेष—अब सब शेष! केवल साहस और बल! पथ पर वियुक्त जनता—फाँसी के तख्ते के निकट बढ़ना—उसके बाद कहाँ रहेगा संसार—और, कहाँ रहूँगा मैं?

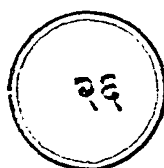
कोई हँसेगा, कोई आनन्द से ताली बजायगा, कोई चिल्लायगा! फिर भी कौन जानता है, इन दर्शकों में भी कितने ही आदमी एक दिन मेरे ही पथ के पथिक बन सकते हैं! आज तो ये मेरा तमाशा देखने आये हैं, एक दिन इनमें से कोई न कोई या कितने ही दूसरों को तमाशा दिखाने जायेंगे—!

'मेरी प्यारी मेरी !'

नहीं, वह तो आया के साथ चली गई ! गाड़ी की खिड़की में से वह इस दर्शकों की भारी भीड़ को ज़रूर देखेगी। समझेगी, कुछ तमाशा होगा। इस "भले, आदमी" की उसे याद भी न रहेगी। वह नहीं जानेगी कि उसके इस "भले आदमी" को देखने के लिए ही इस तमाशे का बन्दोबस्त किया गया है। और वह 'भला आदमी' दूसरा कोई नहीं है उसी का वह 'स्वर्गवासी बाबू' है !

उसके लिए मैं लिख जाऊँगा। एक दिन वह पढ़कर समझेगी। पन्द्रह वर्ष बाद तब वह आज के इस मुहूर्त की बात सोचकर रोवेगी।

हाँ, अपनी सारी कहानी उसके लिए लिख जाऊँगा ! सारी बातें लिख जाऊँगा—मेरा इतिहास—क्यों आज देश की छाती पर रक्ताक्षर से मेरा नाम लिखा जा रहा है, यह सब उस कहानी में मैं लिखूँगा !



मिला-होटल के कमरे से—

मिला-होटल !........ मैं अब यहाँ आ गया हूँ। वह स्थान—वह है मेरी इस खिड़की के नीचे। बहुत आदमी इकट्ठे हुए हैं। कोई चिल्ला रहा है, कोई सीटी बजा रहा है। कोई हँस रहा है।

लाल रंग के उस खम्भे को देखकर छाती काँप रही है।

वे कौन आ रहे हैं? शायद समय हो गया। अब विलंब नहीं है। सारी देह काँप रही है। छः घण्टे से—छः महीने से जिस बात की चिंता लगातार कर रहा हूँ, वह मुहूर्त आ गया, परन्तु कितनी जल्दी!

एक छोटे कमरे में लाकर उन्होंने मुझे खड़ा कर

दिया। खिड़की के अन्दर से आस्मान नज़र आ रहा था। —चारों ओर कुआँ-सा है। मैं कुर्सी पर बैठ गया। कमरे में और भी तीन-चार आदमी थे। आचार्य भी थे। सहसा मेरे बालों में लोहे का ठंडा स्पर्श! कैंची का शब्द! बाल नीचे मेरे पैरों पर आ गिरे! आस-पास सब की कानाफूँसी! डाढ़ी मूँड दी गई!

आँख उठाकर देखा, क़ागज़ और पेन्सिल लेकर एक आदमी प्रश्न कर रहा है। समझा, अखबारों का प्रतिनिधि है! कल के अख़बार के लिए "मैटर" इकट्ठा कर रहा है अखबारवालों की चाँदी है—ख़बर ज़बरदस्त है।

दो पहरेदारों ने आकर मेरा हाथ पकड़ा। मैं आचार्य के पीछे-पीछे चला।

बाहर का दरवाज़ा खुल गया।

लोगों की भीड़ इकट्ठी थी। चारों ओर से आवाज़ आई वह, वह, वह है। सिपाही मेरे चारों ओर चल रहे हैं। राजा के योग्य सम्मान से मुझे ले जाया जा रहा है।—वाह-वाह, खूब!

किसी ने कहा, "नमस्कार महाशय!" किसी और ने आवाज़ कसी, "आदाब अर्ज़ है।"

एक स्त्री ने कहा, "हाय, बेचारा।"

एक आदमी ने कहा, "टोपी खोल डालो, सम्मान दिखाओ।"

मुझे हँसी आई—हाय, ये टोपी ही खोल रहे हैं, मुझे सिर खोल देना पड़ेगा।

आचार्य के हाथ से 'क्रॉस' † लेकर मैंने छाती से लगाया। आग्रह के साथ भक्ति-गद्गद् कण्ठ से मैंने कहा—"क्षमा करो भगवान्, तुम्हीं पाप-तारण हो—आर्तों के मित्र हो!"

नारियों की करुण समवेदना के स्वर कान में आये। मेरी तरुण अवस्था देखकर वे मेरे लिए दुःखी थीं।

सहसा मैं काँप उठा—सामने ही वह फाँसी का तख्ता!

टनन्-टनन् करके चार बज रहे हैं।

---

† ईसाइयों का धर्म-चिन्ह

सस्ता-मण्डल, अजमेर की प्रकाशित

पुस्तकें

१) भेजकर स्थाई ग्राहक बन जाँय और सब पुस्तकें पौने मूल्य में लें।

- १—आत्म-कथा (दोनों खण्ड) २)
- *२—क्या करें ? (दोनों भाग) १॥=)
- *३—जीवन-साहित्य (दोनों भाग) १)
- ४—सामाजिक कुरीतियाँ ॥=)
- ५—शैतान की लकड़ी ॥।=)
- ६—स्वाधीनता के सिद्धान्त ॥)
- ७—अनीति की राह पर ॥)
- ८—दिव्य जीवन ।=)
- ९—स्त्री और पुरुष ॥)
- १०—चीन की आवाज़ ।-)
- ११—अंधेरे में उजाला ।≡)
- १२—विजयी बारडोली २)
- १३—हाथ की कताई बुनाई ॥≡)
- १४—खद्दर का संपत्ति शास्त्र ॥।≡)
- १५—तामिल वेद
- १६—श्रीराम चरित्र १।)
- १७—कर्म योग ।=)
- १८—आत्मोपदेश ।)
- १९—स्वामीजी का बलिदान (हिन्दू मुसलिम समस्या) ।-)
- २०—व्यावहारिक सभ्यता ।)॥
- २१—कन्या शिक्षा ।)
- २२—भारत के स्त्रीरत्न (दो भाग) १॥-)
- २३—घरों की सफाई ।)
- २४—महान् मातृत्व की ओर— ॥।=)
- २५—सीताजी की अग्नि परीक्षा ।-)
- २६—समाज-विज्ञान १॥)
- २७—यूरोप का इतिहास २)

२८—गोरों का प्रभुत्व ॥।≈)
२९—शिवाजी की योग्यता ।≈)
३०—जब अंग्रेज़ नहीं आये थे— ।)
३१—अनोखा ! १।≈)
३२—गंगा गोविन्दसिंह ॥≈)
३३—आश्रम हरिणी ।)
३४—कलवार की करतूत –)॥।
❀३५—ब्रह्मचर्य विज्ञान ॥।–)
❀३६—तरंगित हृदय ॥)
३७—हिन्दी-मराठी कोष २)
❀३८—यथार्थ आदर्श जीवन ॥–)
३९—हमारे ज़माने की गुलामी ।)
४०—दक्षिण आफ्रिका का सत्याग्रह १।) (दो भाग)
४१—जिन्दा लाश ॥)
४२—दुखी दुनिया ॥)
४३—नरमेध ! १॥)
४४—जब अंग्रेज आये १।≈)
४५—जीवन विकास १।)
४६—किसानों का बिगुल ≈)
४७—फाँसी ! ॥)
४८—अनासक्तियोग (म० गाँधी) ≈)
४९—स्वर्ण-विहान (नाटिका) ॥)

क्या करें पहला भाग और जीवन-साहित्य पहला भाग तथा अन्य ❀ इस चिन्ह वाली पुस्तकें स्टोक में नहीं है। तैयार होने पर सूचना दी जायगी।

व्यवस्थापक

सस्ता-साहित्य-मण्डल,
अजमेर ।